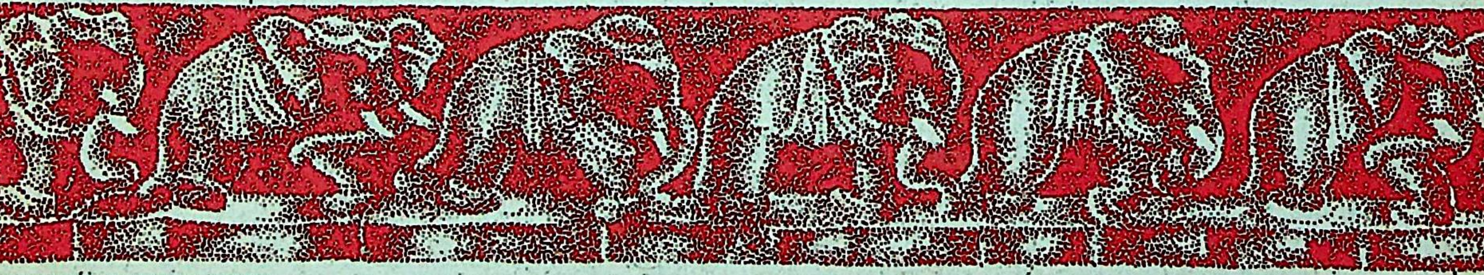
सौप्तिक पर्व * स्त्री पर्व

महाभारत



संपादक- डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

2-3

१०



महाभारत

सौप्तिक पर्व

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर



पारडी [जि. बलसाड]

संवत् २०३४, शक १८९९; सन् १९७७



प्रथम आवृत्ति



प्रकाशक और मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
किल्ला-पारडी [जि. वलसाड] गुजरात

सौप्तिक पर्व

आभार प्रदर्शन

इस महाभारत प्रकाशनके लिए भारतसरकारके शिक्षा मंत्रालयने आर्थिक सहायता प्रदान करके जो महान् कार्य किया है, उसके लिए हम हृदयसे आभारी हैं।

इस महाभारत प्रकाशनके लिए हम माननीय श्री सेठ गंगाप्रसादजी बिरला और माननीय श्री सेठ बी. एम. बिरलाजी का भी उपकार नहीं भूल सकते। उन्होंने कागज देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।



सौप्तिकपर्व

भूमिका

सौप्तिक पर्व महाभारतका दसवां पर्व है। महाभारतकार महर्षि व्यासने महाभारतके सभी पर्वोंका नामकरण पर्वान्तर्गत विषयके अनुसार ही किया है। केवल नामको पढकर ही पाठक इस बातका अनुमान लगा सकता है कि उस पर्वके अन्तर्गत किस बातका वर्णन होगा।

सौप्तिक पर्वकी पृष्ठभूमिकाके रूपमें हम इससे पूर्वके पर्व "शल्यपर्व" को पाते हैं। इस पर्वमें महारथी कर्णके पतनके बाद दुर्योधनने पाण्डवोंके मामा महारथी शल्यको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया और शल्यने भी पूरे एक दिनतक अपनी जान लडाकर पाण्डवोंके साथ युद्ध किया और पांडवसेनाका संहार किया, तथा दिनकी समाप्तिके लगभग ही शल्यका भी पतन हुआ। साथ ही इसी "शल्यपर्व" में भीम–दुर्योधनका गदायुद्ध तथा उस गदा–युद्धमें भीम द्वारा दुर्योधनकी जांघको तोडना आदि बातोंका वर्णन है। वस्तुतः दुर्योधनके पतनके साथ ही महाभारत युद्धकी भी इति श्री समझनी चाहिए, क्योंकि इसके बादके पर्वोंमें महर्षिने अधिकतर दार्शनिक, नैतिक, राजनैतिक और राजधर्म संबन्धी उपदेश ही प्रस्तुत किए हैं।

जब दुर्योधनका ऊरुभंग हो गया और वह रणभूमिमें गिर गया, तो पाण्डवोंसे भयभीत होकर दुर्योधनके सभी साथी तितर–बितर हो गए। उन्हीं तितर–बितर होनेवाले साथियोंमें द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा भी थे। उन्होंने जंगलमें जाकर एक वृक्षके नीचे शरण ली। आधी रातके समय पक्षियोंके कोलाहलसे अश्वत्थामाकी आंख खुली और उसने देखा कि उल्लुओंने बेखबर सोते हुए अपने शत्रु कौवोंपर अचानक हमला करके बहुतसे कौवोंको मार डाला है। इस दृश्यने अश्वत्थामाके मनमें विचार आया कि यदि इसी तरह बेखबर सोते हुए पांडवों पर अचानक हमला करके उन्हें मार डाला जाए, तो गया हुआ राज्य फिर मिल जाए। यह सोचकर तीनों पांडवोंके शिविरमें गए और उन्होंने धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको पांडव समझकर मार डाला। चूंकि अश्वत्थामाने द्रौपदीके पुत्रोंको "सुप्त" अवस्थामें मारा, इसलिए इस पर्वका नाम "सौप्तिक पर्व" पडा।

यह पर्व बहुत छोटा है, जो सौप्तिक तथा ऐषिक नामक दो उपपर्वोंमें बंटा हुआ है। इस पर्वमें अठारह अध्याय हैं। पहले अध्यायमें शल्यपतनको देखकर अश्वत्थामा आदिका पांडवोंसे भयभीत होकर रणभूमिसे भागना, दुर्योधनके ऊरुभंगके समाचारको सुनकर धृतराष्ट्र विलाप तथा दुर्योधन के साथियोंपर धृतराष्ट्रका आक्षेप आदि बातोंका वर्णन है।

धृतराष्ट्रने संजयसे पूछा कि– दुर्योधनके रणभूमिमें गिर जानेके बाद अश्वत्थामाने क्या किया? तब संजयने कहा– कि दुर्योधनके गिर जानेके बाद अश्वत्थामा आदि जंगल भाग गए और वहां एक वटवृक्षके नीचे जाकर शरण ली। आधी रातके समय कौवोंकी कांव-कांवसे अश्वत्थामाकी आंखका खुलना, अश्वत्थामाका देखना, बेखबर होकर वृक्षपर सोते हुए कौवोंपर उल्लुओंका अचानक आक्रमण, तथा उल्लुओंके द्वारा कौवोंका संहार, यह देखकर अश्वत्थामाका अपने मनमें सोते हुए पांडवों और पांचालोंको मारनेका विचार करना आदि बातोंका भी वर्णन इसी प्रथम अध्यायमें है।

सोते हुए पांडवोंपर आक्रमण करनेकी अपनी योजनाको अश्वत्थामाका कृपाचार्यके सामने रखना, कृपाचार्यका इस योजनाके प्रति अपनी असम्मति दर्शाना, तथा अश्वत्थामाका कृपाचार्य तथा कृतवर्माको अनेक तरहसे समझाना आदि बातोंका वर्णन महर्षि व्यासने इस पर्वके दूसरे–तीसरे अध्यायोंमें किया है।

चौथे–पांचवें अध्यायोंमें कृपाचार्यने इस योजनाके विरुद्ध अनेक तर्कोंसे युक्त अपने विचार रखे हैं, तथा दूसरी तरफ कृपके तर्कोंका प्रत्युत्तर देते हुए अश्वत्थामाने अपने विचार व्यक्त किए हैं। अन्तमें अश्वत्थामाके विचारोंसे कृपाचार्यका प्रभावित होना तथा उन तीनोंका पांडवोंके शिविरमें जाना आदि बातोंका वर्णन है।

पांडवोंके शिबिरके द्वार पर महाभूतको पहरा देते हुए देखकर शिबिरमें प्रवेश करनेमें कठिनताका अनुभव करके चिन्तित हुए अश्वत्थामाका महादेवकी उपासना करना, अश्वत्थामाकी उपासनासे प्रसन्न होकर देवी तथा रुद्रोंका प्रकट होना तथा महादेवका भी प्रसन्न होकर अश्वत्थामाको तलवार देना आदि बातोंका वर्णन महाभारतकारने इस पर्वके छठे और सातवें अध्यायमें किया है।

आठवें अध्यायमें अश्वत्थामाका शिबिरमें प्रवेश करना, शिबिरके द्वारपर कृप तथा कृतवर्माका पहरा देना, शिबिरमें जाकर अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको मारना आदिका वर्णन है।

पांडववीरोंको मारकर तीनों महारथियोंका मरनेके करीब पहुंचे हुए दुर्योधनके पास जाना, दुर्योधनकी दुरवस्था देखकर कृपका दुर्योधनपर आक्षेप करना आदि बातें सातवें और नौवें अध्यायमें हैं।

तदनन्तर दुर्योधनको धूलमें पडा हुआ देखकर अश्वत्थामाका विलाप करना, तथा धृष्टद्युम्न आदि वीरोंको मारनेका शुभ समाचार अश्वत्थामा द्वारा दुर्योधनको देना, समाचार सुनकर दुर्योधनका प्रसन्न होकर अश्वत्थामाकी प्रशंसा करना तथा उसके बाद उसके प्राण त्यागनेका वर्णन नौवें अध्यायमें है। यहीं पर "सौप्तिक पर्व" नामक उपपर्वकी समाप्ति होती है।

इसके आगे "ऐषिकपर्व" नामक उपपर्वका प्रारंभ है।

इस उपपर्वमें अश्वत्थामाको उसके अपराधका दण्ड देनेके लिए पांडवों द्वारा इषीक नामक अस्त्रके उपयोग करनेका वर्णन है। इसीलिए इस पर्वका नाम "ऐषिक" है। धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे अपने जनोंकी मृत्युका समाचार सुनकर युधिष्ठिरका विलाप दसवें अध्यायमें है।

नकुल द्वारा अपने पुत्रोंकी मृत्युका समाचार सुनकर द्रौपदीका विलाप करना, अश्वत्थामाको मारनेके लिए युधिष्ठिरसे अनुरोध करना, तथा द्रौपदीके अनुरोधसे अश्वत्थामाको मारनेके लिए भीमका प्रस्थान, तथा भीमकी रक्षा करनेके लिए श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको सलाह देना तथा श्रीकृष्ण द्वारा ब्रह्मशिर नामक शस्त्रकी उत्पत्ति तथा उसकी शक्तिका वर्णन आदि बातें ग्यारहवें तथा बारहवें अध्यायोंमें आई हैं।

तेरहवें-चौदहवें और पंद्रहवें अध्यायमें महर्षिने बताया है कि भीमकी रक्षाके लिए युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन रथपर चले। पांडवोंके संहारके लिए अश्वत्थामाका ब्रह्मशिरनामक अस्त्र चलाना, उसका निवारण करनेके लिए अर्जुनका भी ब्रह्मशिर अस्त्र चलाना, ब्रह्मशिर अस्त्रके उपयोगसे सभीका चिन्तित होना, व्यासके अनुरोधपर अश्वत्थामाका अपनी पराजय स्वीकार करके अपने सिरकी मणि उतार कर अपने अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोडना आदि घटनाओंका वर्णन है।

सोलहवें अध्यायमें अश्वत्थामाके साथ अभिमन्युके पुत्र परीक्षितके जन्मादिके बारेमें श्रीकृष्णका वार्तालाप, अश्वत्थामापर क्रुद्ध होकर श्रीकृष्णका उसे शाप देना, अश्वत्थामासे मणि लेकर पांडवोंका द्रौपदीके पास जाकर उसे धैर्य देना, द्रौपदीके कहनेपर युधिष्ठिरका उस मणिको अपने सिरपर धारण करना आदि घटनाओंका समावेश है।

अन्तके दो अध्यायोंमें पांचालवीरोंके विनाशके बारेमें युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्णकी बातचीत, महादेवकी स्तुति और उनकी महिमाका वर्णन, देवोंपर महादेवका अप्रसन्न होकर फिर प्रसन्न होना आदि बातोंका वर्णन करके व्यासजीने यहीं पर "ऐषिक पर्व" नामक उपपर्व तथा "सौप्तिकपर्व" नामक मुख्य पर्वकी समाप्ति की है।

आभार प्रदर्शन

महाभारतके इस पर्वको छापनेमें हमें कई महानुभावोंसे सहायता मिली, पर सबसे ज्यादा मदद हमें सेठ श्री गंगाप्रसादजी बिरलासे प्राप्त हुई, जिन्होंने हमारी प्रार्थनापर इस पर्वके प्रकाशनके लिए अपनी मिलसे सस्ते दामोंपर कागज दिलवाया। उनकी इस कृपाके लिए हम उनके हृदयसे आभारी हैं। इसके अलावा हमें जिन जिन महानुभावोंसे सहायता मिली है, उनके भी हम आभारी हैं।

इस पर्वको पाठकोंके सामने प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। अति सावधानताके बावजूद भी यदि कहीं त्रुटियां रह गई हों, उन्हें, आशा है कि, सहृदय पाठक अवश्य क्षमा करेंगे तथा उन त्रुटियोंकी तरफ संकेत करनेकी कृपा करेंगे। ताकि भविष्यमें हम उन त्रुटियोंके प्रति सतर्क रहें।

— सम्पादकमण्डल

सौप्तिकपर्वकी विषयसूची



महाभारत

सौप्तिकपर्व ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिए नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिए ।

: १ :

सञ्जय उवाच

ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः ।
उपास्तमयवेलायां शिबिराभ्याशमागताः ॥ १ ॥

संजय बोले– हे राजा धृतराष्ट्र ! अनंतर वे तीनों वीर दक्षिण दिशाकी ओर चले; और सूर्यास्तके समय शिबिरके निकट आ पहुँचे ॥ १ ॥

विमुच्य वाहांस्त्वरिता भीताः समभवंस्तदा ।
गहनं देशमासाद्य प्रच्छन्ना न्यविशन्त ते ॥ २ ॥

वे उस समय घबराये हुऐ थे । अतः शीघ्रताके साथ घोडोंको छोडकर वनके गहन प्रदेश खोजकर उसमें अपनेको छिपाकर एक स्थानपर बैठ गये ॥ २ ॥

सेनानिवेशमभितो नातिदूरमवस्थिताः ।
निकृत्ता निशितैः शस्त्रैः समन्तात्क्षतविक्षताः ॥ ३ ॥

सेनाके पाण्डवकी बाजूमेंही बहुत निकट वे ठहरे थे, और उनके शरीर तीक्ष्ण शस्त्रोंसे सर्वथा विदीर्ण और घायल हो गये थे ॥ ३ ॥

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पाण्डवानन्वचिन्तयन् ।
श्रुत्वा च निनदं घोरं पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४ ॥

विजयशाली पांडवोंके घोर निनादको सुनकर दीर्घ और उष्ण निःश्वास छोडकर वे पांडवोंके बारेमें सोचने लगे ॥ ४ ॥

अनुसारभयाद्भीताः प्राङ्मुखाः प्राद्रवन्पुनः ।
ते मुहूर्तं ततो गत्वा श्रान्तवाहाः पिपासिताः ॥ ५ ॥

पीछा किये जानेकी संभवनासे डरे हुए फिर पूर्वदिशा की ओर भागने लगे; फिर कुछ समय चलकर थके हुए घोडोंवाले और प्याससे व्याकुल हो गये ॥ ५ ॥

नामृष्यन्त महेष्वासाः क्रोधामर्षवशं गताः ।
राज्ञो वधेन संतप्ता मुहूर्तं समवस्थिताः ॥ ६ ॥

बडे तेजस्वी वे तीनों राजा दुर्योधनके वधसे संतप्त और क्रोध व अमर्षके वशीभूत होकर, उस स्थितिको सहन न करके, कुछ देर तक वैसेही रहे ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अश्रद्धेयमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय ।
यत्स नागायुतप्राणः पुत्रो मम निपातितः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे संजय ! मुझे विश्वास नहीं होता है कि हजारों हाथियोंका बल धारण करनेवाले मेरे पुत्रको भीमने मार डाला ॥ ७ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां वज्रसंहननो युवा ।
पाण्डवैः समरे पुत्रो निहतो मम सञ्जय ॥ ८ ॥

संजय ! समस्त भूतोंको अवध्य, वज्र समान शरीरधारी और युवा मेरा पुत्र युद्धमें पांडवोंके हाथों मारा गया ॥ ९ ॥

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं गावल्गणे नरैः ।
यत्समेत्य रणे पार्थैः पुत्रो मम निपातितः ॥ ९ ॥

हे गावल्गणके पुत्र संजय ! कुन्तीपुत्र पांडवोंने मिलकर युद्धमें मेरे पुत्रको मार डाला, इससे कहना पडेगा कि लोगोंके लिये दैवको लांघना असंभव बात है ॥ ९ ॥

अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
हतं पुत्रशतं श्रुत्वा यन्न दीर्णं सहस्रधा ॥ १० ॥

संजय ! सचमुच मेरा हृदय पहाडोंके सारतत्त्वके समान कठिन है, जिसके शतपुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर भी हजारों टुकडे नहीं हो जाते ॥ १० ॥

कथं हि वृद्धमिथुनं हतपुत्रं भविष्यति ।
न ह्यहं पाण्डवेयस्य विषये वस्तुमुत्सहे ॥ ११ ॥

पुत्रमरणके बाद हम दोनों वृद्ध पति-पत्नियोंकी क्या दशा होगी ? क्योंकि पांडवराजके राज्यमें रहना मैं नहीं पसंद करूंगा ॥ ११ ॥

कथं राज्ञः पिता भूत्वा स्वयं राजा च सञ्जय ।
प्रेष्यभूतः प्रवर्तेयं पाण्डवेयस्य शासनात् ॥ १२ ॥

हे सञ्जय ! स्वयं राजा होकर और राजाका पिता होकर, अब मैं पाण्डवराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार उसका आश्रित बनकर कैसे रह सकूं ? ॥ १२ ॥

आज्ञाप्य पृथिवीं सर्वां स्थित्वा मूर्ध्नि च सञ्जय ।
कथमद्य भविष्यामि प्रेष्यभूतो दुरन्तकृत् ॥ १३ ॥

सञ्जय ! मैं सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन करके और शिरपर बैठकर, अब अन्तकालमें किसीका आश्रित कैसे बनूं ? ॥ १३ ॥

कथं भीमस्य वाक्यानि श्रोतुं शक्ष्यामि सञ्जय ।
येन पुत्रशतं पूर्णमेकेन निहतं मम ॥ १४ ॥

सञ्जय ! जिस अकेले भीमने मेरे पूरे एक सौ पुत्रोंका वध किया, उसके वचन मैं कैसे सुन सकूंगा ? ॥ १४ ॥

कृतं सत्यं वचस्तस्य विदुरस्य महात्मनः ।
अकुर्वता वचस्तेन मम पुत्रेण सञ्जय ॥ १५ ॥

सञ्जय ! उस महात्मा विदुरके वचनानुसार बर्ताव न करके, मेरे पुत्रने उनका वचन सत्य किया है ॥ १५ ॥

अधर्मेण हते तात पुत्रे दुर्योधने मम ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः किमकुर्वत सञ्जय ॥ १६ ॥

तात सञ्जय ! अधर्मसे मेरे पुत्र दुर्योधनकी मृत्युके बाद कृतवर्मा, कृपाचार्य और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने क्या किया ? ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच

गत्वा तु तावका राजन्नातिदूरमवस्थिताः ।
अपश्यन्त वनं घोरं नानाद्रुमलताकुलम् ॥ १७ ॥

सञ्जय बोले– महाराज, तुम्हारे वे तीनों वीर भागकर निकट ही जा ठहरे । उन्होंने भांती भांतीके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त अत एव भयङ्कर वन देखा ॥ १७ ॥

ते मुहूर्तं तु विश्रम्य लब्धतोयैर्हयोत्तमैः ।
सूर्यास्तमयवेलायामासेदुः सुमहद्वनम् ॥ १८ ॥

पानी पी गये हुए उत्तम घोडोंके साथ कुछ देरतक विश्राम लेकर, वे सूर्यास्तके समय विशाल अरण्यमें जा पहुंचे ॥ १८ ॥

नानामृगगणैर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् ।
नानाद्रुमलताच्छन्नं नानाव्यालनिषेवितम् ॥ १९ ॥

नाना प्रकारके पशुगणोंसे उपभुक्त, विविध पक्षिओंसे भरे, भांती भांतीके वृक्ष लताओंसे व्याप्त और तरह तरहके सर्पोंसे युक्त, ॥ १९ ॥

नानातोयसमाकीर्णं तडागैरुपशोभितम् ।
पद्मिनीशतसंछन्नं नीलोत्पलसमायुतम् ॥ २० ॥

विविध जलाशयोंसे संपन्न, तालावोंसे सुशोभित, सैंकडों पद्मिनियोंसे ढंके और नील कमलोंसे समृद्ध, ॥ २० ॥

प्रविश्य तद्वनं घोरं वीक्षमाणाः समन्ततः ।
शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधं ददृशुस्ततः ॥ २१ ॥

उस भीषण अरण्यमें प्रवेश करके, चारों ओर देखते हुए उन्होंने हजारों शाखावाले एक बट वृक्षको देखा ॥ २१ ॥

उपेत्य तु तदा राजन्न्यग्रोधं ते महारथाः ।
ददृशुर्द्विपदां श्रेष्ठाः श्रेष्ठं तं वै वनस्पतिम् ॥ २२ ॥

महाराज ! उन नरश्रेष्ठ महारथियोंने उस श्रेष्ठ वनस्पति वटको उसके पास जाकर देख लिया ॥ २२ ॥

तेऽवतीर्य रथेभ्यस्तु विप्रमुच्य च वाजिनः ।
उपस्पृश्य यथान्यायं संध्यामन्वासत प्रभो ॥ २३ ॥

हे प्रभो ! उन्होंने रथोंमेंसे उतरकर और घोडोंको छोडकर, नियमानुसार स्नान आचमन आदि क्रियाएं करके संध्योपासना की ॥ २३ ॥

ततोऽस्तं पर्वतश्रेष्ठमनुप्राप्ते दिवाकरे ।
सर्वस्य जगतो धात्री शर्वरी समपद्यत ॥ २४ ॥

उसके बाद पर्वतश्रेष्ठके पीछे सूर्यके अस्तंगत होनेपर समूचे विश्वकी माता रात्रि प्राप्त हुई ॥२४॥

ग्रहनक्षत्रताराभिः प्रकीर्णाभिरलंकृतम् ।
नभोंऽशुकमिवाभाति प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ २५ ॥

चारों ओर बिखरे हुए ग्रहों, नक्षत्रों और तारकाओंसे अलंकृत आकाश भारी वस्त्रकी भांती शोभा देने लगा ॥ २५ ॥

ईषच्चापि प्रवल्गन्ति ये सत्त्वा रात्रिचारिणः ।
दिवाचराश्च ये सत्त्वास्ते निद्रावशमागताः ॥ २६ ॥

जो रात्रिमें संचार करनेवाले जीव थे वे थोडा थोडा शब्द कर रहे थे; और दिनमें संचार करनेवाले जीव निद्राधीन हो चुके थे ॥ २६ ॥

रात्रिंचराणां सत्त्वानां निनादोऽभूत्सुदारुणः ।
क्रव्यादाश्च प्रमुदिता घोरा प्राप्ता च शर्वरी ॥ २७ ॥

निशाचरोंका वह निनाद बहुत ही भयप्रद जान पड रहा था; मांसाशी जंतु आनंदित हुए थे; और भयावनी रात्रि हो गयी थी ॥ २७ ॥

तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे दुःखशोकसमन्विताः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिरुपोपविविशुः समम् ॥ २८ ॥

उस भीषण रात्रिके आरंभमें दुःख-शोकसे पीडित कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा एक साथ बैठ गये ॥ २८ ॥

तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समन्ततः ।
तमेवार्थमतिक्रान्तं कुरुपाण्डवयोः क्षयम् ॥ २९ ॥

वे कौरव-पाण्डवोंके नाशवाली अतीत घटनाके संबंधमें शोकपूर्वक सोचते हुए वटवृक्षके समीप बैठ गये ॥ २९ ॥

निद्रया च परीताङ्गा निषेदुर्धरणीतले ।
श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः ॥ ३० ॥

जिनका शरीर निद्रासे व्याप्त था, जो तरहतरहके बाणोंसे क्षतविक्षत थे और जो बुरी तरह थके हुए थे, ऐसे वे भूमिपर लेट गये ॥ ३० ॥

ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ ।
सुखोचितावदुःखार्हौ निषण्णौ धरणीतले ।
तौ तु सुप्तौ महाराज श्रमशोकसमन्वितौ ॥ ३१ ॥

महाराज ! जो वास्तवमें सुखके योग्य और दुःखके अयोग्य थे, वे महारथ कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों श्रमशोकसे व्याकुल होनेके कारण निद्राके अधीन होने लगे और जमीन पर पडे पडे सो गये ॥ ३१ ॥

क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत ।
नैव स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव श्वसन् ॥ ३२ ॥

हे भारत ! हां केवल द्रोणपुत्र क्रोध और अमर्षके वशीभूत होनेसे निद्राधीन नहीं हुआ; किन्तु सांपकी भांती फुत्कार करता रहा ॥ ३२ ॥

न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानोऽतिमन्युना ।
वीक्षांचक्रे महाबाहुस्तद्वनं घोरदर्शनम् ॥ ३३ ॥

उस महाबाहु अश्वत्थामा को नींद नहीं आ रही थी । क्यों कि वह अतिक्रोधसे जल रहा था; इसलिये वह घोर दर्शनवाले उस अरण्यको देखने लगा ॥ ३३ ॥

वीक्षमाणो वनोद्देशं नानासत्त्वैर्निषेवितम् ।
अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसायुतम् ॥ ३४ ॥

महाबाहु अश्वत्थामा ने नाना जीवोंसे परिपूर्ण वनप्रदेशका निरीक्षण करते देखा कि उस वटवृक्षपर हजारों कौअे रहा करते हैं ॥ ३४ ॥

तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन् ।
सुखं स्वपन्तः कौरव्य पृथक्पृथगपाश्रयाः ॥ ३५ ॥

हे कौरव्य ! वहां हजारों कौओंने उस रात्रिको परिणत किया था, वे भिन्न घोंसलोंमें आरामसे सो रहे थे ॥ ३५ ॥

सुप्तेषु तेषु काकेषु विस्रब्धेषु समन्ततः ।
सोऽपश्यत्सहसायान्तमुलूकं घोरदर्शनम् ॥ ३६ ॥

सभी ओर उन कौओंके निःसंदेह होकर सो जानेके बाद उसने एका एक भयावने उल्लूको आते देखा ॥ ३६ ॥

महास्वनं महाकायं हर्यक्षं बभ्रुपिङ्गलम् ।
सुदीर्घघोणानखरं सुपर्णमिव वेगिनम् ॥ ३७ ॥

वह बडी आवाज, विशाल देह, बडी बडी आंखें, पिंगलवर्ण, लंबी नाक और नाखून धारण करनेवाला और गरुडके समान वेगवान् था ॥ ३७ ॥

सोऽथ शब्दं मृदुं कृत्वा लीयमान इवाण्डजः ।
न्यग्रोधस्य ततः शाखां प्रार्थयामास भारत ॥ ३८ ॥

हे भारत ! लीन होनेवाले पक्षीके समान उसने मृदु-शब्द करके वटवृक्षकी शाखापर आक्रमण किया ॥ ३८ ॥

सन्निपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहङ्गमः ।
सुप्ताञ्जघान सुबहून्वायसान्वायसान्तकः ॥ ३९ ॥

कौओंका अंत करनेवाले उस पंछीने बटवृक्षकी शाखापर लपककर सोये हुए बहुत कौओंको मार डाला ॥ ३९ ॥

केषांचिदच्छिनत्पक्षाञ्शिरांसि च चकर्त ह ।
चरणांश्चैव केषांचिद्बभञ्ज चरणायुधः ॥ ४० ॥

उसने अपने पैरोंके आयुधसे कइयोंके पंख तोडे, कइयोंके सिर काट डाले और कइयोंके पैरोंका भंग कर डाला ॥ ४० ॥

क्षणेनाहन्स बलवान्येऽस्य दृष्टिपथे स्थिताः ।
तेषां शरीरावयवैः शरीरैश्च विशां पते ।
न्यग्रोधमण्डलं सर्वं संछन्नं सर्वतोऽभवत् ॥ ४१ ॥

हे पृथ्वीपते ! उस बलवान् उल्लूने जो उसके दृष्टिपथमें आये उन सबको एक क्षणभरमें मार डाला । उनके अवयवों और शरीरोंसे वट वृक्षका सारा मण्डल चारों ओरसे व्याप्त हो गया ॥ ४१ ॥

तांस्तु हत्वा ततः काकान्कौशिको मुदितोऽभवत् ।
प्रतिकृत्य यथाकामं शत्रूणां शत्रुसूदनः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वह शत्रुहन्ता उल्लू अपने दुष्मनोंको यथेष्ट मारकर और प्रतिशोध लेकर बहुत आनंदित हुआ ॥ ४२ ॥

तद्दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतं निशि ।
तद्भावकृतसङ्कल्पो द्रौणिरेको व्यचिन्तयत् ॥ ४३ ॥

वह दुष्ट कृत्य जो उल्लूने रातके समय किया था, देखकर अश्वत्थामा उल्लूके मनोभावके समान संकल्प करके अकेला ही सोचने लगा ॥ ४३ ॥

उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे ।
शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तकालश्च मे मतः ॥ ४४ ॥

इस पंछीने युद्धमें शत्रुनाश करनेके लिये उपयुक्त उपदेश मुझे दिया है, जो मुझे इस समय उचित मालूम पड रहा है ॥ ४४ ॥

नाद्य शक्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः ।
बलवन्तः कृतोत्साहा लब्धलक्षाः प्रहारिणः ।
राज्ञः सकाशे तेषां च प्रतिज्ञातो वधो मया ॥ ४५ ॥

आज विजयशाली, बलिष्ठ, उत्साही, कृतार्थ और शस्त्रास्त्रसंपन्न पांडवोंका वध करनेमें मैं असमर्थ हूं; और राजा दुर्योधन के पास मैंने उनके वधकी प्रतिज्ञा तो कर डाली है ॥४५॥

पतङ्गाग्निसमां वृत्तिमास्थायात्मविनाशिनीम् ।
न्यायतो युध्यमानस्य प्राणत्यागो न संशयः ।
छद्मना तु भवेत्सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान् ॥ ४६ ॥

इसमें संदेह नहीं कि अगर मैं अग्निमें झपटकर मरनेवाले पतंगकी आत्मघाती वृत्तिका सहारा लेकर न्यायानुसार युद्ध करूं तो प्राणत्याग ही करना पडेगा। कपटका सहारा लूं तो सफलता मिलेगी और शत्रुओंका महान् नाश होगा ॥ ४६ ॥

तत्र संशयितादर्थाद्योऽर्थो निःसंशयो भवेत् ।
तं जना बहु मन्यन्ते येऽर्थशास्त्रविशारदाः ॥ ४७ ॥

अर्थ राज्य शास्त्रप्रवीण लोक संदिग्ध बातकी अपेक्षा असंदिग्ध बातको अधिक महत्त्व देते हैं ॥ ४७ ॥

यच्चाप्यत्र भवेद्वाच्यं गर्हितं लोकनिन्दितम् ।
कर्तव्यं तन्मनुष्येण क्षत्रधर्मेण वर्तता ॥ ४८ ॥

जो बात इस संसारमें दूषणीय, त्याज्य और लोगोंके द्वारा निंदित समझी जाती है वह क्षत्र-धर्मका आचार करनेवाले मनुष्यको अवश्य करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे ।
सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः ॥ ४९ ॥

दुष्ट पाण्डवोंने पद पदपर निंदित, कुत्सित और कपटयुक्त कर्म बहुत किये हैं ॥ ४९ ॥

अस्मिन्नर्थे पुरा गीतौ श्रूयेते धर्मचिन्तकैः ।
श्लोकौ न्यायमवेक्षद्भिस्तत्त्वार्थं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५० ॥

इस विषयमें न्याय देखनेवालों, धर्मचिन्तकों और तत्त्वदर्शी लोगोंके गाये हुए पुरातन दो श्लोक सुननेमें आते हैं ॥ ५० ॥

परिश्रान्ते विदीर्णे च भुञ्जाने चापि शत्रुभिः ।
प्रस्थाने च प्रवेशे च प्रहर्तव्यं रिपोर्बलम्　　॥ ५१ ॥

शत्रुसैन्य थका हुआ हो, या घायल हुआ हो, या भोजन कर रहा हो, चाहे प्रस्थान या प्रवेश कर रहा हो, विपक्षियोंको उसपर अवश्य प्रहार करना चाहिये ॥ ५१ ॥

निद्रार्तमर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम् ।
भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद्भवेत्　　॥ ५२ ॥

तथा जो शत्रुसैन्य अर्धरात्रिमें निद्रातुर है, जिसका नायक नष्ट हो चुका है, जिसके योद्धा घायल हैं, और जिसमें फूट पडी है, उसपर जरूर प्रहार करना चाहिये ॥ ५२ ॥

इत्येवं निश्चयं चक्रे सुप्तानां युधि मारणे ।
पाण्डूनां सह पाञ्चालैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्　　॥ ५३ ॥

इस प्रकार विचार करके प्रतापी द्रोणपुत्रने सोये हुए पाञ्चालोंके साथ पाण्डवोंका वध करनेका निश्चय किया ॥ ५३ ॥

स क्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः ।
सुप्तौ प्राबोधयत्तौ तु मातुलं भोजमेव च　　॥ ५४ ॥

उसने बार बार निश्चय करके क्रूर बुद्धिको अपनाकर सो रहे हुए अपने मातुल कृपाचार्यको और भोजवंशी कृतवर्माको जगा दिया ॥ ५४ ॥

नोत्तरं प्रतिपेदे च तत्र युक्तं ह्रिया वृतः ।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पविह्वलमब्रवीत्　　॥ ५५ ॥

लज्जित होनेके कारण वह ठीक उत्तर नहीं दे सके । इसलिये कुछ देरतक सोचकर और अश्रुविह्वल होकर वह बोला ॥ ५५ ॥

हतो दुर्योधनो राजा एकवीरो महाबलः ।
यस्यार्थे वैरमस्माभिरासक्तं पाण्डवैः सह　　॥ ५६ ॥

जिसके लिये हमने पाण्डवोंसे वैर किया वह महाबलवान्, अद्वितीय वीर राजा दुर्योधन मारा गया है ॥ ५६ ॥

एकाकी बहुभिः क्षुद्रैराहवे शुद्धविक्रमः ।
पातितो भीमसेनेन एकादशचमूपतिः　　॥ ५७ ॥

युद्धमें शुद्ध विक्रम करनेवाले, ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके अधिपति अकेले राजा को बहुत क्षुद्रोंने मिलकर घेरा और भीमसेनने मारा ॥ ५७ ॥

वृकोदरेण क्षुद्रेण सुनृशंसमिदं कृतम् ।
मूर्धाभिषिक्तस्य शिरः पादेन परिमृद्नता ॥ ५८ ॥

मूर्धाभिषिक्तके सिरपर लातका प्रहार करनेवाले नीच भीमसेनने यह बडा ही क्रूर कर्म किया है ॥ ५८ ॥

विनर्दन्ति स्म पाञ्चालाः क्ष्वेडन्ति च हसन्ति च ।
धमन्ति शङ्खाञ्शतशो हृष्टा घ्नन्ति च दुन्दुभीन् ॥ ५९ ॥

उस समय पाञ्चाल योद्धा प्रसन्न हो गर्जने लगे, उछलने और हंसने लगे, सैंकडों शंख फूंकने तथा नगाडे बजाने लगे ॥ ५९ ॥

वादित्रघोषस्तुमुलो विमिश्रः शङ्खनिस्वनैः ।
अनिलेनेरितो घोरो दिशः पूरयतीव हि ॥ ६० ॥

वाद्योंका तुमुल घोष शंखकी आवाजसे मिलकर पवनसे प्रेरित हो सब दिशाओंमें भरा जा रहा है ॥ ६० ॥

अश्वानां हेषमाणानां गजानां चैव बृंहताम् ।
सिंहनादश्च शूराणां श्रूयते सुमहानयम् ॥ ६१ ॥

हींचनेवाले घोडोंकी आवाज, गर्जना करनेवाले हाथियोंका शब्द और शूरोंका यह महान् सिंहनाद सुनाई दे रहा है ॥ ६१ ॥

दिशं प्राचीं समाश्रित्य हृष्टानां गर्जतां भृशम् ।
रथनेमिस्वनाश्चैव श्रूयन्ते लोमहर्षणाः ॥ ६२ ॥

पूर्व दिशाका आश्रय करके बडी गर्जना करनेवालोंका और रथचक्रोंका रोमहर्षक शब्द अभी सुननेमें आरहा है ॥ ६२ ॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां यदिदं कदनं कृतम् ।
वयमेव त्रयः शिष्टास्तस्मिन्महति वैशसे ॥ ६३ ॥

पाण्डवोंने कौरवोंका यह जो भयानक नाश किया है, उस महान् संहारसे उस बडी सेनाके हम केवल तीन लोग बाकी रहे हैं ॥ ६३ ॥

केचिन्नागशतप्राणाः केचित्सर्वास्त्रकोविदाः ।
निहताः पाण्डवेयैः स्म मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ६४ ॥

कुछ सैंकडों हाथियोंके समान बलिष्ट थे, कुछ सारी अस्त्रविद्यामें प्रवीण थे, इनको पांडवोंने मारा, इससे मैं समझता हूं कि काल विपरीत हुआ है ॥ ६४ ॥

एवमेतेन भाव्यं हि नूनं कार्येण तत्त्वतः ।
यथा ह्यस्येदृशी निष्ठा कृते कार्येऽपि दुष्करे ॥ ६५ ॥

इस प्रकार यह कार्य सचमुच पूरा होगा, कारण कि दुःसाध्य कार्यके पूरे हो जानेपर भी इसकी स्थिति ऐसी है ॥ ६५ ॥

भवतोस्तु यदि प्रज्ञा न मोहादपचीयते ।
व्यापन्नेऽस्मिन्महत्यर्थे यन्नः श्रेयस्तदुच्यताम् ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ६६ ॥

यदि आप दोनोंकी बुद्धि मोहके कारण भ्रष्ट न हो गयी हो तो वह बात कहिये जो इस विचित्र प्रसंगपर हमारे लिये श्रेयस्कर हो ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ६६ ॥

ः २ ः

कृप उवाच

श्रुतं ते वचनं सर्वं हेतुयुक्तं मया विभो ।
ममापि तु वचः किंचिच्छृणुष्वाद्य महाभुज ॥ १ ॥

कृपाचार्य बोले– हे विभो ! मैंने तुम्हारा तर्कसंगत वचन सुन लिया। अब हे महाभुज, आज तुम मेरा भी कुछ भाषण सुनो ॥ १ ॥

आबद्धा मानुषाः सर्वे निर्बन्धाः कर्मणोर्द्वयोः ।
दैवे पुरुषकारे च परं ताभ्यां न विद्यते ॥ २ ॥

दो प्रकारके कर्मोंके निर्बंध होते हैं और उनसे मनुष्यमात्र बद्ध रहते हैं । उक्त दो कर्म दैव और पुरुषार्थ हैं । इनके अतिरिक्त कुछ नहीं होता है ॥ २ ॥

न हि दैवेन सिध्यन्ति कर्माण्येकेन सत्तम ।
न चापि कर्मणैकेन द्वाभ्यां सिद्धिस्तु योगतः । ॥ ३ ॥

हे सत्तम ! केवल दैवसे किसी कर्ममें सिद्धि नहीं प्राप्त होगी और केवल कर्म–पुरुषार्थ से भी नहीं होती, किंतु दोनोंके मेलसे या सहयोगसे सिद्धि होती है ॥ ३ ॥

ताभ्यामुभाभ्यां सर्वार्थो निबद्धा ह्यधमोत्तमाः ।
प्रवृत्ताश्चैव दृश्यन्ते निवृत्ताश्चैव सर्वशः ॥ ४ ॥

सभी उत्तम और अधम कार्य उन्ही दोनोंसे जडके रहकर, प्रवृत्त या निवृत्त हुए दिखाई देते हैं ॥ ४ ॥

पर्जन्यः पर्वते वर्षन्किं नु साधयते फलम् ।
कृष्टे क्षेत्रे तथावर्षन्किं नु साधयते फलम् ॥ ५ ॥

पर्वतपर बरसनेवाला पर्जन्य क्या फल निष्पन्न करता है ? और जोते हुए खेतमें बरसनेवाला क्या फलनिष्पत्ति करता है ? ॥ ५ ॥

उत्थानं चाप्यदैवस्य ह्यनुत्थानस्य दैवतम् ।
व्यर्थं भवति सर्वत्र पूर्वं कस्तत्र निश्चयः ॥ ६ ॥

दैवहीनका उत्थान और अनुत्थितका दैव सर्वत्र व्यर्थ होता है । उनमें पहला कौन है इसका निश्चय इस प्रकार है ॥ ६ ॥

प्रवृष्टे च यथा देवे सम्यक्क्षेत्रे च कर्षिते ।
बीजं महागुणं भूयात्तथा सिद्धिर्हि मानुषी ॥ ७ ॥

ठीक जलवृष्टि होनेपर तथा खेतकी जुताई अच्छी तरह करनेपर बीज बडाही लाभदायक होता है, वैसीही मनुष्यकी सिद्धि होती है । ॥ ७ ॥

तयोर्दैवं विनिश्चित्य स्ववशेनैव वर्तते ।
प्राज्ञाः पुरुषकारं तु घटन्ते दाक्ष्यमास्थिताः ॥ ८ ॥

उन दोनोंमेंसे जो दैव है वह निश्चयपूर्वक अपनेही बससे वर्तता है; और पंडित लोग सावधानीसे पुरुषार्थका ही उपयोग करते हैं ॥ ८ ॥

ताभ्यां सर्वे हि कार्यार्था मनुष्याणां नरर्षभ ।
विचेष्टन्तश्च दृश्यन्ते निवृत्ताश्च तथैव हि ॥ ९ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! मनुष्योंके सभी काम और उद्देश्य उन्हीं दोनोंके कारण प्रवृत्त होते हैं और निवृत्त होते हैं ॥ ९ ॥

कृतः पुरुषकारः सन्सोऽपि दैवेन सिध्यति ।
तथास्य कर्मणः कर्तुरभिनिर्वर्तते फलम् ॥ १० ॥

किया हुआ पुरुषार्थ भी दैवके कारण ही सफल होता है, और कर्मका फल कर्ताको मिल जाता है ॥ १० ॥

उत्थानं तु मनुष्याणां दक्षाणां दैववर्जितम् ।
अफलं दृश्यते लोके सम्यगप्युपपादितम् ॥ ११ ॥

मनुष्योंका उत्थान–पुरुषार्थ बहुत सावधानीसे करनेपर भी अगर उसे दैवका सहाय्य न होता हो तो इस विश्वमें वह विफल हो जाता है ॥ ११ ॥

तत्रालसा मनुष्याणां ये भवन्त्यमनस्विनः ।
उत्थानं ते विगर्हन्ति प्राज्ञानां तन्न रोचते ॥ १२ ॥

मनुष्योंमें जो आलसी और क्षुद्रचित्त होते हैं वे पुरुषार्थको बुरा मानते हैं, परंतु यह बात पंडितोंको पसंद नहीं आती ॥ १२ ॥

प्रायशो हि कृतं कर्म अफलं दृश्यते भुवि ।
अकृत्वा च पुनर्दुःखं कर्म दृश्येन्महाफलम् ॥ १३ ॥

विश्वमें प्रायः करके यह अनुभव होता है कि, किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता । कर्म न किया जाय तो दुःख भुगतना पडता है, इससे स्पष्ट है कि कर्म महाफलप्रद है ॥ १३ ॥

चेष्टामकुर्वँल्लभते यदि किंचिद्यदृच्छया ।
यो वा न लभते कृत्वा दुर्दशौ तावुभावपि ॥ १४ ॥

यदि किसीको बिना प्रयत्न किये संजोगवश कुछ प्राप्त होता हो और प्रयत्नवालेको कुछ न मिलता है, तो कहना पडेगा कि दोनोंकी स्थिति खराब है ॥ १४ ॥

शक्नोति जीवितुं दक्षो नालसः सुखमेधते ।
दृश्यन्ते जीवलोकेऽस्मिन्दक्षाः प्रायो हितैषिणः ॥ १५ ॥

दक्ष-प्रयत्नशील मनुष्य जीनेको योग्य रहता है, आलसीको सुख नहीं मिलता । प्रायः करके इस जीवलोकमें अपना हित चाहनेवाले लोक यत्नशील ही दिखाई देते हैं ॥ १५ ॥

यदि दक्षः समारम्भात्कर्मणां नाश्नुते फलम् ।
नास्य वाच्यं भवेत्किंचित्तत्त्वं चाप्यधिगच्छति ॥ १६ ॥

यदि उद्योगीको कर्म करनेपरभी कुछ फलप्राप्ति न हो तो उसकी जरा भी निंदा नहीं होती । किन्तु उससे भी कुछ सार अवश्य प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

अकृत्वा कर्म यो लोके फलं विन्दति विष्ठितः ।
स तु वक्तव्यतां याति द्वेष्यो भवति प्रायशः ॥ १७ ॥

इस जगत्में जो विना कुछ कार्य किये केवल दैववशात् फल पाता है, उसकी लोक प्रायःकरके निंदा करते हैं ओर द्वेष करते हैं ॥ १७ ॥

एवमेतदनादृत्य वर्तते यस्त्वतोऽन्यथा ।
स करोत्यात्मनोऽनर्थान्नैष बुद्धिमतां नयः ॥ १८ ॥

इस तत्त्वका अनादर करके जो मनुष्य इसके विपरीत बर्ताव करता है, वह अपने लिये अनर्थ पैदा करता है; यह बुद्धिमानोंकी रीति नहीं है ॥ १८ ॥

हीनं पुरुषकारेण यदा दैवेन वा पुनः ।
कारणाभ्यामथैताभ्यामुत्थानफलं भवेत् ।
हीनं पुरुषकारेण कर्म त्विह न सिध्यति ॥ १९ ॥

पुरुषार्थहीन अथवा दैवहीन प्रवृत्ति इन दोनों कारणोंके अभावके कारण निष्फल होगी । तिसपर भी पुरुषार्थहीन कर्म तो कभी सफल नहीं होता ॥ १९ ॥

दैवतेभ्यो नमस्कृत्य यस्त्वर्थान्सम्यगीहते ।
दक्षो दाक्षिण्यसंपन्नो न स मोघं विहन्यते ॥ २० ॥

देवताओंको नमस्कार करके अपने उद्देश्योंके प्रति जो ' सम्यगीहा ' रखता है वह शिष्टाचार संपन्न दक्ष–उद्योगी पुरुष कभी व्यर्थ विघ्नबाध्य नहीं होता है ॥ २० ॥

सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते ।
आपृच्छति च यच्छ्रेयः करोति च हितं वचः ॥ २१ ॥

' सम्यगीहा ' यह है कि जो मनुष्य वृद्धोंकी सेवा करता है, श्रेयस्कर बात उनसे पूछता है, और उनके हितकारी वचनके अनुसार कृति करता है, वह सम्यगीहा रखता है ऐसा समझना चाहिये ॥ २१ ॥

उत्थायोत्थाय हि सदा प्रष्टव्या वृद्धसंमताः ।
तेऽस्य योगे परं मूलं तन्मूला सिद्धिरुच्यते ॥ २२ ॥

बार बार उठाकर वृद्धोंसे उनकी संमति पूछनी चाहिये । वही उसके कार्यका आधार है । सफलता उसीपर निर्भर है ऐसा कहा जाता है ॥ २२ ॥

वृद्धानां वचनं श्रुत्वा यो ह्युत्थानं प्रयोजयेत् ।
उत्थानस्य फलं सम्यक्तदा स लभतेऽचिरात् ॥ २३ ॥

जो वृद्धोंके वचन सुनकर कार्यके लिये उत्थान करता है, उसके उत्थानका अच्छा फल उसे तुरन्त मिल जाता है ॥ २३ ॥

रागात्क्रोधाद्भयाल्लोभाद्योऽर्थानीहेत मानवः ।
अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः ॥ २४ ॥

जो असमर्थ और मूर्ख मनुष्य राग, क्रोध, भय या लोभके वशीभूत होकर कार्यपूर्ति चाहता है, वह शीघ्रही संपत्तिसे भ्रष्ट होता है ॥ २४ ॥

सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना ।
असमर्थ्य समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः ॥ २५ ॥

सो लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधनने मूर्खताके कारण यह अविचारपूर्वक योजनाहीन कार्य आरंभ किया था ॥ २५ ॥

हितबुद्धीननादृत्य संमन्त्र्यासाधुभिः सह।
वार्यमाणोऽकरोद्वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः ॥ २६ ॥

हित चाहनेवालोंका अनादर करके और दुष्टोंसे सलाह करके निषेध करनेपर भी अधिक गुणवान् पांडवोंसे उसने शत्रुता की ॥ २६ ॥

पूर्वमप्यतिदुःशीलो न दैन्यं कर्तुमर्हति।
तपत्यर्थे विपन्ने हि मित्राणामकृतं वचः ॥ २७ ॥

पहलेसेही जो दुष्ट था उस दुर्योधनका अब दुःख नहीं करना चाहिये। मित्रोंका अवमानित वचन कार्यके बिगडनेपर दुःखही पहुँचाता है ॥ २७ ॥

अन्वावर्तामहि वयं यत्तु तं पापपूरुषम्।
अस्मानप्यनयस्तस्मात्प्राप्तोऽयं दारुणो महान् ॥ २८ ॥

हम जो उस पापी पुरुषके आनुयायी बने इसलिये हमें भी यह बडा भयंकर दुष्परिणाम भुगतना पड रहा है ॥ २८ ॥

अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता।
बुद्धिश्चिन्तयतः किंचित्स्वं श्रेयो नावबुध्यते ॥ २९ ॥

मैं सोच रहा हूँ; फिर भी इस दुःखसे तपी हुई मेरी बुद्धि अभीतक मेरा कल्याण क्या है यह नहीं जान सकती ॥ २९ ॥

मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः सुहृदो बुधाः।
ते च पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत्कर्तव्यं तथा भवेत् ॥ ३० ॥

जब मनुष्यको मोह होता है तब उसे चाहिये कि वह जानकार हितकर्ताओंसे पूछे, पूछनेपर वे जो कुछ कहेंगे वह करना चाहिये ॥ ३० ॥

ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह।
उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिम् ॥ ३१ ॥

सो हम धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलकर तथा महाबुद्धिमान् विदुरके पास जाकर उनसे पूछें ॥ ३१ ॥

ते पृष्टाश्च वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरम्।
तदस्माभिः पुनः कार्यमिति मे नैष्ठिकी मतिः ॥ ३२ ॥

उनसे पूछनेपर वे जो कुछ कहेंगे वह हमारे लिये श्रेयस्कर रहेगा। वही हमें करना चाहिये, ऐसा मेरा सुनिश्चित अभिप्राय है ॥ ३२ ॥

अनारम्भात्तु कार्याणां नार्थः संपद्यते क्वचित् ।
कृते पुरुषकारे च येषां कार्यं न सिध्यति ।
दैवेनोपहतास्ते तु नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ९९ ॥

कार्य प्रारंभ न किया जाय तो कोई भी कार्य नहीं होगा। पुरुषार्थ करके भी जिनका कार्य सफल नहीं होता वे दुर्भाग्यके शिकार हैं, इसमें अधिक सोचनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ९९ ॥

: ३ :

सञ्जय उवाच

कृपस्य वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं शुभम् ।
अश्वत्थामा महाराज दुःखशोकसमन्वितः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे महाराज ! कृपाचार्यका धर्म–अर्थयुक्त और शुभ वचन सुनकर अश्वत्थामा दुःखशोकसे पीडित होकर, ॥ १ ॥

दह्यमानस्तु शोकेन प्रदीप्तेनाग्निना यथा ।
क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत ॥ २ ॥

मानो प्रज्वलित अग्नि हो ऐसे शोकके कारण जलता हुआ वह अपना मन क्रूर करके उन दोनोंसे बोला ॥ २ ॥

पुरुषे पुरुषे बुद्धि सा सा भवति शोभना ।
तुष्यन्ति च पृथक्सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया ॥ ३ ॥

प्रत्येक मनुष्यकी जो जो अलग अलग बुद्धि होती वह उसके लिये शोभाप्रद होती है। और सभी लोग अपनी अपनी बुद्धिसे संतुष्ट रहते हैं ॥ ३ ॥

सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम् ।
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति ॥ ४ ॥

हरेक मनुष्य अपनेको बडा बुद्धिमान् समझता है, अपने आपपर प्रेम करता है और अपनी ही प्रशंसा करता है ॥ ४ ॥

सर्वस्य हि स्वका प्रज्ञा साधुवादे प्रतिष्ठिता ।
परबुद्धिं च निन्दन्ति स्वां प्रशंसन्ति चासकृत् ॥ ५ ॥

हर मनुष्यको अपनी बुद्धि साधुवाद–प्रशंसाके योग्य मालूम पडती है, दूसरोंकी बुद्धिकी निंदा और अपनी बुद्धिकी बार बार प्रशंसा किया करते हैं ॥ ५ ॥

कारणान्तरयोगेन योगे येषां समा मतिः ।
तेऽन्योन्येन च तुष्यन्ति बहु मन्यन्ति चासकृत् ॥ ६ ॥

किसी अन्य कारणसे जिनकी बुद्धि समान होती है, वे परस्परसे सन्तुष्ट रहते हैं और परस्पर का बार बार बहुमान भी करते हैं ॥ ६ ॥

तस्यैव तु मनुष्यस्य सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
कालयोगेविपर्यासं प्राप्यान्योन्यं विपद्यते ॥ ७ ॥

एक ही मनुष्यकी एक ही बुद्धि समय समयपर कालगतिके फेरेमें आकर अन्तर्गत विरोध करने लगती है ॥ ७ ॥

अचिन्त्यत्वाद्धि चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः ।
चित्तवैकल्यमासाद्य सा सा बुद्धिः प्रजायते ॥ ८ ॥

विशेषतः मनुष्योंके चित्त बडे अतर्क्य होते हैं और यही कारण है कि उनमें विकलता पैदा होती है और उससे वैसी वैसी बुद्धि भी पैदा होती है ॥ ८ ॥

यथा हि वैद्यः कुशलो ज्ञात्वा व्याधिं यथाविधि ।
भेषजं कुरुते योगात्प्रशमार्थमिहाभिभो ॥ ९ ॥

जैसे कुशल वैद्य शास्त्रके अनुसार रोगनिदान कर प्रयत्नसे रोगशमनके लिये औषधयोजना करता है ॥ ९ ॥

एवं कार्यस्य योगार्थं बुद्धिं कुर्वन्ति मानवाः ।
प्रज्ञया हि स्वया युक्तास्तां च निन्दन्ति मानवाः ॥ १० ॥

इसी प्रकार स्वतंत्र बुद्धिवाले मनुष्य कार्यपूर्तीके लिये जो बुद्धि-विचार करते हैं उनकी निंदा लोग करते हैं ॥ १० ॥

अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः ।
मध्येऽन्यया जरायां तु सोऽन्यां रोचयते मतिम् ॥ ११ ॥

युवावस्थामें मनुष्य जिस बुद्धिसे मोहित होता है वह अलग होती है, मध्य अवस्थामें उसपर अलग बुद्धिका प्रभाव रहता है और बुढापेमें उसे अलग बुद्धि बहुत प्रिय होती है ॥ ११ ॥

व्यसनं वा पुनर्घोरं समृद्धिं वापि तादृशीम् ।
अवाप्य पुरुषो भोज कुरुते बुद्धिवैकृतम् ॥ १२ ॥

हे कृतवर्मन् ! बडे संकटमें पडकर अथवा बडी समृद्धि पाकर मनुष्य अपनी बुद्धिमें विकृति पैदा करता है ॥ १२ ॥

एकस्मिन्नेव पुरुषे सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
भवत्यनित्यप्रज्ञत्वात्सा तस्यैव न रोचते ॥ १३ ॥

एक ही पुरुषमें समय समय पर वह वह बुद्धि पैदा होती है । इस तरह बुद्धिके अनित्यत्वके कारण वह उसीको अप्रिय होती है ॥ १३ ॥

निश्चित्य तु यथाप्रज्ञं यां मतिं साधु पश्यति ।
तस्यां प्रकुरुते भावं सा तस्योद्योगकारिका ॥ १४ ॥

अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय करके जो विचार उसे अच्छा मालूम पडता है उसमें वह अपना भाव रखता है और वही उसे काममें प्रवृत्त करती है ॥ १४ ॥

सर्वो हि पुरुषो भोज साध्वेतदिति निश्चितः ।
कर्तुमारभते प्रीतो मरणादिषु कर्मसु ॥ १५ ॥

हे कृतवर्मन् ! प्रत्येक मनुष्य यह अच्छा ही है ऐसा निश्चय करके मरणादि कार्योंमें आनंद-पूर्वक प्रारंभ करता है ॥ १५ ॥

सर्वे हि युक्तिं विज्ञाय प्रज्ञां चापि स्वकां नराः ।
चेष्टन्ते विविधाश्चेष्टा हितमित्येव जानते ॥ १६ ॥

सभी लोग अपनी बुद्धि और युक्ति जानकर विविध चेष्टा करते हैं और समझते हैं कि उसीमें हित है ॥ १६ ॥

उपजाता व्यसनजा येयमद्य मतिर्मम ।
युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीम् ॥ १७ ॥

आज दुःखके कारण मेरी यह जो मति उत्पन्न हुई है उससे मेरा शोक मिट जायेगा, और वही मैं तुमसे कहनेवाला हूं ॥ १७ ॥

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा कर्म तासु विधाय च ।
वर्णे वर्णे समाधत्त एकैकं गुणवत्तरम् ॥ १८ ॥

प्रजापति प्रजाकी उत्पत्ति करके और उनके कर्मोंकी निश्चिति करके प्रत्येक वर्णमें एकेक को अधिक गुणवान् बनाते हैं ॥ १८ ॥

ब्राह्मणे दममव्यग्रं क्षत्रिये तेज उत्तमम् ।
दाक्ष्यं वैश्ये च शूद्रे च सर्ववर्णानुकूलताम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मणमें स्थिर इंद्रियदमन, क्षत्रियमें उत्कृष्ट तेज, वैश्यमें दक्षता और शूद्रमें सब वर्णोंको अनुकुल होना ये गुण दिये गये हैं ॥ १९ ॥

अदान्तो ब्राह्मणोऽसाधुर्निस्तेजाः क्षत्रियोऽधमः ।
अदक्षो निन्द्यते वैश्यः शूद्रश्च प्रतिकूलवान्　　॥ २० ॥

अदमनशील ब्राह्मण निन्द्य माना जाता है, तेजोहीन क्षत्रिय अधम है, दक्षताशून्य वैश्यकी निन्दा होती है और प्रतिकूल–उद्धत शूद्र बुरा समझा जाता है ॥ २० ॥

सोऽस्मि जातः कुले श्रेष्ठे ब्राह्मणानां सुपूजिते ।
मन्दभाग्यतयास्म्येतं क्षत्रधर्ममनु ष्ठितः　　॥ २१ ॥

सो मैं ब्राह्मणोंके लोगों द्वारा पूजित, श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, परंतु दुर्भाग्यवश इस क्षत्रधर्मका आचरण कर रहा हूं ॥ २१ ॥

क्षत्रधर्मं विदित्वाहं यदि ब्राह्मण्यसंश्रितम् ।
प्रकुर्यां सुमहत्कर्म न मे तत्साधु संमतम्　　॥ २२ ॥

ब्राह्मण्यके आश्रयसे रहनेवाले इस क्षत्रधर्मको जानकर यदि मैं अब बहुत बडा अच्छा कार्य करूं तो वह मुझे ठीक संमत नहीं होगा ॥ २२ ॥

धारयित्वा धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि　　॥ २३ ॥

युद्धमें दिव्य धनुष और दिव्य अस्त्र धारण करके और पिता मारे गये यह देखकर मैं सभामें क्या कहूंगा ? ॥ २३ ॥

सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्ममुपास्य तम् ।
गन्तास्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महाद्युतेः　　॥ २४ ॥

सो मैं आज मेरी इच्छानुसार उस क्षत्रधर्मका आश्रय करके मेरे महान् तेजस्वी पिता और राजा जिस मार्गसे गये उसी मार्गसे चला जाऊंगा ॥ २४ ॥

अद्य स्वप्स्यन्ति पाञ्चाला विश्वस्ता जितकाशिनः ।
विमुक्तयुग्यकवचा हर्षेण च समन्विताः ।
वयं जिता मताश्चैषां श्रान्ता व्यायमनेन च　　॥ २५ ॥

आज विजयी पांचाल इस विचारसे कि उनके द्वारा हम पराजित हुए हैं; हर्षित होकर, श्रमसे थककर अपने कवचोंको खोलकर विश्वासपूर्वक सो जायेंगे ॥ २५ ॥

तेषां निशि प्रसुप्तानां स्वस्थानां शिबिरे स्वके ।
अवस्कन्दं करिष्यामि शिबिरस्याद्य दुष्करम्　　॥ २६ ॥

रात्रिमें निजी शिबिरमें सोये हुए उनका मैं ऐसा उच्छेद करूंगा जो वास्तवमें दुष्कर है ॥२६॥

तानवस्कन्ध शिबिरे प्रेतभूतानिवचेतसः ।
सूदयिष्यामि विक्रम्य मघवानिव दानवान् ॥ २७ ॥
शिबिरमें प्रेतवत् अचेतन होकर पडे हुए उन सबको मार मारकर पराक्रमसे जिस तरह इंद्र दानवोंकी हत्या करता है मैं मृत्युके अधीन कर दूंगा ॥ २७ ॥

अद्य तान्सहितान्सर्वान्धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
सूदयिष्यामि विक्रम्य कक्षं दीप्त इवानलः ।
निहत्य चैव पाञ्चालाञ्शान्तिं लब्धास्मि सत्तम ॥ २८ ॥
आज मैं मिले हुए धृष्टद्युम्न आदि उन सबको पराक्रमसे मार डालूंगा जैसे प्रदीप्त अग्नि कक्षको नष्ट करती है। हे सज्जनोंमें श्रेष्ठ ! पांचालोंकी हत्या करनेके बाद ही मुझे शान्ति मिलेगी ॥ २८ ॥

पाञ्चालेषु चरिष्यामि सूदयन्नद्य संयुगे ।
पिनाकपाणिः संक्रुद्धः स्वयं रुद्रः पशुष्विव ॥ २९ ॥
मैं आज पशुओंमें घूमनेवाले भगवान्, पिनाकपाणि रुद्रकी तरह पांचालोंमें उन्हें मारता हुआ संचार करूंगा ॥ २९ ॥

अद्याहं सर्वपाञ्चालान्निहत्य च निकृत्य च ।
अर्दयिष्यामि संक्रुद्धो रणे पाण्डुसुतांस्तथा ॥ ३० ॥
आज मैं सब पांचालोंको मारकर और उनके टुकडे करके युद्धमें क्रोधवश होकर पांडवोंको भी मार डालूंगा ॥ ३० ॥

अद्याहं सर्वपाञ्चालैः कृत्वा भूमिं शरीरिणीम् ।
प्रहृत्यैकैकशस्तेभ्यो भविष्याम्यनृणः पितुः ॥ ३१ ॥
आज मैं सब पांचालोंको मारकर भूमिको शरीरोंसे आच्छादित करूंगा और उन प्रत्येकपर प्रहार करके अपने पिताका ऋण चुका दूंगा ॥ ३१ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भीष्मसैन्धवयोरपि ।
गमयिष्यामि पाञ्चालान्पदवीमद्य दुर्गमाम् ॥ ३२ ॥
दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और जयद्रथ इन सबके दुर्गम मार्गपर मैं आज सब पांचालोंको भेज दूंगा ॥ ३२ ॥

अद्य पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नस्य वै निशि ।
विरात्रे प्रमथिष्यामि पशोरिव शिरो बलात् ॥ ३३ ॥
आज मध्यरात्रिको पांचालराज धृष्टद्युम्नका शिर बलपूर्वक पशुके समान तोड दूंगा ॥ ३३ ॥

अद्य पाञ्चालपाण्डूनां शयितानात्मजान्निशि।
खड्गेन निशितेनाजौ प्रमथिष्यामि गौतम ॥ ३४ ॥

हे कृपाचार्य ! आज मैं रात्रिके समय पांचालों और पांडवोंके पुत्रोंके निद्रित अवस्थामें ही तीक्ष्ण खड्गसे युद्धक्षेत्रमें मार डालूंगा ॥ ३४ ॥

अद्य पाञ्चालसेनां तां निहत्य निशि सौप्तिके।
कृतकृत्यः सुखी चैव भविष्यामि महामते ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ १३४ ॥

हे महामते ! आज रातको सुप्त अवस्थामें उस पांचालसेनाका घात करके मैं कृतार्थ और सुखी हो जाऊंगा ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ १३४ ॥

: ४ :

कृप उवाच

दिष्ट्या ते प्रतिकर्तव्ये मतिर्जातेयमच्युत।
न त्वा वारयितुं शक्तो वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥ १ ॥

कृपाचार्य बोले– हे अपराजित ! यह अच्छी बात है कि तुम्हें दुष्मनका अपकार करनेकी सूझी है। तुम्हें रोकनेमें वज्रधारी इंद्रभी असमर्थ है ॥ १ ॥

अनुयास्यावहे त्वां तु प्रभाते सहितावुभौ।
अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्तकवचध्वजः ॥ २ ॥

हम दोनों साथ मिलकर सुबहको तुम्हारे पीछे आयेंगे। आज रातको कवच और ध्वज रखकर विश्राम करो ॥ २ ॥

अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः।
परानभिमुखं यान्तं रथावास्थाय दंशितौ ॥ ३ ॥

आमने सामने शत्रुपर जब तुम आक्रमण करोगे तो मैं और सात्वत कृतवर्मा दोनों तुम्हारे अनुयायी बनेंगे। क्यों कि हमें भी शत्रुका दंश हुआ है ॥ ३ ॥

आवाभ्यां सहितः शत्रूञ्श्वोऽसि हन्ता समागमे।
विक्रम्य रथिनां श्रेष्ठ पाञ्चालान्सपदानुगान् ॥ ४ ॥

हे रथिश्रेष्ठ ! हम दोनोंकी सहायतासे तुम पराक्रम करके अपने शत्रु पांचालोंको अनुयायियोंके सहित मार सकोगे ॥ ४ ॥

शक्तस्त्वमसि विक्रान्तुं विश्रमस्व निशामिमाम् ।
चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम् ॥ ५ ॥

हे तात ! तुम विक्रम करनेके लिये पूर्ण समर्थ हो । परंतु इस रातको विश्राम लो । जागनेमें तुम्हारा दीर्घकाल व्यतीत हुआ है इस लिये आजकी रात्रिमें तुम सोजाओ ॥ ५ ॥

विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद ।
समेत्य समरे शत्रून्वधिष्यसि न संशयः ॥ ६ ॥

हे अश्वत्थामन् ! विश्राम लेकर, निद्रासे मुक्त और स्वस्थचित्त होकर युद्धमें शत्रुसे भिडकर उनका तुम वध करोगे इसमें जरा भी संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

न हि त्वा रथिनां श्रेष्ठ प्रगृहीतवरायुधम् ।
जेतुमुत्सहते कश्चिदपि देवेषु पावकिः ॥ ७ ॥

हे रथियोंमें श्रेष्ठ, उत्कृष्ट आयुध लिये लडनेवाले तुम्हें देवराज इंद्र भी नहीं पराजित कर सकता ॥ ७ ॥

कृपेण सहितं यान्तं युक्तं च कृतवर्मणा ।
को द्रौणिं युधि संरब्धं योधयेदपि देवराट् ॥ ८ ॥

कृपाचार्यके सहित और कृतवर्मासे मिले हुए और युद्धमें उतरे हुए अश्वत्थामासे क्या देवराज भी लड सकता है ? ॥ ८ ॥

ते वयं परिविश्रान्ता विनिद्रा विगतज्वराः ।
प्रभातायां रजन्यां वै निहनिष्याम शात्रवान् ॥ ९ ॥

सो हम पूरा विश्राम लेकर, निद्रा और पीडासे मुक्त हो रात्रिके समाप्त होतेही शत्रुओंका निःपात कर डालेंगे ॥ ९ ॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि मम चैव न संशयः ।
सात्वतोऽपि महेष्वासो नित्यं युद्धेषु कोविदः ॥ १० ॥

इसमें संदेह नहीं है कि तुम्हारे और मेरे भी अस्त्र दिव्य हैं । साथ साथ ही सात्वत कृतवर्मा भी तेजस्वी हैं और युद्धमें हमेशा कुशल रहा है ॥ १० ॥

ते वयं सहितास्तात सर्वाञ्शत्रून्समागतान् ।
प्रसह्य समरे हत्वा प्रीतिं प्राप्स्याम पुष्कलाम् ।
विश्रमस्व त्वमव्यग्रः स्वप चेमां निशां सुखम् ॥ ११ ॥

सो हम तीनों संगठित होकर सामने आनेवाले सब शत्रुओंको बलसे मारकर बहुत बडे आनंदका अनुभव करेंगे । तुम निश्चित होकर इस रातको सुखसे सो जाओ ॥ ११ ॥

अहं च कृतवर्मा च प्रयान्तं त्वां नरोत्तम ।
अनुयास्याव सहितौ धन्विनौ परतापिनौ ।
रथिनं त्वरया यान्तं रथावास्थाय दंशितौ ॥ १२ ॥

हे नरोत्तम! रथपर आरूढ होकर युद्धके लिये जल्दीसे बाहर निकलनेवाले तुम्हारे, शत्रुओंको घबरानेवाले, धनुर्धारी मैं और कृतवर्मा दोनों मिलकर पदानुयायी बनेंगे ॥ १२ ॥

स गत्वा शिबिरं तेषां नाम विश्राव्य चाहवे ।
ततः कर्तासि शत्रूणां युध्यतां कदनं महत् ॥ १३ ॥

सो तुम उनके शिबिरपर जाकर और उन्हें युद्धके लिये आव्हान करके उन लडनेवालोंका बडा हत्याकांड कर सकोगे ॥ १३ ॥

कृत्वा च कदनं तेषां प्रभाते विमलेऽहनि ।
विहरस्व यथा शक्रः सूदयित्वा महासुरान् ॥ १४ ॥

प्रभात होनेपर स्वच्छ दिनमें उनका नाश करके असुरोंका नाश करनेवाले इंद्रके समान तुम विहार करो ॥ १४ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं पाञ्चालानां वरूथिनीम् ।
दैत्यसेनामिव क्रुद्धः सर्वदानवसूदनः ॥ १५ ॥

दानवोंका वध करनेवाला इन्द्र जैसे क्रुद्ध होकर सब राक्षस सेनाका पराभव करता है उसी तरह तुम भी युद्धमें पांचालोंकी सेनाका पराभव कर सकते हो ॥ १५ ॥

मया त्वां सहितं संख्ये गुप्तं च कृतवर्मणा ।
न सहेत विभुः साक्षाद्वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥ १६ ॥

मेरी सहायतासे युक्त और कृतवर्मा द्वारा रक्षित तुमको युद्धमें वज्रधारी साक्षात् इन्द्र भी स्वयं सहनेमें समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥

न चाहं समरे तात कृतवर्मा तथैव च ।
अनिर्जित्य रणे पाण्डून्व्यपयास्याव कर्हिचित् ॥ १७ ॥

हे तात! युद्धमें मैं ओर ये कृतवर्मा भी पांडवोंको जीते बिना युद्धमेंसे दूर नहीं हटेंगे ॥ १७ ॥

हत्वा च समरे क्षुद्रान्पाञ्चालान्पाण्डुभिः सह ।
निवर्तिष्यामहे सर्वे हता वा स्वर्गगा वयम् ॥ १८ ॥

हम सब युद्धमें क्षुद्र पांचालोंको पांडवोंके सहित मारकर ही वापिस लौटेंगे, और अगर मारे गये तो स्वर्ग सिधारेंगे ॥ १८ ॥

सर्वोपायैः सहायास्ते प्रभाते वयमेव हि ।
सत्यमेतन्महाबाहो प्रब्रवीमि तवानघ ॥ १९ ॥

हे महाबाहो ! सुबह होनेपर वे सब उपायोंसे सुसज्ज होंगे और हम भी होंगे । यह सत्य मैं तुमसे कह रहा हूं ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्ततो द्रौणिर्मातुलेन हितं वचः ।
अब्रवीन्मातुलं राजन्क्रोधादुद्वृत्य लोचने ॥ २० ॥

महाराज ! इस प्रकार मातुलका हितवचन सुनकर द्रोणपुत्र क्रोधसे आंखें उठाकर मातुलसे बोला ॥ २० ॥

आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च ।
अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः ॥ २१ ॥

आतुर–रूग्ण, क्रुद्ध, संपत्तिकी चिन्ता करनेवाले और कामपूर्तिके लिये उत्सुक मनुष्यको निद्रा कहां ? ॥ २१ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं पश्य मेऽद्य चतुष्टयम् ।
यस्य भागश्चतुर्थो मे स्वप्नमह्नाय नाशयेत् ॥ २२ ॥

आज ये चारों मुझमें इकठ्ठा हुए हैं । जिसका एक चौथा हिस्सा भी मेरी निद्राका झटसे नाश करेगा ॥ २२ ॥

किं नाम दुःखं लोकेऽस्मिन्पितुर्वधमनुस्मरन् ।
हृदयं निर्दहन्मेऽद्य रात्र्यहानि न शाम्यति ॥ २३ ॥

पिताके वधका स्मरण करते हुए मुझे और कौनसा दुःख हो सकता है ? दिन रात जलता हुआ मेरा हृदय शान्त नहीं हो रहा है ॥ २३ ॥

यथा च निहतः पापैः पिता मम विशेषतः ।
प्रत्यक्षमपि ते सर्वं तन्मे मर्माणि कृन्तति ॥ २४ ॥

जिस तरह दुष्टोंने विशेष करके मेरे पिताका वध किया है वह दृश्य प्रत्यक्ष दृष्टिके सामने खडा होकर मेरे हृदयमर्मका छेद करता है ॥ २४ ॥

कथं हि मादृशो लोके मुहूर्तमपि जीवति ।
द्रोणो हतेति यद्वाचः पाञ्चालानां श्रृणोम्यहम् ॥ २५ ॥

द्रोणाचार्य मारे गये एसे शब्द सुनकर भी मुझ जैसा मनुष्य कैसे क्षणभरके लिये भी जीवित रह सकता है ? ॥ २५ ॥

धृष्टद्युम्नमहत्वाजौ नाहं जीवितुमुत्सहे ।
स मे पितृवधाद्वध्यः पाञ्चाला ये च संगताः ॥ २६ ॥
युद्धमें धृष्टद्युम्नको विना मारे मैं जीना नहीं चाहता हूं । पिताजीका वध करनेके कारण वह और जो उसके साथ थे वे सब मेरे वध्य हैं ॥ २६ ॥

विलापो भग्नसक्थस्य यस्तु राज्ञो मया श्रुतः ।
स पुनर्हृदयं कस्य क्रूरस्यापि न निर्दहेत् ॥ २७ ॥
राजा दुर्योधनका, जिसकी जांघ टूटी हुई है विलाप मैंने सुना है, क्या वह किसी क्रूरके मनको भी नहीं दहेगा ? ॥ २७ ॥

कस्य ह्यकरुणस्यापि नेत्राभ्यामश्रु नाव्रजेत् ।
नृपतेर्भग्नसक्थस्य श्रुत्वा तादृग्वचः पुनः ॥ २८ ॥
जांघ टूटे हुए राजाका वैसा भाषण सुनकर क्या किसी निष्करुण मनुष्यके भी नयनोंमें आँसू नहीं आयेंगे ? ॥ २८ ॥

यश्चायं मित्रपक्षो मे मयि जीवति निर्जितः ।
शोकं मे वर्धयत्येष वारिवेग इवार्णवम् ।
एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥ २९ ॥
और यह जो मेरा मित्रपक्ष मेरे जीते जी पराजित हुआ है वह बात, जैसे पानीकी बाढ समुद्रको बढाती है वैसे ही मेरे शोकको बढा रही है । ऐसी हालतमें जब मेरा मन एक ही विषयपर केंन्द्रित हुआ है तब मुझे निद्रा कहां और सुख कहां ? ॥ २९ ॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां हि तानहं परिरक्षितान् ।
अविषह्यतमान्मन्ये महेन्द्रेणापि मातुल ॥ ३० ॥
हे मातुल ! जब श्रीकृष्ण और अर्जुन उनकी रक्षा करेंगे तब तो मैं मानता हूं कि वे महेंद्रके लिये भी अजेय हैं ॥ ३० ॥

न चास्मि शक्यः संयन्तुमस्मात्कार्यात्कथंचन ।
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन्यो मां कार्यान्निवर्तयेत् ।
इति मे निश्चिता बुद्धिरेषा साधुमता च मे ॥ ३१ ॥
दूसरे ऐसी बात है कि किसी उपायसे भी इस कार्यसे मुझे रोकना संभव नहीं है, और जो इस कार्यसे मुझे परावृत्त कर सकेगा ऐसा कोई मानव इस दुनियामें मुझे नहीं दिखाई दे रहा है । मेरी यह बुद्धि निश्चित है और अच्छी भी है ॥ ३१ ॥

वार्त्तिकैः कथ्यमानस्तु मित्राणां मे पराभवः ।
पाण्डवानां च विजयो हृदयं दहतीव मे ॥ ३२ ॥

संवाद दाताओंका द्वारा सुनाई पडनेवाला मित्रोंका पराभव और पांडवोंकी विजय मेरे हृदयको जलाती है ॥ ३२ ॥

अहं तु कदनं कृत्वा शत्रूणामद्य सौप्तिके ।
ततो विश्रमिता चैव स्वप्ता च विगतज्वरः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ १६७ ॥

आज मैं सौप्तिकमें शत्रुओंका हत्याकांड करके तदनन्तर ही विश्राम लूँगा और दुःखमुक्त होकर सो जाऊँगा ॥ ३३ ॥

महाभारतके सौप्तिकपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ १६७ ॥

: ५ :

कृप उवाच

शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः ।
नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः ॥ १ ॥

कृपाचार्य बोले— मैं समझता हूं कि जिसकी बुद्धि दुष्ट है और इंद्रियां काबूमें नहीं हैं वह पुरुष यद्यपि सुनना चाहे तोभी धर्म और अर्थको पूरी तरह जाननेमें असमर्थ है ॥ १ ॥

तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षति ।
न च किञ्चन जानाति सोऽपि धर्मार्थनिश्चयम् ॥ २ ॥

उसी प्रकार जो बुद्धिमान् मनुष्य विनय नहीं सीखता है वह भी धर्म और अर्थका निश्चय करनेके बारेमें कुछ नहीं जानता है ॥ २ ॥

शुश्रूषुस्त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः ।
जानीयादागमान्सर्वान्ग्राह्यं च न विरोधयेत् ॥ ३ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष इंद्रियोंको काबूमें रखकर शुश्रूषा करता है वह समस्त वेद अच्छी तरह जान लेगा और ग्राह्यका विरोध नहीं करेगा ॥ ३ ॥

अनेयस्त्ववमानी यो दुरात्मा पापपूरुषः ।
दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहुपापकम् ॥ ४ ॥

दुराराध्य, नीच, दुष्ट ऐसा जो पापी पुरुष होता है वह बताये हुए कल्याणका त्याग करके बहुत पाप करता है ॥ ४ ॥

नाथवन्तं तु सुहृदः प्रतिषेधन्ति पातकात् ।
निवर्तते तु लक्ष्मीवान्नालक्ष्मीवान्निवर्तते ॥ ५ ॥

समझदार मनुष्यको हितैषी पापसे निवृत्त करते हैं। लक्ष्मीवान् सुबुद्धिमान् मनुष्य निवृत्त होता है, परंतु अलक्ष्मीवान् नहीं निवृत्त होता ॥ ५ ॥

यथा ह्युच्चावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते ।
तथैव सुहृदा शक्यो नशक्यस्त्ववसीदति ॥ ६ ॥

जिस प्रकार पागलको भले बुरे बचनोंसे समझाया करते हैं, उसी प्रकार हितैषी लोगों द्वारा मित्रको समजाया जा सकता है, जिसे नहीं समझाया जा सकता वह हानि उठाता है ॥ ६ ॥

तथैव सुहृदं प्राज्ञं कुर्वाणं कर्म पापकम् ।
प्राज्ञाः संप्रतिषेधन्ते यथाशक्ति पुनः पुनः ॥ ७ ॥

इसी तरह प्रज्ञावान् होकर भी पापकर्म प्रवण मित्रको प्रज्ञावान् लोग यथाशक्ति बार बार निवृत्त करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ७ ॥

स कल्याणे मतिं कृत्वा नियम्यात्मानमात्मना ।
कुरू मे वचनं तात येन पश्चान्न तप्यसे ॥ ८ ॥

हे तात ! सो तुम अपनी बुद्धिको कल्याणके लिये प्रवृत्त करके और स्वयं ही अपना नियमन करके मेरे वचनका अनुसरण करो, जिससे तुम्हें पछताना न पडे ॥ ८ ॥

न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः ।
तथैव न्यस्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम् ॥ ९ ॥

जगत्में धर्मके अनुसार निद्राधीनोंका वध अच्छा नहीं माना जाता । उसी प्रकार शस्त्रों और रथघोडोंसे खाली लोगोंका वध भी अच्छा नहीं माना जाता ॥ ९ ॥

ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्युः शरणागताः ।
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः ॥ १० ॥

और जो लोग कहते हैं कि मैं तुम्हारा हूं, जो शरणात हैं, जिनके केश खुले पडे हैं, और जिनके वाहन नष्ट हुए हैं, उनका वध दूषणीय माना जाता है ॥ १० ॥

अद्य स्वप्स्यन्ति पाञ्चाला विमुक्तकवचा विभो ।
विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः ॥ ११ ॥

हे विभो सामर्थ्यवान् ! आज पांचाल कवच खोलकर विश्वासपूर्वक प्रेतवत् अचेतन होकर सारी रात सो जायेंगे ॥ ११ ॥

यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः ।
व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे ॥ १२ ॥

जो नीच ऐसी हालतमें उन्हें मारना चाहेगा वह निश्चय ही अगाध, विशाल और अलंघ्य नरकमें डूब जायेगा ॥ १२ ॥

सर्वास्त्रविदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः ।
न च ते जातु लोकेऽस्मिन्सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम् ॥ १३ ॥

विश्वमें सर्व अस्त्रज्ञ लोगोंमें श्रेष्ठ ऐसे तुम्हारी कीर्ति है, और इस जगत्में कोई छोटासा भी कलंक तुम्हें नहीं लगा है ॥ १३ ॥

त्वं पुनः सूर्यसङ्काशः श्वोभूत उदिते रवौ ।
प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान् ॥ १४ ॥

कल सूरजके उगनेपर तुम सूर्यके समान प्रकाशमें सब भूतोंके विजेता और युद्धमें शत्रुओंके विजेता बनो ॥ १४ ॥

असंभावितरूपं हि त्वयि कर्म विगर्हितम् ।
शुक्ले रक्तमिव न्यस्तं भवेदिति मतिर्मम ॥ १५ ॥

मेरी संमति ऐसी है कि तुम्हारे बारेमें निंद्य अपकृत्य, श्वेत पट पर रखे रक्तके समान असंगतसा मालूम पडता है ॥ १५ ॥

अश्वत्थामोवाच

एवमेतद्यथात्थ त्वमनुशास्मीह मातुल ।
तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः ॥ १६ ॥

अश्वत्थामाने कहा– हे मातुल ! जो आपने कहा है वह ठीक ही है । पर मैं कहता हूं कि उन्होंने ही यह सेतु धर्मरूप सैंकडों बार तोड मरोड डाला है ॥ १६ ॥

प्रत्यक्षं भूमिपालानां भवतां चापि सन्निधौ ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ १७ ॥

राजा महाराजाओंके समक्ष और तुम लोगोंके निकट होते हुए भी शस्त्र छोडकर बैठे हुए मेरे पिताका धृष्टद्युम्नने वध किया था ॥ १७ ॥

कर्णश्च पतिते चक्रे रथस्य रथिनां वरः ।
उत्तमे व्यसने सन्नो हतो गाण्डीवधन्वना ॥ १८ ॥

रथचक्रके छूट पडनेपर बडे संकटमें पडे रथिश्रेष्ठ कर्णको गांडीवधारी अर्जुनने मार डाला था ॥ १८ ॥

तथा शांतनवो भीष्मो न्यस्तशस्त्रो निरायुधः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य हतो गाण्डीवधन्वना ॥ १९ ॥

उसी प्रकार शंतनुपुत्र भीष्म पितामह जब शस्त्रत्याग करके खाली हाथ बैठे थे तब शिखण्डीको आगे बढाकर गांडीवधारी अर्जुनने उनकाभी वध किया था ॥ १९ ॥

भूरिश्रवा महेष्वासस्तथा प्रायगतो रणे ।
क्रोशतां भूमिपालानां युयुधानेन पातितः ॥ २० ॥

तथा बडे तेजस्वी भूरिश्रवाको यद्यपि रणभूमिपर वह प्रयोपवेशन कर रहा था तो भी चिल्लाते हुए राजाओंके सामने युयुधानने मारा था ॥ २० ॥

दुर्योधनश्च भीमेन समेत्य गदया मृधे ।
पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः ॥ २१ ॥

और भीमने दुर्योधनपर गदासे प्रहार करके, अधर्मपूर्वक, सब राजाओंके देखतेही उसे मारा था ॥ २१ ॥

एकाकी बहुभिस्तत्र परिवार्य महारथैः ।
अधर्मेण नरव्याघ्रो भीमसेनेन पातितः ॥ २२ ॥

बहुत महारथोंने अकेले नरव्याघ्र दुर्योधनको घेरा और अधर्मपूर्वक भीमने उसे मारा था ॥२२॥

विलापो भग्नसक्थस्य यो मे राज्ञः परिश्रुतः ।
वार्त्तिकानां कथयतां स मे मर्माणि कृन्तति ॥ २३ ॥

जांघ टूटे राजाका जो विलाप मैंने सुना है, और संवादाताओंके कथनसे जो मालूम हुआ वह मेरे मर्मोंको छेदता है ॥ २३ ॥

एवमधार्मिकाः पापाः पाञ्चाला भिन्नसेतवः ।
तानेतं भिन्नमर्यादान्किं भवान्न विगर्हति ॥ २४ ॥

इस तरह पांचाल अधार्मिक, पापी और धर्मका पुल तोडनेवाले हैं । ऐसे मर्यादा भंग करनेवालोंकी आप क्यों नहीं निंदा करते ? ॥ २४ ॥

पितृहन्तॄनहं हत्वा पाञ्चालान्निशि सौप्तिके ।
कामं कीटः पतङ्गो वा जन्म प्राप्य भवामि वै ॥ २५ ॥

पिताकी हत्या करनेवाले पांचालोंका वध रातको सौप्तिकमें करके फिर भले कीट अथवा पतंगका जन्म पाकर रहनेको मैं तैयार हूं ॥ २५ ॥

त्वरे चाहमनेनाद्य यदिदं मे चिकीर्षितम् ।
तस्य मे त्वरमाणस्य कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥ २६ ॥

यह मैंने जो करनेका निश्चित किया है उससे मुझे उतावली हो रही है; इस तरह त्वरा करनेवाले मुझको निद्रा कहां और सुख भी कहां ? ॥ २६ ॥

न स जातः पुमाँल्लोके कश्चिन्न च भविष्यति ।
यो मे व्यावर्तयेदेतां वधे तेषां कृतां मतिम्　　॥ २७ ॥

ऐसा कोई मनुष्य नहीं पैदा हुआ है और न पैदा होगा भी, जो कि उनके वधके लिये मेरे किये निश्चयको फेर सकेगा ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
एकान्ते योजयित्वाश्वान्प्रायादभिमुखः परान्　　॥ २८ ॥

हे महाराज ! प्रतापी अश्वत्थामा यों कहकर एकान्तमें घोडे जोतकर शत्रुओंपर आक्रमण करनेके लिये आगे बढा ॥ २८ ॥

तमब्रूतां महात्मानौ भोजशारद्वतावुभौ ।
किमयं स्यन्दनो युक्तः किं च कार्यं चिकीर्षितम्　　॥ २९ ॥

तब कृतवर्मा और कृपाचार्य ये दोनों महात्मा उससे बोले कि, यह रथ क्यों जोडा है ? तुमने क्या करनेकी ठानी है ? ॥ २९ ॥

एकसार्थं प्रयातौ स्वस्त्वया सह नरर्षभ ।
सहदुःखसुखौ चैव नावां शङ्कितुमर्हसि　　॥ ३० ॥

हे नरश्रेष्ठ ! हम दोनों एक साथ ही तुम्हारी सहायता करने निकले हुए हैं । हम दोनोंके सुख दुःख समान हैं, हमारे विषयमें तुम्हें आशंका नहीं लेनी चाहिये ॥ ३० ॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ।
ताभ्यां तथ्यं तदाचख्यौ यदस्यात्मचिकीर्षितम्　　॥ ३१ ॥

तब अश्वत्थामाने पिताके वधका स्मरण करके क्रुद्ध होकर उसने जो करनेका निश्चय किया था वह उन दोनोंसे यथा तथ्य कह डाला ॥ ३१ ॥

हत्वा शतसहस्राणि योधानां निशितैः शरैः ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः　　॥ ३२ ॥

तीक्ष्ण बाणोंसे हजारों वीरोंको मारकर शस्त्रत्याग करके बैठे मेरे पिताका धृष्टद्युम्नने वध किया है ॥ ३२ ॥

तं तथैव हनिष्यामि न्यस्तवर्माणमद्य वै ।
पुत्रं पाञ्चालराजस्य पापं पापेन कर्मणा　　॥ ३३ ॥

कवच खोलकर सोये हुए पापी पांचाल राजपुत्रको मैं उसी तरह पाप कर्मसे ही मार डालूंगा ॥ ३३ ॥

कथं च निहतः पापः पाञ्चालः पशुवन्मया।
शस्त्राहवजितां लोकान्प्राप्नुयादिति मे मतिः ॥ ३४ ॥
मेरी धारणा ऐसी है कि पशुकी तरह मेरे हाथों मारा गया धृष्टद्युम्न युद्धमें संमुख और शस्त्रोंसे मरे वीरोंके लोकमें कैसे पहुंच जायेगा ? ॥ ३४ ॥

क्षिप्रं सन्नद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ।
समास्थाय प्रतीक्षेतां रथवर्यौ परन्तपौ ॥ ३५ ॥
शीघ्र कवच चढाकर, खड्ग लेकर, धनुष खींचकर और श्रेष्ठ रथोंमें आरूढ होकर मेरी प्रतीक्षा करो ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान्।
तमन्वगात्कृपो राजन्कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३६ ॥
हे महाराज! रथस्थ अश्वत्थामा यों कहकर शत्रुओंकी ओर चल दिया। तब कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों उसके पीछे जाने लगे ॥ ३६ ॥

ते प्रयाता व्यरोचन्त परानभिमुखास्त्रयः।
हूयमाना यथा यज्ञे समिद्धा हव्यवाहनाः ॥ ३७ ॥
वे तीनों शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये जब निकले तब जिसे आहुतियां दी जा रही हैं ऐसे यज्ञिय प्रज्वलित अग्निदेवके समान दमक रहे थे ॥ ३७ ॥

ययुश्च शिबिरं तेषां संप्रसुप्तजनं विभो।
द्वारदेशं तु संप्राप्य द्रौणिस्तस्थौ रथोत्तमे ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ २०५ ॥

जिसमें सब लोग सो रहे थे ऐसे उनके शिबिरपर वे जा पहुंचे। हे महाराज! अश्वत्थामा द्वारपर जाकर अपने उत्तम रथमें खडा हुआ ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें पांचवा अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ २०५ ॥

: ६ :

धृतराष्ट्र उवाच—
द्वारदेशे ततो द्रौणिमवस्थितमवेक्ष्य तौ।
अकुर्वतां भोजकृपौ किं सञ्जय वदस्व मे ॥ १ ॥
हे संजय! उसके बाद द्वारदेशपर खडे अश्वत्थामाको देखकर कृतवर्मा और कृपाचार्यने क्या किया वह तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

कृतवर्माणमामन्त्र्य कृपं च स महारथम् ।
द्रौणिर्मन्युपरीतात्मा शिबिरद्वारमासदत् ॥ २ ॥

संजय बोले— कृतवर्माको और महारथ कृपाचार्यको पुकारकर क्रोधाविष्ट अश्वत्थामा शिबिरके दरवाजे पर आ खडा हुआ ॥ २ ॥

तत्र भूतं महाकायं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
सोऽपश्यद्द्वारमावृत्य तिष्ठन्तं लोमहर्षणम् ॥ ३ ॥

वहां उसने महान् शरीरवाले, चंद्र सूर्यके समान तेजस्वी, भयानक और दरवाजेको रोककर खडे किसी भूतको देखा ॥ ३ ॥

वसानं चर्म वैयाघ्रं महारुधिरविस्रवम् ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ ४ ॥

उसने जिसमेंसे रुधिरकी बूंदें टपक रही थीं ऐसा व्याघ्र चर्म पहना हुआ था, कृष्णाजिनका उत्तरीय और सर्पोंका यज्ञोपवीत बनाया था ॥ ४ ॥

बाहुभिः स्वायतैः पीनैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ।
बद्धाङ्गदमहासर्पं ज्वालामालाकुलाननम् ॥ ५ ॥

उसके बाहू बहुत लंबे, पुष्ट और भांति भांतिके शस्त्रोंसे सज्ज थे । बाहुभूषणकी जगह सर्प बंधे हुए थे और अविरत निकलनेवाली ज्वालाओंसे मुख व्याप्त था ॥ ५ ॥

दंष्ट्राकरालवदनं व्यादितास्यं भयावहम् ।
नयनानां सहस्रैश्च विचित्रैरभिभूषितम् ॥ ६ ॥

उस भीषण भूतका मुंह दंष्ट्राओंसे कराल और खुला था । और वह हजारो अद्भुत आंखोंसे विभूषित था ॥ ६ ॥

नैव तस्य वपुः शक्यं प्रवक्तुं वेष एव वा ।
सर्वथा तु तदालक्ष्य स्फुटेयुरपि पर्वताः ॥ ७ ॥

उसके शरीर या भेषके बारेमें कुछ कहना आसान नहीं है । उससे टकराकर पर्वत भी सर्व था टूट पडेंगे ॥ ७ ॥

तस्यास्यान्नसिकाभ्यां च श्रवणाभ्यां च सर्वशः ।
तेभ्यश्चाक्षिसहस्रेभ्यः प्रादुरासन्महार्चिषः ॥ ८ ॥

उसकी नाकमेंसे, मुंहमेंसे, कानों और हजारों आंखोंमेंसे बडी बडी ज्वालाएं निकल रही थीं ॥ ८ ॥

तथा तेजोमरीचिभ्यः शङ्खचक्रगदाधराः ।
प्रादुरासन्हृषीकेशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥

उसके तेजकी किरणोंसे शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले सैंकडों हजारों विष्णु प्रकट हो रहे थे ॥ ९ ॥

तदत्यद्भुतमालोक्य भूतं लोकभयंकरम् ।
द्रौणिरव्यथितो दिव्यैरस्त्रवर्षैरवाकिरत् ॥ १० ॥

उस अति अद्भुत और लोक भयंकर भूतको देखकर न डरते हुए उसपर अश्वत्थामाने दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा आरंभ की ॥ १० ॥

द्रौणिमुक्ताञ्शरांस्तांस्तु तद्भूतं महदग्रसत् ।
उदधेरिव वार्योघान्पावको वडवामुखः ॥ ११ ॥

जैसे वडवाग्नि समुद्रके जलको निगल जाती है उस प्रकार उस भयानक भूतने अश्वत्थामाके छोडे हुए बाण निगल डाले ॥ ११ ॥

अश्वत्थामा तु संप्रेक्ष्य ताञ्शरौघान्निरर्थकान् ।
रथशक्तिं मुमोचास्मै दीप्तामग्निशिखामिव ॥ १२ ॥

अपने उन बाणोंके ओघको व्यर्थ होते देख अश्वत्थामाने उसपर धधकती अग्निज्वाला जैसी रथशक्ति छोडी ॥ १२ ॥

सा तदाहत्य दीप्ताग्रा रथशक्तिरशीर्यत ।
युगान्ते सूर्यमाहत्य महोल्केव दिवश्च्युता ॥ १३ ॥

वह प्रज्वलित रथशक्ति उससे टकराकर आकाशसे छूट पडी, बडी उल्का जैसे सूर्यसे टकराकर नष्ट होती है वैसेही छिन्नभिन्न हो गयी ॥ १३ ॥

अथ हेमत्सरुं दिव्यं खड्गमाकाशवर्चसम् ।
कोशात्समुद्बबर्हाशु बिलाद्दीप्तमिवोरगम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर सुनहली मूठवाला और आकाशके समान चमकनेवाला खड्ग उसने तुरंत कोशमेंसे जैसे विवरमेंसे तेजस्वी नाग निकलता है वैसे ही बाहर निकाला ॥ १४ ॥

ततः खड्गवरं धीमान्भूताय प्राहिणोत्तदा ।
स तदासाद्य भूतं वै विलयं तूलवद्ययौ ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् अश्वत्थामाने वह उत्कृष्ट खड्ग उस भूतपर जब फेंका तब उससे टकराकर कपासके समान विलीन हो गया ॥ १५ ॥

ततः स कुपितो द्रौणिरिन्द्रकेतुनिभां गदाम् ।
ज्वलन्तीं प्राहिणोत्तस्मै भूतं तामपि चाग्रसत् ॥ १६ ॥

उसके बाद अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर वज्रतुल्य जलती हुई गदा भूतपर फेंकी । परंतु भूत उसे भी ग्रस्त कर चुका ॥ १६ ॥

ततः सर्वायुधाभावे वीक्षमाणस्ततस्ततः ।
अपश्यत्कृतमाकाशमनाकाशं जनार्दनैः ॥ १७ ॥

फिर सब आयुधोंके खत्म होनेपर इधर उधर देखते देखते अश्वत्थामाने देखा कि सारा आकाश विष्णुओंने अनाकाश—अदृश्यसा कर डाला है ॥ १७ ॥

तदद्भुततमं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रो निरायुधः
अब्रवीदभिसन्तप्तः कृपवाक्यमनुस्मरन् ॥ १८ ॥

यह अति अद्भुत दृश्य देखकर आयुधहीन अश्वत्थामा कृपाचार्यके वाक्यका स्मरण करके दुःखी होकर बोला ॥ १८ ॥

ब्रुवतामप्रियं पथ्यं सुहृदां न शृणोति यः
स शोचत्यापदं प्राप्य यथाहमतिवर्त्य तौ ॥ १९ ॥

जो मनुष्य अप्रिय परंतु हितकारी बात कहनेवाले मित्रोंका वचन नहीं मानता, वह संकटके आनेपर शोक करता है । जैसे उन दोनोंका वचन न मानकर शोक करने लगा हूं ॥१९॥

शास्त्रदृष्टानवध्यान्यः समतीत्य जिघांसति ।
स पथः प्रच्युतो धर्म्यात्कुपथं प्रतिपद्यते ॥ २० ॥

शास्त्रमें जिनका वध करना अनुचित कहा गया है उन्हें आक्रमणपूर्वक जो मारना चाहता है वह धर्म्य मार्गसे च्युत होकर कुमार्गपर चला जाता है ॥ ॥ २० ॥

गोब्राह्मणनृपस्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा ।
वृद्धबालजडान्धेषु सुप्तभीतोत्थितेषु च ॥ २१ ॥

गौ, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, वृद्ध, बाल, मूर्ख, अन्ध, निद्राधीन, भयभीत और सोकर उसी समय उठे लोगोंपर ॥ २१ ॥

मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राण्युपधारयेत् ।
इत्येवं गुरुभिः पूर्वमुपदिष्टं नृणां सदा ॥ २२ ॥

तथा मतवाले, पागल और भूले भटके लोगोंपर शस्त्र नहीं चलाना चाहिये, ऐसा आचार्योंने लोगोंको पहलेही सदाके लिये उपदेश दे रखा है ॥ २२ ॥

सोऽहमुत्क्रम्य पन्थानं शास्त्रदृष्टं सनातनम् ।
अमार्गेणैवमारभ्य घोरामापदमागतः ॥ २३ ॥

सो मैं शास्त्रविहित, सनातन मार्गको छोडकर वाममार्गसे चलने लगा और घोर संकटमें आ गिरा हूं ॥ २३ ॥

तां चापदं घोरतरां प्रवदन्ति मनीषिणः
यदुद्यम्य महत्कृत्यं भयादपि निवर्तते ॥ २४ ॥

पण्डितोंका कहना है कि बडे कार्यको आरंभ करके भीतिसे भी पीछे हटता है तो वह बहुत ही बडा संकट है ॥ २४ ॥

अशक्यं चैव कः कर्तुं शक्तः शक्तिबलादिह ।
न हि दैवाद्गरीयो वै मानुषं कर्म कथ्यते ॥ २५ ॥

जो काम अशक्य है उसे शक्ति बलसे करनेको कौन समर्थ है ? क्योंकि मनुष्यका प्रयत्न दैवसे बढकर श्रेष्ठ तो नहीं है ॥ २५ ॥

मानुषं कुर्वतः कर्म यदि दैवान्न सिध्यति ।
स पथः प्रच्युतो धर्माद्विपदं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥

अगर दैववशात् किसीका मानवी प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो वह धर्म्य मार्गसे प्रच्युत होकर विपत्तिमें फँसता है ॥ २६ ॥

प्रतिघातं ह्यविज्ञातं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
यदारभ्य क्रियां काश्चिद्भयादिह निवर्तते ॥ २७ ॥

पण्डितोंका कहना है कि किसी क्रियाको आरंभ करके भयके कारण बीचमें छोड देना प्रतिघात है ॥ २७ ॥

तदिदं दुष्प्रणीतेन भयं मां समुपस्थितम् ।
न हि द्रोणसुतः संख्ये निवर्तेत कथञ्चन । ॥ २८ ॥

दुर्विचार कारण मुझे यह भय उपस्थित हुआ है । द्रोणपुत्र युद्धमें किसी कारणसे वापस नहीं लौटेगा ॥ २८ ॥

इदं च सुमहद्भूतं दैवदण्डमिवोद्यतम् ।
न चैतदभिजानामि चिन्तयन्नपि सर्वथा ॥ २९ ॥

यह उठाये हुए दैवदंडके समान बहुत बडा भूत खडा है जिसके बारेमें बहुत सोचकर भी मैं कुछ नहीं जातना हूँ ॥ २९ ॥

ध्रुवं येयमधर्मे मे प्रवृत्ता कलुषा मतिः ।
तस्याः फलमिदं घोरं प्रतिघाताय दृश्यते ॥ ३० ॥

यह जो मेरी अशुद्ध बुद्धि अधर्ममें प्रवृत्त हुई है उसीका यह भयानक फल प्रतिघात करानेवाला दिखाई देरहा है ॥ ३० ॥

तदिदं दैवविहितं मम संख्ये निवर्तनम् ।
नान्यत्र दैवादुद्यन्तुमिह शक्यं कथञ्चन ॥ ३१ ॥

सो यह मेरा युद्धसे पीछे हटना दैवविहित दीखता है । बिना दैवके किसी प्रकार कुछ भी करनेको प्रवृत्त होना असंभव है ॥ ३१ ॥

सोऽहमद्य महादेवं प्रपद्ये शरणं प्रभुम् ।
दैवदण्डमिमं घोरं स हि मे नाशयिष्यति ॥ ३२ ॥

इसलिये मैं आज प्रभु महादेवजीकी शरणमें जाऊंगा । वह मेरे इस दैवदण्डको नष्ट कर देगा ॥ ३२ ॥

कपर्दिनं प्रपद्याथ देवदेवमुमापतिम् ।
कपालमालिनं रुद्रं भगनेत्रहरं हरम् ॥ ३३ ॥

देवोंके देव, उमापति, कपालमालाधारी, भगवान् शंकरकी शरण जाकर संकटका परिहार करूंगा ॥ ३३ ॥

स हि देवोऽत्यगाद्देवांस्तपसा विक्रमेण च ।
तस्माच्छरणमभ्येष्ये गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ २३९ ॥

वह देव तपसे, विक्रमसे सब देवोंसे श्रेष्ठ है । इसलिये उस शूलधार भगवान् गिरिश शंकरकी शरणमें जाऊंगा ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ २३९ ॥

: ७ :

सञ्जय उवाच

स एवं चिन्तयित्वा तु द्रोणपुत्रो विशां पते ।
अवतीर्य रथोपस्थाद्दध्यौ संप्रयतः स्थितः ॥ १ ॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! अश्वत्थामा यों विचार करके रथमेंसे उतरकर एकचित्त होकर ध्यान करने लगा ॥ १ ॥

द्रौणिरुवाच

उग्रं स्थाणुं शिवं रुद्रं शर्वमीशानमीश्वरम् ।
गिरिशं वरदं देवं भवं भावनमव्ययम् ॥ २ ॥

अश्वत्थामा बोला– उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, ईशान, ईश्वर, गिरिश, भव, भावन, अव्यय आदि नामोंसे पहचाने जानेवाले वरद देव ॥ २ ॥

शितिकण्ठमजं शक्रं क्रथं क्रतुहरं हरम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ३ ॥

शितिकण्ठ, अज – जिसका जन्म नहीं होता, शक्र, क्रथ, क्रतुहर, हर, विश्वरूप, विरूपाक्ष, बहुरूप, उमापति, ॥ ३ ॥

श्मशानवासिनं दृप्तं महागणपतिं प्रभुम् ।
खट्वाङ्गधारिणं मुण्डं जटिलं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४ ॥

श्मशानवासी, अभिमानी, महान् गणनायक, प्रभु, खट्वांग धारण करनेवाले, मुण्ड, जटाधारी, ब्रह्मचारी, ॥ ४ ॥

मनसाप्यसुचिन्त्येन दुष्करेणाल्पचेतसा ।
सोऽहमात्मोपहारेण यक्ष्ये त्रिपुरघातिनम् ॥ ५ ॥

त्रिपुरासुरका वध करनेवाले महादेवकी मैं अल्पबुद्धिवाले लोगोंको मनसे चिन्तन करनेके लिये भी असंभव और कठिन आत्मसमर्पण करके पूजा करता हूं ॥ ५ ॥

स्तुतं स्तुत्यं स्तूयमानममोघं चर्मवाससम् ।
विलोहितं नीलकण्ठमपृक्तं दुर्निवारणम् ॥ ६ ॥

जिसकी स्तुति की गयी है, की जायेगी और की जाती है, जो नित्य सफल है, चर्म परिधान करता है, विलोहित, नीलकंठ, शुद्ध, दुर्निवार्य, ॥ ६ ॥

शुक्रं विश्वसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च ।
व्रतवन्तं तपोनित्यमनन्तं तपतां गतिम् ॥ ७ ॥

शुक्र – तेजस्वी, विश्वको पैदा करनेवाले, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, व्रती, नित्य, तपस्वी, अनंत, तपस्वियोंके ध्येय, ॥ ७ ॥

बहुरूपं गणाध्यक्षं त्र्यक्षं पारिषदप्रियम् ।
गणाध्यक्षेक्षितमुखं गौरीहृदयवल्लभम् ॥ ८ ॥

बहुरूप, गणाध्यक्ष, तीन आंखोंवाले, भूतगणोंके प्रिय, गणपति जिसके मुखकी ओर देखते हैं और गौरीजीके हृदयप्रिय, ॥ ८ ॥

कुमारपितरं पिङ्गं गोवृषोत्तमवाहनम् ।
तनुवाससमत्युग्रमुमाभूषणतत्परम् ॥ ९ ॥

कुमार कार्तिकेयके पिता, पिंग वर्ण, उत्तम वृषभपर आरूढ होनेवाले, महीन वस्त्र पहननेवाले, अति उग्र, महादेवीको भूषण देनेमें तत्पर, ॥ ९ ॥

परं परेभ्यः परमं परं यस्मान्न विद्यते ।
इष्वस्त्रोत्तमभर्तारं दिगन्तं चैव दक्षिणम् ॥ १० ॥

सब महानोंसे महान्, जिससे अधिक कोई नहीं है, बाण और उत्तम अस्त्र धारण करनेवाले, दिशाओंसे परे परंतु दक्षिण–उत्तम ॥ १० ॥

हिरण्यकवचं देवं चन्द्रमौलिविभूषितम् ।
प्रपद्ये शरणं देवं परमेण समाधिना ॥ ११ ॥

सुनहला कवच धारण करनेवाले, मस्तकस्थ चन्द्रमासे विभूषित देवकी शरणमें मैं परम समाधिसे जाता हूं ॥ ११ ॥

इमां चाप्यापदं घोरां तराम्यद्य सुदुस्तराम् ।
सर्वभूतोपहारेण यक्ष्येऽहं शुचिना शुचिम् ॥ १२ ॥

मैं इस घोर और अति दुस्तर आपत्तिको पार करना चाहता हूं, इसलिये पवित्र देवकी पवित्र उपहारसे पूजा करूंगा ॥ १२ ॥

इति तस्य व्यवसितं ज्ञात्वा त्यागात्मकं मनः ।
पुरस्तात्काञ्चनी वेदिः प्रादुरासीन्महात्मनः ॥ १३ ॥

ऐसा उसका निश्चय, और त्यागप्रवण मन जानकर उस महात्माके समीप एक सुवर्णमयी वेदी प्रकट हुई ॥ १३ ॥

तस्यां वेद्यां तदा राजंश्चित्रभानुरजायत ।
द्यां दिशो विदिशः खं च ज्वालाभिरभिपूरयन् ॥ १४ ॥

हे महाराज ! उस वेदीमें, स्वर्ग, दिशाओं, उपदिशाओं, आकाशको अपनी लपटोंसे भरदेनेवाला, जातवेद अग्नि उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

दीप्तास्यनयनाश्चात्र नैकपादशिरोभुजाः ।
द्वीपशैलप्रतीकाशाः प्रादुरासन्महाननाः ॥ १५ ॥

प्रदीप्त मुंह और आंखवाले, अनेक पग, सिर और भुजाओंवाले, हाथी पर्वत जैसे विशाल, महानन, भूतगण पैदा हुए ॥ १५ ॥

श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च हयगोमायुगोमुखाः ।
ऋक्षमार्जारवदना व्याघ्रद्वीपिमुखास्तथा ॥ १६ ॥

कुत्ते, सुअर और ऊंटके समान रूपवाले, घोडे, स्यार, गाय जैसे मुंहवाले, कई भालू, बिल्ली के समान मुंहवाले, तथा बाघ और चीतेके समान मुंहवाले ॥ १६ ॥

काकवक्त्राः प्लवमुखाः शुकवक्त्रास्तथैव च ।
महाजगरवक्त्राश्च हंसवक्त्राः सितप्रभाः ॥ १७ ॥

कौवे, वानर और तोतेके समान मुँहवाले, कई बडे अजगर जैसे मुँहवाले, कोई हंस सदृश मुँहवाले और श्वेत प्रकाशवाले ॥ १७ ॥

दार्वाघाटमुखाश्चैव चाषवक्त्राश्च भारत ।
कूर्मनक्रमुखाश्चैव शिशुमारमुखास्तथा ॥ १८ ॥

कुछके मुँह दार्वाघाट पंछीके समान थे; कुछके गीधसमान थे, कुछके मुँह कछुओं और सुवरों के समान और कुछके शिशुमारके समान थे ॥ १८ ॥

महामकरवक्त्राश्च तिमिवक्त्रास्तथैव च ।
हरिवक्त्राः क्रौञ्चमुखाः कपोतेभमुखास्तथा ॥ १९ ॥

बडे घडियालके समान मुँहवाले, मछली, वानर, क्रौंच, कबूतर, हाथी आदिके समान मुँहवाले कई थे ॥ १९ ॥

पारावतमुखाश्चैव मद्गुवक्त्रास्तथैव च ।
पाणिकर्णाः सहस्राक्षास्तथैव च शतोदराः ॥ २० ॥

कइओंके मुँह परेवाके समान और कइओंके मजु नामक मछलीके समान थे । कुछके कान हाथमें थे, कइओंके हजारों आँखें थीं, तो कइयोंके सैंकडों बहुत बडे पेट थे ॥ २० ॥

निर्मांसाः कोकवक्त्राश्च श्येनवक्त्राश्च भारत ।
तथैवाशिरसो राजन्नृक्षवक्त्राश्च भीषणाः ॥ २१ ॥

कई मांसहीन थे, कइयोंके मुंह चक्रवाकके समान, श्येनके समान थे । तथा कई बिना सिरके थे तो कुछ रीछके समान मुंहवाले भीषण थे ॥ २१ ॥

प्रदीप्तनेत्रजिह्वाश्च ज्वालावक्त्रास्तथैव च ।
मेषवक्त्रास्तथैवान्ये तथा छागमुखा नृप ॥ २२ ॥

कइयोंके नेत्र और जीभ जल रही थी, किन्हींके मुंहमेंसे ज्वालाएं निकल रही थीं, किन्हींके मुँह भेडके समान थे तो किन्हींके बकरेके समान थे ॥ २२ ॥

शङ्खाभाः शङ्खवक्त्राश्च शङ्खकर्णास्तथैव ।
शङ्खमालापरिकराः शङ्खध्वनिसमस्वनाः ॥ २३ ॥

कुछके रूप शंखके समान थे तो कुछके मुँह शंखके समान थे। कुछके कान शंखके जैसे थे, कइयोंने शंखकी मालाएँ पहन ली थी, और कइयोंकी आवाज शंखध्वनिसमान थी ॥ २३ ॥

जटाधराः पञ्चशिखास्तथा मुण्डाः कृशोदराः ।
चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्जिह्वाः शङ्कुकर्णाः किरीटिनः ॥ २४ ॥

कुछ जटाधारी, कुछ पांच पांच चोटीवाले थे तो कइयोंने मुंडन किया था। कुछके पेट बहुत पतले थे । कइयोंके चार दंष्ट्राएँ, किन्हींकी चार जीभें थीं; कोई शंकुकर्ण और कोई किरीटधारी थे ॥ २४ ॥

मौलीधराश्च राजेन्द्र तथाकुञ्चितमूर्धजाः ।
उष्णीषिणो मुकुटिनश्चारुवक्त्राः स्वलंकृताः ॥ २५ ॥

हे महाराज! कुछ मौलीधर थे और कुछने अपने बाल सँवरकर बांध रक्खे थे । कइयोंके शिरपर पगडियाँ थीं तो कअियोंके मुकुट; और कई बहुत सुंदर मुँहवाले और अलंकारोंसे विभूषित थे ॥ २५ ॥

पद्मोत्पलापीडधरास्तथा कुमुदधारिणः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥

सैंकडो और हजारों लोक ऐसे थे जिन्होंने भाँती भाँतीके कमलोंकी मालाएँ पहनी हुई थीं और बडे माहात्म्यसे संपन्न थे ॥ २६ ॥

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
भुशुण्डीपाशहस्ताश्च गदाहस्ताश्च भारत ॥ २७ ॥

कुछके हाथोंमें शतघ्नी और जक्र थे तो कईयोंके हाथमें भुशुंडी थी । कुछने मुसल पकडे थे और कईयोंने गदा ली थी ॥ २७ ॥

पृष्ठेषु बद्धेषुधयश्चित्रबाणा रणोत्कटाः ।
सध्वजाः सपताकाश्च सघण्टाः सपरश्वधाः ॥ २८ ॥

कईयोंने पीठपर बाणोंका तूणीर बांध लिया था, कुछके बाण तरह तरहके थे । कुछ युद्धमें भयानक थे, ध्वजवाले, पताका, घंटा, परश्वध आदि आयुधोंसे युक्त थे ॥ २८ ॥

महापाशोद्यतकरास्तथा लगुडपाणयः ।
स्थूणाहस्ताः खड्गहस्ताः सर्पोच्छ्रितकिरीटिनः ।
महासर्पाङ्गदधराश्चित्राभरणधारिणः ॥ २९ ॥

किन्हींके हाथोंमें बडे बडे पाश थे, किन्हींके हाथ लठियाँ थीं, स्थूणा, खड्गवाले भी थे और कुछका किरीट सर्पयुक्त था । कुछने बाहुभूषण सर्पके पहने थे और तरह तरहके अलंकार धारण किये थे ॥ २९ ॥

रजोध्वस्ताः पङ्कदिग्धाः सर्वे शुक्लाम्बरस्रजः ।
नीलाङ्गाः कमलाङ्गाश्च मुण्डवक्त्रास्तथैव च ॥ ३० ॥

धूलसे सने, कीचडसे लिप्त, सफेद कपडा और मालाएँ धारण करनेवाले, नीले रंगके कमल समान शरीरवाले और मुँडे मुँहके कई थे ॥ ३० ॥

भेरीशङ्खमृदङ्गांस्ते झर्झरानकगोमुखान् ।
अवादयन्पारिषदाः प्रहृष्टाः कनकप्रभाः ॥ ३१ ॥

वे सब सुनहली प्रभावाले पारिषद, भेरी, मृदंग, शंख, झर्झर, आनक, गोमुख–वाद्य हर्षपूर्वक बजा रहे थे ॥ ३१ ॥

गायमानास्तथैवान्ये नृत्यमानास्तथापरे ।
लङ्घयन्तः प्लवन्तश्च वल्गन्तश्च महाबलाः ॥ ३२ ॥

कुछ गा रहे थे, कोई नाच रहे थे तथा कई महाबलवान् उडते-कूदते और गर्जन करते थे ॥ ३२ ॥

धावन्तो जवनाश्चण्डाः पवनोद्धूतमूर्धजाः ।
मत्ता इव महानागा विनदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥

पवनसे कुछके बाल उड रहे थे, कुछ वेगसे दौड रहे थे और भयावने दीखते थे, तथा मदोन्मत्त महागजोंके समान नाद कर रहे थे ॥ ३३ ॥

सुभीमा घोररूपाश्च शूलपट्टिशपाणयः ।
नानाविरागवसनाश्चित्रमाल्यानुलेपनाः ॥ ३४ ॥

अति भीषण, घोर रूपवाले, शूल–भाला और पट्टिश–पट्टा लेनेवाले, विविध रंगके कपडे पहननेवाले तथा तरह तरहके फूल और लेप लेनेवाले, ॥ ३४ ॥

रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ।
हन्तारो द्विषतां शूराः प्रसह्यासह्यविक्रमाः ॥ ३५ ॥

रत्नोंके चित्रविचित्र बाजूबंद धारण करनेवाले, उँचे हाथ उठाये, शत्रुओंका वध करनेवाले शूर और असह्य विक्रमी थे ॥ ३५ ॥

पातारोऽसृग्वसाद्यानां मांसान्त्रकृतभोजनाः ।
चूडालाः कर्णिकालाश्च प्रकृशाः पिठरोदराः ॥ ३६ ॥

कई लोहू और चरबी पीनेवाले, मांस और आँतका भोजन करनेवाले थे, जिनके नाम चूडाल, कर्णिकाल, प्रकृश, पिठरोदर आदि थे ॥ ३६ ॥

अतिह्रस्वातिदीर्घाश्च प्रबलाश्चातिभैरवाः ।
विकटाः काललम्बोष्ठा बृहच्छेफास्थिपिण्डिकाः ॥ ३७ ॥

कुछ बहुत ठिंगने कदवाले और कुछ अति ऊँचे, बलिष्ठ, भयानक, विकट, लम्बे होंठवाले थे, कइयोंके लिंग बडे थे और कईयोंकी हाड्डियाँ और पिण्डिकाएँ बडी थीं ॥ ३७ ॥

महार्हनानामुकुटा मुण्डाश्च जटिलाः परे ।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रां द्यां कुर्युर्ये महीतले ॥ ३८ ॥

कई महामूल्यवान् मुकुटवाले, कुछने मुँडन किया था तो दूसरे कई भूतोंने जटा रख्खी थी । सब ऐसे थे कि जो पृथ्वीपर सूर्य, चंद्र, नक्षत्रों सहित आकाशका आभास पैदा कर सकते थे ॥ ३८ ॥

उत्सहेरंश्च ये हन्तुं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
ये च वीतभया नित्यं हरस्य भ्रुकुटीभटाः ॥ ३९ ॥

जो चतुर्विध भूतसमुदायको मारनेको तैयार रह सकते थे और जो निर्भय और सदा शिवजीके भ्रुकुटीभंगके अनुसार लडनेवाले सैनिक थे ॥ ३९ ॥

कामकारकराः सिद्धास्त्रैलोक्यस्येश्वरेश्वराः ।
नित्यानन्दप्रमुदिता वागीशा वीतमत्सराः ॥ ४० ॥

वे इच्छाके अनुसार कार्य करनेवाले, सिद्ध, त्रैलोक्यपर अधिकार चलानेवाले, सदा आनन्दसे प्रसन्न, भाषाके प्रभु, निर्मत्सर थे ॥ ४० ॥

प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं ये न यान्ति च विस्मयम् ।
येषां विस्मयते नित्यं भगवान्कर्मभिर्हरः ॥ ४१ ॥

अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त करनेसे उन्हें किसी प्रकारका विस्मय नहीं था । उनके काम देखकर स्वयं भगवान् शिवजी भी विस्मय पाते हैं ॥ ४१ ॥

मनोवाक्कर्मभिर्भक्तैर्नित्यमाराधितश्च यैः ।
मनोवाक्कर्मभिर्भक्तान्पाति पुत्रानिवौरसान् ॥ ४२ ॥

जिन्होंने मन, वाक् और शरीरसे अनन्य भक्त बनकर शिवकी आराधना की थी वे शिव मन, वाक् और शरीरसे अपने भक्तोंकी रक्षा मानो वे औरस पुत्रही हो इस तरह करते हैं ॥ ४२ ॥

पिबन्तोऽसृग्वसास्त्वन्ये क्रुद्धा ब्रह्मद्विषां सदा ।
चतुर्विंशात्मकं सोमं ये पिबन्ति च नित्यदा ॥ ४३ ॥

जो क्रुद्ध होनेपर ब्रह्मशत्रुओंका रुधिर और चरबी पीते हैं और चोबीस प्रकारका सोम हमेशा पीते हैं ॥ ४३ ॥

श्रुतेन ब्रह्मचर्येण तपसा च दमेन च ।
ये समाराध्य शूलाङ्कं भवसायुज्यमागताः ॥ ४४ ॥

ज्ञान, ब्रह्मचर्य, तप और संयमसे शूलधारी शिवकी आराधना करके जो शिवसायुज्यमुक्ति पाई है ॥ ४४ ॥

यैरात्मभूतैर्भगवान्पार्वत्या च महेश्वरः ।
सह भूतगणान्भुङ्क्ते भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ ४५ ॥

शिवरूप हो गये इनके साथ और पार्वतीके साथ भूत, भविष्यत् और वर्तमानके प्रभु महेश्वर सब भूतगणोंमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

नानाविचित्रहसितक्ष्वेडितोत्क्रुष्टगार्जितैः ।
संनादयन्तस्ते विश्वमश्वत्थामानमभ्ययुः ॥ ४६ ॥

वे सब नाना प्रकारके विचित्र हास्य, आक्रोश, गर्जनध्वनिसे विश्वको नादित करते अश्वत्थामाकी ओर आने लगे ॥ ४६ ॥

संस्तुवन्तो महादेवं भाः कुर्वाणाः सुवर्चसः ।
विवर्धयिषवो द्रौणेर्महिमानं महात्मनः ॥ ४७ ॥

वे महादेवकी स्तुति कर रहे थे, साथ साथ ही प्रकाशमान तेज पैदा कर रहे थे और महात्मा अश्वत्थामाकी महिमा बढाना चाहते थे ॥ ४७ ॥

जिज्ञासमानास्तत्तेजः सौप्तिकं च दिदृक्षवः ।
भीमोग्रपरिघालातशूलपट्टिशपाणयः ।
घोररूपाः समाजग्मुर्भूतसंघाः समन्ततः ॥ ४८ ॥

वे भूतसंघ उसका तेज जाननेकी और सौप्तिक देखनेकी इच्छा कर रहे थे, इसलिये भयंकर परिघ, अलात, शूल और पट्टिश हाथमें लिये भयानक रूप धारण करके चारों ओरसे अश्वत्थामाकी ओर दौडे ॥ ४८ ॥

जनयेयुर्भयं ये स्म त्रैलोक्यस्यापि दर्शनात् ।
तान्प्रेक्षमाणोऽपि व्यथां न चकार महाबलः ॥ ४९ ॥

जो अपने दर्शनसे त्रैलोक्यको भी भयभीत करें उन्हें देखकर महाबलवान् अश्वत्थामा व्यथित नहीं हुआ ॥ ४९ ॥

×

अथ द्रौणिर्धनुष्पाणिर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ।
स्वयमेवात्मनात्मानमुपहारमुपाहरत् ॥ ५० ॥

फिर धनुष और तलहत्थी पहने हुए अश्वत्थामाने स्वयं ही अपने शरीरका उपहार समर्पित किया ॥ ५० ॥

धनूंषि समिधस्तत्र पवित्राणि शिता शराः ।
हविरात्मवतश्चात्मा तस्मिन्भारत कर्मणि ॥ ५१ ॥

उस कर्ममें धनुष ही समिध थी, तीक्ष्ण बाण पवित्र थे और हे महाराज ! उसकी आत्माको ही हविर्द्रव्य बनाया गया था ॥ ५१ ॥

ततः सौम्येन मन्त्रेण द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
उपहारं महामन्युरथात्मानमुपाहरत् ॥ ५२ ॥

तदनन्तर प्रतापी और महा क्रोधी अश्वत्थामाने सौम्य मंत्रका उच्चार करके उपहारकी तौरपर अपने आपको समर्पित किया ॥ ५२ ॥

तं रुद्रं रौद्रकर्माणं रौद्रैः कर्मभिरच्युतम् ।
अभिष्टुत्य महात्मानमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ ५३ ॥

भयप्रद कर्म करनेवाले, रौद्र कर्मोंसे पराजित न होनेवाले महात्मा रुद्र शिवकी स्तुति करके और हाथ जोडकर इस प्रकार बोला ॥ ५३ ॥

इममात्मानमद्याहं जातमाङ्गिरसे कुले ।
अग्नौ जुहोमि भगवन्प्रतिगृह्णीष्व मां बलिम् ॥ ५४ ॥

हे भगवान् ! आज आंगिरस कुलमें जन्मा हुआ मैं स्वयं अपना ही हवन कर रहा हूं, मेरे इस बलिदानका स्वीकार करो ॥ ५४ ॥

भवद्भक्त्या महादेव परमेण समाधिना ।
अस्यामापदि विश्वात्मन्नुपाकुर्मि तवाग्रतः ॥ ५५ ॥

हे विश्वस्वरूप महादेव ! तुम्हारी भक्ति और परम समाधियोगसे संकटके समय तुम्हारे सामने आत्मसमर्पण कर रहा हूं ॥ ५५ ॥

त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चासि वै ।
गुणानां हि प्रधानानामेकत्वं त्वयि तिष्ठति ॥ ५६ ॥

तुम्हारे अंदर सब प्राणिमात्र समाविष्ट हैं, तुम सब प्राणियोंमें हो । प्रधान गुणोंकी एकता तुम्हींमें है ॥ ५६ ॥

सर्वभूताशय विभो हविर्भूतमुपस्थितम् ।
प्रतिगृह्णाण मां देव यद्यशक्याः परे मया ॥ ५७ ॥

हे सर्व भूतोंके अंतस्थित, प्रभो, देव ! यदि शत्रुओंको जीतना मेरे लिये असंभव हो तो हविर्द्रव्यके रूपमें उपस्थित मुझे तुम स्वीकार करो ॥ ५७ ॥

इत्युक्त्वा द्रौणिरास्थाय तां वेदीं दीप्तपावकाम् ।
संत्यक्तात्मा समारुह्य कृष्णवर्त्मन्युपाविशत् ॥ ५८ ॥

अश्वत्थामा यों कहकर प्रज्वलित अग्निवाली उस वेदीपर आरूढ होकर, अपनी आत्माका त्याग करके अग्निमें बैठ गया ॥ ५८ ॥

तमूर्ध्वबाहुं निश्चेष्टं दृष्ट्वा हविरुपस्थितम् ।
अब्रवीद्भगवान्साक्षान्महादेवो हसन्निव ॥ ५९ ॥

ऊपर बाहू उठाकर हविके रूपमें उपस्थित, निश्चेष्ट अश्वत्थामाको देख स्वयं भगवान् महादेव हंसते हंसते बोले ॥ ५९ ॥

सत्यशौचार्जवत्यागैस्तपसा नियमेन च ।
क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या बुद्ध्या च वचसा तथा ॥ ६० ॥

सत्य, शौच–पवित्रता, ऋजुता, त्याग, तप और नियमसे तथा क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वचनसे ॥ ६० ॥

यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥ ६१ ॥

शुद्ध कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने मेरी बहुत ठीक तरह आराधना की है, इसलिये मेरा कृष्णकी अपेक्षया अधिक कोई नहीं है ॥ ६१ ॥

कुर्वता तस्य संमानं त्वां च जिज्ञासता मया ।
पाञ्चालाः सहसा गुप्ता मायाश्च बहुशः कृताः ॥ ६२ ॥

उसका सन्मान करनेके लिये और तेरी परीक्षा करनेके लिये मैंने पाञ्चालोंकी रक्षा की और बहुविध मायाकी रचना की ॥ ६२ ॥

कृतस्तस्यैष संमानः पाञ्चालान्रक्षता मया ।
अभिभूतास्तु कालेन नैषामद्यास्ति जीवितम् ॥ ६३ ॥

पाञ्चालोंकी रक्षा करनेवाले मैंने कृष्णकाही संमान किया । परंतु कालने इन्हें पराजित किया है, अब उनका जीवन बाकी नहीं है ॥ ६३ ॥

एवमुक्त्वा महेष्वासं भगवानात्मनस्तनुम् ।
आविवेश ददौ चास्मै विमलं खड्गमुत्तमम् । ॥ ६४ ॥

महातेजस्वी अश्वत्थामासे यों बोलकर भगवान्ने उस आत्माके शरीरमें प्रवेश किया और अश्वत्थामाको एक उत्तम तलवार भेंट की ॥ ६४ ॥

अथाविष्टो भगवता भूयो जज्वाल तेजसा ।
वर्ष्मवांश्चाभवद्युद्धे देवसृष्टेन तेजसा ॥ ६५ ॥

भगवान्के तेजसे आविष्ट अश्वत्थामा फिर बडे तेजसे चमकने लगा और भगवान्के दिये तेजके कारण वह युद्धमें बडा बलवान् हो गया ॥ ६५ ॥

तमदृश्यानि भूतानि रक्षांसि च समाद्रवन् ।
अभितः शत्रुशिबिरं यान्तं साक्षादिवेश्वरम् ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ३०५ ॥

शत्रुके शिबिरमें जानेवाले अश्वत्थामाके साथ अदृश्य भूत और राक्षस चलने लगे, जैसे साक्षात् महादेवके साथ चलते हैं ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ ३०५ ॥

: ८ :

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महारथे ।
कच्चित्कृपश्च भोजश्च भयार्तौ न न्यवर्तताम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– जब महारथ अश्वत्थामा शिबिरकी ओर चला गया तब कृप और कृतवर्मा भयातुर होकर पीछे नहीं हटे क्या ? ॥ १ ॥

कच्चिन्न वारितौ क्षुद्रै रक्षिभिर्नोपलक्षितौ ।
असह्यमिति वा मत्वा न निवृत्तौ महारथौ ॥ २ ॥

क्या क्षुद्र रक्षकोंने उन्हें देखकर रोका नहीं ? अथवा यह असह्य समझकर दोनों महारथ क्या पीछे नहीं हटे ? ॥ २ ॥

कच्चित्प्रमथ्य शिबिरं हत्वा सोमकपाण्डवान् ।
दुर्योधनस्य पदवीं गतौ परमिकां रणे ॥ ३ ॥

शायद शिबिरका विध्वंस करके, सोमक और पाण्डवोंका नाश करके युद्धमें क्या उन्होंने दुर्योधनकी परम पदवी तो प्राप्त नहीं की ? ॥ ३ ॥

पाञ्चालैर्वा विनिहतौ कच्चिन्नास्वपतां क्षितौ ।
कच्चित्ताभ्यां कृतं कर्म तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥

शायद ऐसा तो नहीं हुआ कि वे दोनों पांचालों द्वारा मारे जाकर भूमिपर सो गये हों ? हे सञ्जय ! उन्होंने जो काम किया हो सो मुझे कह सुनाओ ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच

तस्मिन्प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महात्मनि ।
कृपश्च कृतवर्मा च शिबिरद्वार्यतिष्ठताम् ॥ ५ ॥

सञ्जय बोले— जब महात्मा द्रोणपुत्र शिबिरमें घुस गया तब कृप और कृतवर्मा दोनों शिबिरके द्वारपर खडे रहे ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ ।
प्रहृष्टः शनकै राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

अश्वत्थामा उन दोनों महारथोंको यत्नशील साहाय्यक देखकर आनंदित हुआ और हे महाराज ! धीरे धीरे यों बोला ॥ ६ ॥

यत्तौ भवन्तौ पर्याप्तौ सर्वक्षत्रस्य नाशने ।
किं पुनर्योधशेषस्य प्रसुप्तस्य विशेषतः ॥ ७ ॥

यदि तुम दोनों प्रयत्न करोगे तो सारे क्षत्रियोंका नाश करनेमें पूरी तरह समर्थ होंगे, तो फिर युद्धमें अवशिष्ट और खास करके निद्रितोंका नाश कर सकोगे यह कहनेकी भी आवश्यकता क्या है ? ॥ ७ ॥

अहं प्रवेक्ष्ये शिबिरं चरिष्यामि च कालवत् ।
यथा न कश्चिदपि मे जीवन्मुच्येत मानवः ॥ ८ ॥

मैं शिबिरमें प्रवेश करूंगा ओर कालके समान संचार करूंगा, तुम ऐसा करो जिससे कोईभी मनुष्य जिंदा न छूटे ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा प्राविशद्द्रौणिः पार्थानां शिबिरं महत् ।
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य विहाय भयमात्मनः ॥ ९ ॥

यों कहकर अश्वत्थामा पाण्डवोंके विशाल शिबिरमें भय छोडकर अद्वारमेंसे कूदकर घुस गया ॥ ९ ॥

स प्रविश्य महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह ।
धृष्टद्युम्नस्य निलयं शनकैरभ्युपागमत् ॥ १० ॥

वह महाबाहु और अपना उद्देश्य ठीक जाननेवाला अश्वत्थामा यों प्रवेश करके धृष्टद्युम्नके शिबिरमें धीरे धीरे पहुंच गया ॥ १० ॥

ते तु कृत्वा महत्कर्म श्रान्ताश्च बलवद्रणे।
प्रसुप्ता वै सुविश्वस्ताः स्वसैन्यपरिवारिताः ॥ ११ ॥

वे लोग तो युद्धमें बडा कर्म करके थके हुए थे और अपने सैन्यसे घिरे हुए खूब विश्वाससे सो रहे थे। ॥ ११ ॥

अथ प्रविश्य तद्वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत।
पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत्सुप्तमन्तिकात् ॥ १२ ॥

हे भारत ! धृष्टद्युम्नके उस मंदिरमें प्रवेश करके अश्वत्थामाने शय्यापर सो रहे पांचालराजको देखा ॥ १२ ॥

क्षौमावदाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते।
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते ॥ १३ ॥

रेशमी विशाल और स्पृहणीय आस्तरणसे ढंके, फूलोंसे युक्त, धूप और चूर्णोंसे सुगंधित ॥ १३ ॥

तं शयानं महात्मानं विस्रब्धमकुतोभयम्।
प्राबोधयत पादेन शयनस्थं महीपते ॥ १४ ॥

शयनपर निःशंक और अब किसीसे भय नहीं ऐसा समझकर सोगये महात्माको धृष्टद्युम्नको हे महाराज ! उसने पैरसे जगाया ॥ १४ ॥

सबुद्ध्वा चरणस्पर्शमुत्थाय रणदुर्मदः।
अभ्यजानदमेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथम् ॥ १५ ॥

पैरके स्पर्शको जानकर उस रणशूर, महात्मा धृष्टद्युम्नने जागकर अश्वत्थामाको पहचान लिया ॥ १५ ॥

तमुत्पतन्तं शयनादश्वत्थामा महाबलः।
केशेष्वालम्ब्य पाणिभ्यां निष्पिपेष महीतले ॥ १६ ॥

शय्यापरसे ऊपर उठनेवाले धृष्टद्युम्नको महाबलवान् अश्वत्थामाने दोनों हाथोंसे बाल पकडकर धरतीपर घसीटा ॥ १६ ॥

स बलात्तेन निष्पिष्टः साध्वसेन च भारत।
निद्रया चैव पाञ्चाल्यो नाशकच्चेष्टितुं तदा ॥ १७ ॥

हे भारत ! इस तरह शीघ्रतासे बलपूर्वक धरतीपर घसीटा हुआ धृष्टद्युम्न निद्रासे व्याकुल था, इसलिए कुछ भी हिलचाल नहीं कर सका ॥ १७ ॥

तमाक्रम्य पदा राजन्कण्ठे चोरसि चोभयोः।
नदन्तं विस्फुरन्तं च पशुमारममारयत् ॥ १८ ॥

उसपर झपटकर कण्ठ और छातीपर पैरोंसे प्रहार करके अश्वत्थामा चीखते और हुंकारते धृष्टद्युम्नको पशुकी तरह मारने लगा ॥ १८ ॥

तुदन्नखैस्तु स द्रौणिं नातिव्यक्तमुदाहरत् ।
आचार्यपुत्र शस्त्रेण जहि मा मा चिरं कृथाः ।
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान्गच्छेयं द्विपदां वर ॥ १९ ॥

वह अपने नाखूनोंसे अश्वत्थामाका प्रतिकार करनेका प्रयत्न करते हुए अस्पष्ट शब्दोंमें बोला– 'हे आचार्यपुत्र! तुम मुझे शस्त्रसे मार डालो, विलंब मत करो। हे नरश्रेष्ठ! तुम्हारे हाथों मरनेसे मैं पुण्यलोक प्राप्त करूंगा' ॥ १९ ॥

तस्याव्यक्तां तु तां वाचं संश्रुत्य द्रौणिरब्रवीत् ।
आचार्यघातिनां लोका न सन्ति कुलपांसन ।
तस्माच्छस्त्रेण निधनं न त्वमर्हसि दुर्मते ॥ २० ॥

उसकी अस्पष्ट बोली सुनकर अश्वत्थामा बोला– हे कुलकलंक, दुष्ट! गुरुका घात करनेवालोंके लिये पुण्य लोक नहीं हैं। इसलिये तू शस्त्रसे वध करने योग्य नहीं है ॥ २० ॥

एवं ब्रुवाणस्तं वीरं सिंहो मत्तमिव द्विपम् ।
मर्मस्वभ्यवधीत्क्रुद्धः पादाष्ठीलैः सुदारुणैः ॥ २१ ॥

यों कहकर जैसे मत्त हाथीको सिंह मारता है वैसे अश्वत्थामा उस वीरके मर्मोंपर पैरोंसे दारुण आघात करने लगा ॥ २१ ॥

तस्य वीरस्य शब्देन मार्यमाणस्य वेश्मनि ।
अबुध्यन्त महाराज स्त्रियो ये चास्य रक्षिणः ॥ २२ ॥

हे महाराज! जब वह वीर यों घरहीमें मारा जा रहा था तब उसके चीखने-कराहनेके शब्दसे स्त्रियां और उसके रक्षक जाग उठे ॥ २२ ॥

ते दृष्ट्वा वर्ष्मवन्तं तमतिमानुषविक्रमम्
भूतमेव व्यवस्यन्तो न स्म प्रत्याहरन्भयात् ॥ २३ ॥

उस भयानक, अतिमानवी कर्म करनेवालेको भूत ही समझकर वे लोग भयके मारे कुछ बोल भी न सके ॥ २३ ॥

तं तु तेनाभ्युपायेन गमयित्वा यमक्षयम् ।
अध्यतिष्ठत्स तेजस्वी रथं प्राप्य सुदर्शनम् ॥ २४ ॥

इस तरहके आक्रमणसे उस धृष्टद्युम्नको यमनगरीकी ओर भेजकर, वह तेजस्वी अश्वत्थामा सुदर्शन रथके पास पहुंचकर उसपर आरूढ हुआ ॥ २४ ॥

स तस्य भवनाद्राजन्निष्क्रम्यानादयन्दिशः ।
रथेन शिबिरं प्रायाज्जिघांसुर्द्विषतो बली ॥ २५ ॥

वह बलिष्ठ अश्वत्थामा उसके घरमेंसे बाहर निकलकर रथसे दिशाओंको निनादित करता हुआ शत्रुओंका वध करनेकी इच्छासे शिबिरकी ओर चल पडा ॥ २५ ॥

अपक्रान्ते ततस्तस्मिन्द्रोणपुत्रे महारथे ।
सह तै रक्षिभिः सर्वैः प्रणेदुर्योषितस्तदा ॥ २६ ॥

महारथ अश्वत्थामाके चले जानेके बाद सर्व रक्षकोंके साथ स्त्रियोंने बडी चिल्लाहट की ॥ २६ ॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा भृशं शोकपरायणाः
व्याक्रोशन्क्षत्रियाः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य भारत ॥ २७ ॥

हे भारत ! धृष्टद्युम्नके क्षत्रिय अपने राजाका यों मारा जाना देखकर अतीव शोकमग्न होकर आक्रोश करने लगे ॥ २७ ॥

तासां तु तेन शब्देन समीपे क्षत्रियर्षभाः ।
क्षिप्रं च समनह्यन्त किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ २८ ॥

उनके उस शब्दसे जो पासमें क्षत्रिय थे वे शीघ्रही उठ खडे हुए और पूछने लगे कि यह क्या है ? ॥ २८ ॥

स्त्रियस्तु राजन्वित्रस्ता भारद्वाजं निरीक्ष्य तम् ।
अब्रुवन्दीनकण्ठेन क्षिप्रमाद्रवतेति वै ॥ २९ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाको देखकर घबराई हुई स्त्रियां तो दीनकण्ठसे कहने लगीं कि जल्दी उसके पीछे दौडो ॥ २९ ॥

राक्षसो वा मनुष्यो वा नैनं जानीमहे वयम् ।
हत्वा पाञ्चालराजं यो रथमारुह्य तिष्ठति ॥ ३० ॥

पांचालोंके राजा धृष्टद्युम्नका वध करके जो कोई रथपर चढकर आरूढ होगया है वह राक्षस है या मनुष्य है यह हम नहीं जानतीं ॥ ३० ॥

ततस्ते योधमुख्यास्तं सहसा पर्यवारयन् ।
स तानापततः सर्वान्रुद्रास्त्रेण व्यपोथयत् ॥ ३१ ॥

तब उन सब वीरप्रमुखोंने एकदम उसे चारों ओरसे घेर डाला । उसने उन्हें आते देखकर रुद्रास्त्रका प्रयोग करके सबको मार डाला ॥ ३१ ॥

धृष्टद्युम्नं च हत्वा स तांश्चैवास्य पदानुगान् ।
अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके ॥ ३२ ॥

यों धृष्टद्युम्नको और उसके अनुयायियोंको मारनेके बाद उसने पास ही शयनपर सोरहे उत्तमौजस्को देखा ॥ ३२ ॥

तमप्याक्रम्य पादेन कण्ठे चोरसि चौजसा ।
तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिंदमम् ॥ ३३ ॥

उसपर भी आक्रमण करके कण्ठ और छातीपर पैरोंसे प्रहार करके उसने उस पराक्रमशाली और चिल्लाते हुए उत्तमौजसको उसी तरह मारा ॥ ३३ ॥

युधामन्युस्तु संप्राप्तो मत्वा तं रक्षसा हतम् ।
गदामुद्यम्य वेगेन हृदि द्रौणिमताडयत् ॥ ३४ ॥

यों समझकर कि उसे उत्तमौजसको किसी राक्षसने मारा हो, युधामन्युने गदा उठाकर अश्वत्थामाकी छातीपर वेगसे प्रहार किया ॥ ३४ ॥

तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैनमपातयत् ।
विस्फुरन्तं च पशुवत्तथैवैनममारयत् ॥ ३५ ॥

लपककर अश्वत्थामाने उसे पकडकर भूमिपर गिराया और तडफडानेवाले उसे उसी तरह पशुके समान मार डाला ॥ ३५ ॥

तथा स वीरो हत्वा तं ततोऽन्यान्समुपाद्रवत् ।
संसुप्तानेव राजेन्द्र तत्र तत्र महारथान् ।
स्फुरतो वेपमानांश्च शमितेव पशून्मखे ॥ ३६ ॥

वह वीर उस प्रकार उसे मारकर फिर औरोंकी ओर दौड पडा । हे महाराज ! जगह जगह सोये हुए महारथोंको उसने जब वे छटपटा रहे थे, कांप रहे थे, जैसे शमिता यज्ञमें पशुओंको मारता है, वैसाही मार डाला ॥ ३६ ॥

ततो निस्त्रिंशमादाय जघानान्यान्पृथग्जनान् ।
भागशो विचरन्मार्गानसियुद्धविशारदः ॥ ३७ ॥

फिर उस खड्गयुद्धप्रवीण अश्वत्थामाने खड्ग लेकर वहांके और सैनिकोंको भागशः सब मार्गोंपर घूमकर काट डाला ॥ ३७ ॥

तथैव गुल्मे संप्रेक्ष्य शयानान्मध्यगौल्मिकान् ।
श्रान्तान्न्यस्तायुधान्सर्वान्क्षणेनैव व्यपोथयत् ॥ ३८ ॥

तथा गुल्मके अन्दर और बाहर देखकर सब थके मांदे, शस्त्ररहित सोये हुए गुल्मस्थोंको क्षणभरहीमें उसने मार डाला ॥ ३८ ॥

योधानश्वान्द्विपांश्चैव प्राच्छिनत्स वरासिना ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ३९ ॥

उसने अपने उत्तम खड्से सैनिकों, घोडों और हाथियोंको भी काट डाला । तब उसका सारा शरीर खूनसे लिप्त हुआ था और वह कालनिर्मित अन्तकसमान दीख रहा था ॥३९॥

*

विस्फुरद्भिश्च तैर्द्रौणिर्निस्त्रिंशस्योद्यमेन च ।
आक्षेपेण तथैवासेस्त्रिधा रक्तोक्षितोऽभवत् ॥ ४० ॥

वह अश्वत्थामा उनकी मरनेवालोंकी छटपटाहटसे, खड्गके उठानेसे और खड्गको फेंकनेसे यों तीन प्रकारसे रक्तविलिप्त होगया था ॥ ४० ॥

तस्य लोहितसिक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः ।
अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः ॥ ४१ ॥

उस लोहूलुहान, दीप्त खड्गसे लडनेवाले अश्वत्थामाकी आकृति परम भयावनी और अमानुष मालूम पड रही थी ॥ ४१ ॥

ये त्वजाग्रत कौरव्य तेऽपि शब्देन मोहिताः ।
निरीक्ष्यमाणा अन्योन्यं द्रौणिं दृष्ट्वा प्रविव्यथुः ॥ ४२ ॥

हे कौरवराज! जो लोग जाग उठे थे वे भी उस शब्दसेही मूर्छित हो गये, और अश्वत्थामाको देखकर एक दूसरेको देखते हुए बहुत पीडित हुए ॥ ४२ ॥

तद्रूपं तस्य ते दृष्ट्वा क्षत्रियाः शत्रुकर्शनाः ।
राक्षसं मन्यमानास्तं नयनानि न्यमीलयन् ॥ ४३ ॥

शत्रुओंको मारनेवाले क्षत्रियोंने उसका वह रूप देखकर उसे राक्षस माना और अपनी आँखें मूंद लीं ॥ ४३ ॥

स घोररूपो व्यचरत्कालवच्छिबिरे ततः ।
अपश्यद्द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥ ४४ ॥

बादमें वह घोर रूपवाला अश्वत्थामा शिबिरमें घूमने लगा और उसने द्रौपदीके पुत्रोंको और बचे हुए सोमकोंको देखा ॥ ४४ ॥

धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा द्रौपदेया विशां पते ।
अवाकिरञ्शरव्रातैर्भारद्वाजमभीतवत् ॥ ४५ ॥

महाराज! महारथ द्रौपदीपुत्र धृष्टद्युम्नका वध सुनकर, निर्भय होकर हाथमें धनुष लेकर धैर्यपूर्वक अश्वत्थामापर बाणोंकी बौच्छार बरसाने लगे ॥ ४५ ॥

ततस्तेन निनादेन संप्रबुद्धाः प्रभद्रकाः ।
शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रौणपुत्रं समार्दयन् ॥ ४६ ॥

फिर उस आवाजसे जाग उठे प्रभद्रकों और शिखण्डीने अश्वत्थामापर शरवर्षाव करना आरंभ किया ॥ ४६ ॥

भारद्वाजस्तु तान्दृष्ट्वा शरवर्षाणि वर्षतः ।
ननाद बलवन्नादं जिघांसुस्तान्सुदुर्जयान् ॥ ४७ ॥
अश्वत्थामाने शर बर्षाव करनेवाले, दुर्जय वीरोंको देखकर उन्हें मारनेकी इच्छासे बहुत जोरदार गर्जना की ॥ ४७ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ।
अवरुह्य रथोपस्थात्त्वरमाणोऽभिदुद्रुवे ॥ ४८ ॥
फिर पिताके वधका स्मरण करके बहुत क्रुद्ध हुआ अश्वत्थामा शीघ्रतासे रथमेंसे नीचे उतरकर उनकी ओर दौड पडा ॥ ४८ ॥

सहस्रचन्द्रं विपुलं गृहीत्वा चर्म संयुगे ।
खड्गं च विपुलं दिव्यं जातरूपपरिष्कृतम् ।
द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्यचरद्बली ॥ ४९ ॥
हजारों चंद्रों जैसा दीखनेवाला चर्म और विशाल, दिव्य खड्ग लेकर, द्रौपदीपुत्रोंकी ओर दौडकर खड्गके साथ वह बलवान् घूमने लगा ॥ ४९ ॥

ततः स नरशार्दूलः प्रतिविन्ध्यं तमाहवे ।
कुक्षिदेशेऽवधीद्राजन्स हतो न्यपतद्भुवि ॥ ५० ॥
तदनन्तर हे महाराज ! उस नर व्याघ्रने प्रतिविंध्य की कौरवपर उस युद्धमें प्रहार किया और वह मरकर भूमिपर गिर पडा ॥ ५० ॥

प्रासेन विद्ध्वा द्रौणिं तु सुतसोमः प्रतापवान् ।
पुनश्चासिं समुद्यम्य द्रोणपुत्रमुपाद्रवत् ॥ ५१ ॥
प्रतापवान् सुतसोम अश्वत्थामाको एक प्राससे जखमी करके फिर खड्ग उठाकर उसकी ओर दौडा ॥ ५१ ॥

सुतसोमस्य सासिं तु बाहुं छित्त्वा नरर्षभः ।
पुनरभ्यहनत्पार्श्वे स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ ५२ ॥
उस नरर्षभ पराक्रमशीलने सुतसोमका खड्गवाला हाथ काट डाला और फिर उसकी पसलीमें प्रहार किया जिससे हृदयका छेद होकर वह गिर पडा ॥ ५२ ॥

नाकुलिस्तु शतानीको रथचक्रेण वीर्यवान् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन वक्षस्येनमताडयत् ॥ ५३ ॥
नकुलके पुत्र वीर्यवान् शतानीकने दोनों हाथोंसे रथका पहिया उठाकर बडे वेगसे उसकी छातीपर आघात किया ॥ ५३ ॥

अताडयच्छतानीकं मुक्तचक्रं द्विजस्तु सः ।
स विह्वलो ययौ भूमिं ततोऽस्यापाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥

जब शतानीकने चक्र फेंका तब उस ब्राह्मणने उसे बहुत पीटा। जिससे जर्जर होकर वह जमीनपर गिर पडा, फिर अश्वत्थामाने उसका शिर काट लिया ॥ ५४ ॥

श्रुतकर्मा तु परिघं गृहीत्वा समताडयत् ।
अभिद्रुत्य ततो द्रौणिं सव्ये स फलके भृशम् ॥ ५५ ॥

श्रुतकर्माने परिघ लेकर अश्वत्थामाकी ओर दौडकर उसकी बांयीं बाजूपर जोरदार प्रहार किया ॥ ५५ ॥

स तु तं श्रुतकर्माणमास्ये जघ्ने वरासिना ।
स हतो न्यपतद्भूमौ विमूढो विकृताननः ॥ ५६ ॥

अश्वत्थामाने उस श्रुतवर्माके मुँहपर खड्गसे प्रहार किया, जिससे वह अचेतन होकर पृथ्वीपर गिरा, उसका मुँह टेढा मेढा होगया ॥ ५६ ॥

तेन शब्देन वीरस्तु श्रुतकीर्तिर्महाधनुः ।
अश्वत्थामानमासाद्य शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५७ ॥

उस आवाजसे उठकर महाधनुर्धारी वीर श्रुतकीर्तिने अश्वत्थामापर आक्रमण करके बाणोंकी बौछार करनी शुरू की ॥ ५७ ॥

तस्यापि शरवर्षाणि चर्मणा प्रतिवार्य सः ।
सकुण्डलं शिरः कायाद्भ्राजमानमपाहरत् ॥ ५८ ॥

उसके भी शरवर्षावको चर्मसे रोककर अश्वत्थामाने उसका कुण्डलयुक्त तेजस्वी सिर शरीरसे अलग किया ॥ ५८ ॥

ततो भीष्मनिहन्ता तं सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
अहनत्सर्वतो वीरं नानाप्रहरणैर्बली ।
शिलीमुखेन चाप्येनं भ्रुवोर्मध्ये समार्दयत् ॥ ५९ ॥

उसके बाद भीष्मका वध करनेवाले शिखण्डी सब प्रभद्रक वीरोंके साथ उस वीरको अनेक शस्त्रोंसे चारों ओरसे मारने लगा। उसे दोनों भौंवोंके बीच बाणसे जखमी किया ॥ ५९ ॥

स तु क्रोधसमाविष्टो द्रोणपुत्रो महाबलः ।
शिखण्डिनं समासाद्य द्विधा चिच्छेद सोऽसिना। ॥ ६० ॥

फिर क्रोधाविष्ट और बलवान् अश्वत्थामाने शिखण्डीकी ओर लपककर खड्गसे उसे चीरकर दो टुकडे कर डाले ॥ ६० ॥

शिखण्डिनं ततो हत्वा क्रोधाविष्टः परन्तपः।
प्रभद्रकगणान्सर्वानभिदुद्राव वेगवान्।
यच्च शिष्टं विराटस्य बलं तच्च समाद्रवत् ॥ ६१ ॥

फिर उस क्रोधाविष्ट और शत्रुनाशक अश्वत्थामाने शिखण्डीको मारनेके बाद बडे वेगसे सारे प्रभद्रक गणोंपर हमला किया, और जो विराटकी बची हुई सेना थी उस पर भी हमला किया ॥ ६१ ॥

द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि।
चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः ॥ ६२ ॥

उस महाबलवान्‌ने देख देखकर द्रुपदके पुत्रों, पौत्रों और मित्रोंका भी भीषण हत्याकांड किया ॥ ६२ ॥

अन्यानन्यांश्च पुरुषानभिसृत्याभिसृत्य च।
न्यकृन्तदसिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः ॥ ६३ ॥

उस खड्गवीरने जो दूसरे वीर थे उनके भी पास जा जाकर एकेकको खड्गसे काट डाला ॥ ६३ ॥

कालीं रक्तास्यनयनां रक्तमाल्यानुलेपनाम्।
रक्ताम्बरधरामेकां पाशहस्तां शिखण्डिनीम् ॥ ६४ ॥

उसी समय सैनिकोंने लाल मुंह और आंखोंवाली, लाल माला और अनुलेपनवाली, शिखण्डिनी, काली जो लाल वस्त्र पहने हुए और हाथमें पाश लिये हुए थी उसे देखा ॥ ६४ ॥

ददृशुः कालरात्रिं ते स्मयमानामवस्थिताम्।
नराश्वकुञ्जरान्पाशैर्बद्ध्वा घोरैः प्रतस्थुषीम्
हरन्तीं विविधान्प्रेतान्पाशबद्धान्विमूर्धजान्। ॥ ६५ ॥

जब उन्होंने देखा तब कालरात्रि हंस रही थी, और घोर पाशोंसे मनुष्यों, हाथियों और घोडोंको बांधकर, विविध प्रेतोंको जो केशविरहित थे ले जा रही थी ॥ ६५ ॥

स्वप्ने सुप्तान्नयन्तीं तां रात्रिष्वन्यासु मारिष।
ददृशुर्योधमुख्यास्ते घ्नन्तं द्रौणिं च नित्यदा ॥ ६६ ॥

हे राजन्! अन्य रात्रिओंमें सो रहे वीर प्रमुखोंने स्वप्नमें इस तरह सबको ले जानेवाली उस कालीको और मारनेवाले अश्वत्थामाको नित्य देखा था ॥ ६६ ॥

यतः प्रवृत्तः संग्रामः कुरुपाण्डवसेनयोः।
ततः प्रभृति तां कृत्यामपश्यन्द्रौणिमेव च ॥ ६७ ॥

जबसे लेकर कौरवोंकी और पाण्डवोंकी सेनाका युद्ध चालू हुआ था तभीसे वे उस कृत्याको और अश्वत्थामाको देखते आये थे ॥ ६७ ॥

तांस्तु दैवहतान्पूर्वं पश्चाद्द्रौणिर्न्यपातयत् ।
त्रासयन्सर्वभूतानि विनदन्भैरवान्रवान् ॥ ६८ ॥

इस तरह पहले ही दैवके मारे उन सबको बादमें अश्वत्थामाने मार डाला । वह भीषण आवाज करके सब प्राणियोंको घबरा रहा था ॥ ६८ ॥

तदनुस्मृत्य ते वीरा दर्शनं पौर्वकालिकम् ।
इदं तदित्यमन्यन्त दैवेनोपनिपीडिताः ॥ ६९ ॥

उस पूर्वकालिक दर्शनका स्मरण करके दैवके द्वारा मारे गये उन वीरोंने समझ लिया कि यह वही है ॥ ६९ ॥

ततस्तेन निनादेन प्रत्यबुध्यन्त धन्विनः ।
शिबिरे पाण्डवेयानां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७० ॥

फिर उस आवाजके कारण पाण्डवोंके शिविरमें सैंकडों, हजारों धनुर्धर जाग उठे ॥ ७० ॥

सोऽच्छिनत्कस्यचित्पादौ जघनं चैव कस्यचित् ।
कांश्चिद्बिभेद पार्श्वेषु कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ७१ ॥

उसने किसीके पैर तोड डाले, तो किसीका जघन; उसने कालनिर्मित अन्तकके समान किन्हींको पसलियोंमें छिन्न भिन्न किया ॥ ७१ ॥

अत्युग्रप्रतिपिष्टैश्च नदद्भिश्च भृशातुरैः ।
गजाश्वमथितैश्चान्यैर्मही कीर्णाभवत्प्रभो ॥ ७२ ॥

महाराज ! भीषण रीतिसे पिसे गये, आतुरतासे चिल्लानेवाले तथा हाथी-घोडों द्वारा कुचलाये गये अन्य वीरोंके शरीरोंसे भूमि व्याप्त हो गई ॥ ७२ ॥

क्रोशतां किमिदं कोऽयं किं शब्दः किं नु किं कृतम् ।
एवं तेषां तदा द्रौणिरन्तकः समपद्यत ॥ ७३ ॥

यह क्या है ? यह कौन है ? यह शब्द कैसा ? यह क्या किया ? आदि वे जब आक्रोश कर ही रहे थे कि इतनेमें उनका अन्तक अश्वत्थामा वहां आ धमकता था ॥ ७३ ॥

अपेतशस्त्रसंनाहान्संरब्धान्पाण्डुसृञ्जयान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय द्रौणिः प्रहरतां वरः ॥ ७४ ॥

लडनेवालोंमे श्रेष्ठ अश्वत्थामाने शस्त्रविरहित, घबराये हुए पाण्डव वीरोंको यमलोक भेज दिया ॥ ७४ ॥

ततस्तच्छस्त्रवित्रस्ता उत्पतन्तो भयातुराः ।
निद्रान्धा नष्टसंज्ञाश्च तत्र तत्र निलिल्यिरे　　　　॥ ७५ ॥

उसके शस्त्रसे डरे हुए, भयातुर, उठनेवाले, निद्रान्ध और बेसुध हो जगह जगह पडे छिप गये ॥ ७५ ॥

ऊरुस्तम्भगृहीताश्च कश्मलाभिहतौजसः ।
विनदन्तो भृशं त्रस्ताः संन्यपेषन्परस्परम्　　　　॥ ७६ ॥

डरके मारे उनका तेज कम हो गया था, वे बडे खंभोंको पकडकर, भयसे बहुत चिल्ला-चिल्लाकर आपसमें ही परस्परको मारने लगे ॥ ७६ ॥

ततो रथं पुनर्द्रौणिरास्थितो भीमनिस्वनम् ।
धनुष्पाणिः शरैरन्यान्प्रेषयद्वै यमक्षयम्　　　　॥ ७७ ॥

बादमें भयंकर आवाज करनेवाले रथमें आरूढ होकर और हाथमें धनुष बाण लेकर अश्वत्थामाने दूसरे लोगोंको यमपुरीमें भेज दिया ॥ ७७ ॥

पुनरुत्पततः कांश्चिद्दूरादपि नरोत्तमान् ।
शूरान्संपततश्चान्यान्कालरात्र्यै न्यवेदयत्　　　　॥ ७८ ॥

फिर उठकर अश्वत्थामाकी ओर दौडनेवाले नरश्रेष्ठ शूरोंको यद्यपि वे दूर थे तो भी अश्वत्थामाने उन्हें कालरात्रिके सामने उपाहारके रूपमें समर्पित किया ॥ ७८ ॥

तथैव स्यन्दनाग्रेण प्रमथन्स विधावति ।
शरवर्षैश्च विविधैरवर्षच्छात्रवांस्ततः　　　　॥ ७९ ॥

तथा रथके अग्रभागसे लोगोंको कुचलता हुआ और तरह तरहके बाणोंकी बौछारसे शत्रुओंको मारता हुआ वह इधर उधर दौडने लगा ॥ ७९ ॥

पुनश्च सुविचित्रेण शतचन्द्रेण चर्मणा ।
तेन चाकाशवर्णेन तदाचरत सोऽसिना　　　　॥ ८० ॥

फिर उसने वही शतचंद्रों जैसा चर्म और आकाशके रंगका खड्ग लेकर वही हत्याकाण्ड किया ॥ ८० ॥

तथा स शिबिरं तेषां द्रौणिराहवदुर्मदः ।
व्यक्षोभयत राजेन्द्र महाह्रदमिव द्विपः　　　　॥ ८१ ॥

महाराज ! उस युद्धदुर्मद अश्वत्थामाने उनके शिबिरको ऐसा विक्षोभित कर डाला, जैसे कि बडे सरोवरको हाथी विक्षोभित करता है ॥ ८१ ॥

उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन्विचेतसः ।
निद्रार्ताश्च भयार्ताश्च व्यधावन्त ततस्ततः ॥ ८२ ॥

महाराज! उस शब्दसे निद्रार्त, भीतिग्रस्त और बेसुध लोग भी उठकर खडे हुए और इधर उधर दौडने लगे ॥ ८२ ॥

विस्वरं चुक्रुशुश्चान्ये बहुबद्धं तथावदन् ।
न च स्म प्रतिपद्यन्ते शस्त्राणि वसनानि च ॥ ८३ ॥

कई लोग विचित्र आक्रोश करने लगे, कोई बहुत असंगत बलबलाने लगे, और किसीको भी शस्त्र या वस्त्र न मिल रहा था ॥ ८३ ॥

विमुक्तकेशाश्चाप्यन्ये नाभ्यजानन्परस्परम् ।
उत्पतन्तः परे भीताः केचित्तत्र तथाभ्रमन् ॥
पुरीषमसृजन्केचित्केचिन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ ८४ ॥

भयके मारे उठकर कुछ लोग घूमने लगे, कइयोंने पुरीषोत्सर्ग किया तो कई लोगोंने मूत्रोत्सर्ग किया ॥ ८४ ॥

बन्धनानि च राजेन्द्र संछिद्य तुरगा द्विपाः ।
समं पर्यपतंश्चान्ये कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ८५ ॥

साथ साथ ही बन्धन रस्सी तोडकर घोडे और हाथी इधर उधर दौडने लगे और बडा ही हल्ला मचाने लगे ॥ ८५ ॥

तत्र केचिन्नरा भीता व्यलीयन्त महीतले ।
तथैव तान्निपतितानपिंषन्गजवाजिनः ॥ ८६ ॥

वहां कुछ लोग भयसे जमीनपर ही छिप गये थे, उन्हें उस तरह पडे पडे ही हाथी घोडोंने कुचल डाला ॥ ८६ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रक्षांसि पुरुषर्षभ ।
तृप्तानि व्यनदन्नुच्चैर्मुदा भरतसत्तम ॥ ८७ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! भरतसत्तम! जब यह सब हो रहा था तब राक्षस तृप्त हुए; और आनंदसे उद्घोष करने लगे ॥ ८७ ॥

स शब्दः प्रेरितो राजन्भूतसंघैर्मुदा युतैः ।
अपूरयद्दिशः सर्वा दिवं चापि महास्वनः ॥ ८८ ॥

आनंदित भूतसंघोंका किया हुआ वह घोर शब्द सारी दिशाओंमें फैल गया, इतनाही नहीं स्वर्गमें भी भर गया ॥ ८८ ॥

तेषामार्तस्वरं श्रुत्वा वित्रस्ता गजवाजिनः ।
मुक्ताः पर्यपतन्राजन्मृद्नन्तः शिबिरे जनम् ॥ ८९ ॥

महाराज ! उनके आर्तस्वरको सुनकर हाथी, घोडे घबरा गये और वे जब मुक्त हुए तब शिबिरमें लोगोंको कुचलाते हुए दौडने लगे ॥ ८९ ॥

तैस्तत्र परिधावद्भिश्चरणोदीरितं रजः ।
अकरोच्छिबिरे तेषां रजन्यां द्विगुणं तमः ॥ ९० ॥

उन्होंने इधर उधर दौंडकर जो पैरोंसे धूल उडाई उस धूलने शिबिरमें रातके अंधेरेको दुगुना कर दिया ॥ ९० ॥

तस्मिंस्तमसि सञ्जाते प्रमूढाः सर्वतो जनाः ।
नाजानन्पितरः पुत्रान्भ्रातॄन्भ्रातर एव च ॥ ९१ ॥

उस अंधेरेमें लोग सर्वथा दिङ्मूढ हो गये । न पिता पुत्रों और न भाई भाइयोंके पहचान सकते थे ॥ ९१ ॥

गजा गजानतिक्रम्य निर्मनुष्या हया हयान् ।
अताडयंस्तथाभञ्जंस्तथामृद्नंश्च भारत ॥ ९२ ॥

हाथियोंने हाथियोंपर और मनुष्यविरहित घोडोंने घोडोंपर अतिक्रमण किया और उन्हें पीटा, तोडा और कुचल दिया ॥ ९२ ॥

ते भग्नाः प्रपतन्तश्च निघ्नन्तश्च परस्परम् ।
न्यपातयन्त च परान्पातयित्वा तथापिषन् ॥ ९३ ॥

उन भग्न और दौडनेवालोंने परस्परोंके मारते मारते दूसरोंको गिरा दिया और गिराकर फिर उन्हें कुचलकर चूर्ण कर डाला ॥ ९३ ॥

विचेतसः सनिद्राश्च तमसा चावृता नराः ।
जघ्नुः स्वानेव तत्राथ कालेनाभिप्रचोदिताः ॥ ९४ ॥

वहांके लोग मूढ, निद्राधीन और अंधेरेसे घिरे हुए थे, मानो वे कालकी प्रेरणासे स्वकीयोंको भी मारने लगे ॥ ९४ ॥

त्यक्त्वा द्वाराणि च द्वाःस्थास्तथा गुल्मांश्च गौल्मिकाः
प्राद्रवन्त यथाशक्ति कान्दिशीका विचेतसः ॥ ९५ ॥

द्वारके लोग द्वार छोडकर तथा गुल्मके लोग गुल्मोंको छोडकर विमूढ हो कहां जाना चाहिये यह भी न समझकर सब यथाशक्ति भागने लगे ॥ ९५ ॥

विप्रनष्टाश्च तेऽन्योन्यं नाजानन्त तदा विभो ।
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति दैवोपहतचेतसः ॥ ९६ ॥
दुर्दैव पीडित अन्तःकरणसे 'हा पिता,' 'हा पुत्र' इस तरह आक्रन्दन करनेवाले वे जब भाग गये थे तब, हे महाराज ! वे एक दूसरेको जान भी नहीं सकते थे ॥ ९६ ॥

पलायतां दिशस्तेषां स्वानप्युत्सृज्य बान्धवान् ।
गोत्रनामभिरन्योन्यमाक्रन्दन्त ततो जनाः ॥ ९७ ॥
जब वे सब अपने बांधवोंको भी छोडकर दस दिशाओंमें भाग रहे थे तब लोग गोत्र और नामका उच्चार करके एक दूसरोंको पुकार रहे थे ॥ ९७ ॥

हाहाकारं च कुर्वाणाः पृथिव्यां शेरते परे ।
तान्बुद्ध्वा रणमत्तोऽसौ द्रोणपुत्रो व्यपोथयत् ॥ ९८ ॥
कई लोग हाहाकार करते हुए भूमिपर लेट गये थे उन्हें जानकर उस युद्धमत्त अश्वत्थामाने मृत्युवश कर दिया ॥ ९८ ॥

तत्रापरे वध्यमाना मुहुर्मुहुरचेतसः ।
शिबिरान्निष्पतन्ति स्म क्षत्रिया भयपीडिताः ॥ ९९ ॥
दूसरे कई जब मारे जानेवाले थे तब वे भयग्रस्त क्षत्रिय शिबिरमेंसे बार बार बाहर निकलने लगे ॥ ९९ ॥

तांस्तु निष्पततस्त्रस्ताञ्शिबिराज्जीवितैषिणः ।
कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः ॥ १०० ॥
उन जिंदा रहनेकी कामनासे शिबिरमेंसे बाहर निकलनेवालोंको द्वारप्रदेशमें कृतवर्मा और कृपाचार्यने मार डाला ॥ १०० ॥

विशस्त्रयन्त्रकवचान्मुक्तकेशान्कृताञ्जलीन् ।
वेपमानान्क्षितौ भीतान्नैव कांश्चिदमुञ्चताम् ॥ १०१ ॥
उन्होंने जो शस्त्र, यंत्र और कवचसे खाली थे, जिनके बाल खुले थे, जो हाथ जोड रहे थे, जो डरे हुए और भूमिपर काँप रहे थे ऐसे किन्हींको भी नहीं छोडा ॥ १०१ ॥

नामुच्यत तयोः कश्चिन्निष्क्रान्तः शिबिराद्बहिः ।
कृपस्य च महाराज हार्दिक्यस्य च दुर्मतेः ॥ १०२ ॥
उस दुर्मति कृप और कृतवर्माके सामनेसे कोई भी जिंदा नहीं छूटा और कोई भी शिबिरसे बाहर नहीं निकल सका ॥ १०२ ॥

भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम् ।
त्रिषु देशेषु ददतुः शिबिरस्य हुताशनम् ॥ १०३ ॥

फिर उन दोनोंने अश्वत्थामाका और भी प्रिय करनेके लिये उस शिविरमें तीन जगह अग्नि लगा दी ॥ १०३ ॥

ततः प्रकाशे शिबिरे खड्गेन पितृनन्दनः ।
अश्वत्थामा महाराज व्यचरत्कृतहस्तवत् ॥ १०४ ॥

हे महाराज! पिताको आनंद देनेवाला अश्वत्थामा उस प्रकाशयुक्त शिविरमें खड्गसहित कृतान्तके समान घूमने लगा ॥ १०४ ॥

कांश्चिदापततो वीरानपरांश्च प्रधावतः ।
व्ययोजयत खड्गेन प्राणैर्द्विजवरो नरान् ॥ १०५ ॥

कुछ दौड आनेवाले वीरोंको और भाग जानेवाले और लोगोंको उस ब्राह्मणश्रेष्ठने अपने खड्गसे प्राणवियुक्त कर दिया ॥ १०५ ॥

कांश्चिद्योधान्स खड्गेन मध्ये संछिद्य वीर्यवान् ।
अपातयद्द्रोणसुतः संरब्धस्तिलकाण्डवत् ॥ १०६ ॥

उस वीर्यवान् द्रोणपुत्रने कई वीरोंको बीचमें चीरकर तिलके काण्डके समान भूमिपर गिरा दिया ॥ १०६ ॥

विनदद्भिर्भृशायस्तैर्नराश्वद्विरदोत्तमैः ।
पतितैरभवत्कीर्णा मेदिनी भरतर्षभ ॥ १०७ ॥

हे भरतकुलोत्पन्न! इस तरह चिल्लानेवाले अस्तव्यस्त पडे हुए मनुष्यों, घोडों और उत्तम हाथिओंसे सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी ॥ १०७ ॥

मानुषाणां सहस्रेषु हतेषु पतितेषु च ।
उदतिष्ठन्कबन्धानि बहून्युत्थाय चापतन् ॥ १०८ ॥

हजारों मनुष्योंके मारे जाने और गिर पडनेके बाद बहुतसे शरीर उठ खडे हुए और उठकर फिर गिर गये ॥ १०८ ॥

सायुधान्साङ्गदान्बाहून्विचकर्त शिरांसि च ।
हस्तिहस्तोपमानूरून्हस्तान्पादांश्च भारत ॥ १०९ ॥

हे भारत! आयुध और बाजूबंद सहित बाहुओं, सिरों, हाथीकी सूंडके समान जंघाओं, हाथों और पैरोंको उसने काट दिया ॥ १०९ ॥

पृष्ठच्छिन्नाञ्शिरश्छिन्नान्पार्श्वच्छिन्नांस्तथापरान् ।
समासाद्याकरोद्द्रौणिः कांश्चिचापि पराङ्मुखान् ॥ ११० ॥
जो पीठ दिखाकर भाग रहे थे उनके पीछे दौडकर अश्वत्थामाने, किसीकी पीठ, किसीका शिर, किसीकी पसलियां छिन्न भिन्न कीं ॥ ११० ॥

मध्यकायान्नरानन्यांश्चिच्छेदान्यांश्च कर्णतः ।
अंसदेशे निहत्यान्यान्काये प्रावेशयच्छिरः ॥ १११ ॥
किन्हींके शरीरका मध्यभाग उसने तोडा तो किन्हींके कानोंका छेद किया । किन्हींके कंधोंपर प्रहार करके उनका सिर उसने शरीरमें घुसवा दिया ॥ १११ ॥

एवं विचरतस्तस्य निघ्नतः सुबहून्नरान् ।
तमसा रजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना ॥ ११२ ॥
इस तरह जब वह बहुत लोगोंको मारता हुआ था तब वह रात्रि अंधेरेके और ही भयप्रद मालुम पडने लगी ॥ ११२ ॥

किंचित्प्राणैश्च पुरुषैर्हतैश्चान्यैः सहस्रशः ।
बहुना च गजाश्वेन भूरभूद्भीमदर्शना ॥ ११३ ॥
ऐसे लोगोंसे कि जिनके प्राण किंचित् अवशिष्ट हैं, तथा दूसरे हजारों लोगोंसे बहुतसे हाथी घोडोंसे भूमिका स्वरूप भीषण दिखाई देने लगा ॥ ११३ ॥

यक्षरक्षःसमाकीर्णे रथाश्वद्विपदारुणे ।
क्रुद्धेन द्रोणपुत्रेण संछिन्नाः प्रापतन्भुवि ॥ ११४ ॥
क्रुद्ध अश्वत्थामा द्वारा मारे गये लोग यक्ष-राक्षसोंसे व्याप्त, रथों, घोडों, हाथियोंके प्रेतोंसे भयानक भूपृष्ठपर गिर पडे ॥ ११४ ॥

मातॄरन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये विचुक्रुशुः ।
केचिदूचुर्न तत्क्रुद्धैर्धार्तराष्ट्रैः कृतं रणे ॥ ११५ ॥
कुछ माताओंको, कुछ पिताओंको, कुछ भाईयोंको पुकार रहे थे । कुछ कह रहे थे कि युद्धमें क्रुद्ध धृतराष्ट्रपुत्रों और उनके अनुयायियोंने वह नहीं किया था ॥ ११५ ॥

यत्कृतं नः प्रसुप्तानां रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ।
असांनिध्याद्धि पार्थानामिदं नः कदनं कृतम् ॥ ११६ ॥
जो हमारे सो जानेके बाद इन क्रूरकर्मा राक्षसोंने किया, यह हमारा हत्याकांड यहां पाण्डवोंके न होनेके कारण ही हुआ है ॥ ११६ ॥

न देवासुरगन्धर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः ।
शक्यो विजेतुं कौन्तेयो गोप्ता यस्य जनार्दनः ॥ ११७ ॥

जिसकी रक्षा स्वयं कृष्ण करते हैं उस अर्जुनको पराजित करना देवों, असुरों, गंधर्वों और यक्ष-राक्षसोंको भी कठिन है ॥ ११७ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तः सर्वभूतानुकम्पकः ।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा न्यस्तशस्त्रं कृताञ्जलिम् ।
धावन्तं मुक्तकेशं वा हन्ति पार्थो धनञ्जयः ॥ ११८ ॥

ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, संयमी, सब प्राणियोंपर दया करनेवाला पार्थ धनंजय, सो रहे, असावधान, मुक्तकेश, निःशस्त्र, हाथ जोडनेवाले और भागनेवाले लोगोंको नहीं मारता है ॥ ११८ ॥

तदिदं नः कृतं घोरं रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ।
इति लालप्यमानाः स्म शेरते बहवो जनाः ॥ ११९ ॥

सो क्रूर राक्षसोंने हमपर यह घोर अत्याचार किया है । इस तरह बलबलाते हुए बहुत लोग लेट जाते थे ॥ ११९ ॥

स्तनतां च मनुष्याणामपरेषां च कूजताम् ।
ततो मुहूर्तात्प्राशाम्यत्स शब्दस्तुमुलो महान् ॥ १२० ॥

इस तरह मनुष्य कराह रहे थे और बाकी प्राणी चीत्कार कर रहे थे, उनका वह तुमुल और बडा शब्द भी थोडी देरके बाद शांत हो गया ॥ १२० ॥

शोणितव्यतिषिक्तायां वसुधायां च भूमिप ।
तद्रजस्तुमुलं घोरं क्षणेनान्तरधीयत ॥ १२१ ॥

महाराज ! रुधिरसे भीनी हुई पृथ्वीपर जो घोर और तुमुल धूल थी और वह एक क्षणके बाद अदृश्य हो गयी ॥ १२१ ॥

संवेष्टमानानुद्विग्नान्निरुत्साहान्सहस्रशः ।
न्यपातयन्नरान्क्रुद्धः पशून्पशुपतिर्यथा ॥ १२२ ॥

अपनेको छिपानेवाले, उद्विग्न, निरुत्साह हजारों मनुष्योंको क्रुद्ध अश्वत्थामाने जैसे पशुओंको क्रुद्ध पशुपति सिंह मारता है, वैसे मार डाला ॥ १२२ ॥

अन्योन्यं संपरिष्वज्य शयानान्द्रवतोऽपरान् ।
संलीनान्युध्यमानांश्च सर्वान्द्रौणिरपोथयत् ॥ १२३ ॥

एक दूसरेको आलिंगन करके पडे हुएंको, भागनेवालोंको, छिपे हुएंको और लडनेवालोंको-सबको अश्वत्थामाने मारा ॥ १२३ ॥

दह्यमाना हुताशेन वध्यमानाश्च तेन ते।
परस्परं तदा योधा अनयन्यमसादनम् ॥ १२४ ॥

अग्निसे जलनेवाले और अश्वत्थामाके हाथों जो मारे जा रहे थे, उन्होंने उस समय एक दूसरे को मारकर यमलोक भेज दिया ॥ १२४ ॥

तस्या रजन्यास्त्वर्धेन पाण्डवानां महद्बलम्।
गमयामास राजेन्द्र द्रौणिर्यमनिवेशनम् ॥ १२५ ॥

हे महाराज ! उस रातके आधे अंशमें पांडवोंके बडे सैन्यको अश्वत्थामाने यमनगरी भेज दिया ॥ १२५ ॥

निशाचराणां सत्त्वानां सा रात्रिर्हर्षवर्धिनी।
आसीन्नरगजाश्वानां रौद्री क्षयकरी भृशम् ॥ १२६ ॥

वह रात्रि निशाचर जानवरोंका आनंद बढानेवाली थी; और मनुष्यों, हाथियों, घोडोंके लिये बहुत भयप्रद और उनका नाश करनेवाली थी ॥ १२६ ॥

तत्रादृश्यन्त रक्षांसि पिशाचाश्च पृथग्विधाः।
खादन्तो नरमांसानि पिबन्तः शोणितानि च ॥ १२७ ॥

वहां भांती भांतीके राक्षस और पिशाच मनुष्योंका मांस खाते हुए और खून पीते हुए नजर आ रहे थे ॥ १२७ ॥

करालाः पिङ्गला रौद्राः शैलदन्ता रजस्वलाः।
जटिला दीर्घसक्थाश्च पञ्चपादा महोदराः ॥ १२८ ॥

भयंकर, पिंगलवर्ण, भीषण, बडे बडे दांतवाले, धूलसे सने हुए, जटावाले लम्बी जांघवाले ऐसे कुछ थे और कुछ राक्षसोंके पांच पांच पैर थे तो किन्हींके पेट बडे थे ॥ १२८ ॥

पश्चादङ्गुलयो रूक्षा विरूपा भैरवस्वनाः।
घटजानवोऽतिह्रस्वाश्च नीलकण्ठा विभीषणाः ॥ १२९ ॥

कइयोंकी उंगलीयां पीछेको थीं, कुछ रूक्ष, विरूप और भयानक स्वरवाले थे। किन्हींके घुटने घडोंके समान थे, कुछ बहुत ठिंगने कदके थे, कुछ नीलकंठ और भयावने थे ॥ १२९ ॥

सपुत्रदाराः सुक्रूरा दुर्दर्शनसुनिर्घृणाः।
विविधानि च रूपाणि तत्रादृश्यन्त रक्षसाम् ॥ १३० ॥

कुछ बहुत क्रूर, दीखनेमें भद्दे, अति निर्दयी थे और वे पुत्र-पत्नियोंको साथमें लेकर आये थे। इस तरह राक्षसोंके विविध रूप वहां दिखायी दे रहे थे ॥ १३० ॥

पीत्वा च शोणितं हृष्टाः प्रानृत्यन्गणशोऽपरे।
इदं वरमिदं मेध्यमिदं स्वाद्विति चाब्रुवन् ॥ १३१ ॥

उनमेंसे कई खून पीकर हर्षसे समूह बनाकर नाचने लगे। दूसरे कुछ, यह अच्छा है, यह मेध्य पवित्र है, यह स्वादिष्ट, ऐसे भी बोल रहे थे ॥ १३१ ॥

मेदोमज्जास्थिरक्तानां वसानां च भृशाशिताः।
परमांसानि खादन्तः क्रव्यादा मांसजीविनः ॥ १३२ ॥

मेद, मज्जा, हड्डियां, खून और चरबी खूब खाकर दूसरोंके मांस खानेवाले मांसजीवी राक्षस वहां थे ॥ १३२

वसां चाप्यपरे पीत्वा पर्यधावन्विकुक्षिलाः।
नानावक्त्रास्तथा रौद्राः क्रव्यादाः पिशिताशिनः ॥ १३३ ॥

दूसरे कई मांसभोजी राक्षस जो तहर तरहके मुंहवाले थे और भीषण थे, चरबी पीकर उनके पेट फूल आये थे और वे दौड रहे थे ॥ १३३ ॥

अयुतानि च तत्रासन्प्रयुतान्यर्बुदानि च।
रक्षसां घोररूपाणां महतां क्रूरकर्मणाम् ॥ १३४ ॥

वहां भयानकरूपवाले, क्रूर कर्म करनेवाले बडे बडे राक्षस हजारों, लाखों और अर्बुदोंकी संख्यामें थे ॥ १३४ ॥

मुदितानां वितृप्तानां तस्मिन्महति वैशसे।
समेतानि बहून्यासन्भूतानि च जनाधिप ॥ १३५ ॥

महाराज! उन आनंदित, तृप्त राक्षसोंके बडे हंगामेमें बहुतसे भूत भी आकर शामिल हुए ॥ १३५ ॥

प्रत्यूषकाले शिबिरात्प्रतिगन्तुमियेष सः।
नृशोणितावसिक्तस्य द्रौणेरासीदसित्सरुः।
पाणिना सह संश्लिष्ट एकीभूत इव प्रभो ॥ १३६ ॥

जब प्रभातका समय आया तब शिबिरमेंसे वापस जाना उसने चाहा। अश्वत्थामाके खड्गकी मुट्ठी मनुष्योंके रुधिरसे सनी हुई थी, इसलिये मानो उसके हाथसे एकरूप हो गयी हो ऐसी चिपक गयी थी ॥ १३६ ॥

स निःशेषानरीन्कृत्वा विरराज जनक्षये।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ १३७ ॥

सब शत्रुओंका काम तमाम करके जनसंहार देखकर वह शोभा पा रहा था, जैसे कल्पांतके समय सब प्राणियोंको भस्मसात् करके अग्नि शोभती है ॥ १३७ ॥

यथाप्रतिज्ञं तत्कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो ।
दुर्गमां पदवीं कृत्वा पितुरासीद्गतज्वरः ॥ १३८ ॥

महाराज ! द्रोणपुत्रने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह काम पूरा करके और पिताके दुर्गम मार्गपर जाकर मान लिया कि अब उसके मनका ज्वर चला गया है ॥ १३८ ॥

यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि ।
तथैव हत्वा निःशब्दे निश्चक्राम नरर्षभः ॥ १३९ ॥

जैसे रातको शिबिरमें जहांके सब लोग सो रहे थे उसने प्रवेश किया उसी तरह शब्दहीन शिबिरमेंसे सबका वध करके वह बाहर निकल पडा ॥ १३९ ॥

निष्क्रम्य शिबिरात्तस्मात्ताभ्यां संगम्य वीर्यवान् ।
आचख्यौ कर्म तत्सर्वं हृष्टः संहर्षयन्विभो ॥ १४० ॥

हे महाराज ! शिबिरमेंसे बाहर निकलकर और उन दोनोंसे मिलकर उस पराक्रमी अश्वत्थामाने स्वयं आनंदित होकर और उन्हें आनंदित करते हुए, अपना सारा दुष्कर्म कह सुनाया ॥१४०॥

तावप्याचख्यतुस्तस्मै प्रियं प्रियकरौ तदा ।
पाञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव विनिकृत्तान्सहस्रशः ।
प्रीत्या चोच्चैरुदक्रोशंस्तथैवास्फोटयंस्तलान् ॥ १४१ ॥

उसका प्रिय करनेवाले उन दोनोंने भी उसे प्रिय समाचार सुनाया कि, उन्होंने हजारों पांचालों और सृंजयोंके काट डाला है । फिर वे तीनों आनंदसे बहुत बडा आक्रोश करने लगे मानो उस आवाजसे सारे भुवनतलोंका स्फोट कर रहे हों ॥ १४१ ॥

एवंविधा हि सा रात्रिः सोमकानां जनक्षये ।
प्रसुप्तानां प्रमत्तानामासीत्सुभृशदारुणा ॥ १४२ ॥

जिसमें इस तरह सोमकोंका नाश किया गया वह रात्रि सोनेवाले और असावधान लोगोंको लिये बहुतही घातक सिद्ध हुई ॥ १४२ ॥

असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः ।
तादृशा निहता यत्र कृत्वास्माकं जनक्षयम् ॥ १४३ ॥

इसमें कोई संदेह नहीं कि कालके पर्यायको कोई नहीं लांघ सकता । जिसमें हमारे लोगोंका संहार करनेवाले मारे गये ॥ १४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

प्रागेव सुमहत्कर्म द्रौणिरेतन्महारथः ।
नाकरोदीदृशं कस्मान्मत्पुत्रविजये धृतः ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र बोले— मेरे पुत्रकी विजयके लिये बद्धपरिकर महारथ अश्वत्थामाने यह ऐसा महत्कर्म पहलेही क्यों नहीं किया ? ॥ १४४ ॥

अथ कस्माद्धते क्षत्रे कर्मेदं कृतवानसौ ।
द्रोणपुत्रो महेष्वासस्तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ १४५ ॥

अब, जब सारे क्षत्रियोंका नाश हो चुका है उस महातेजस्वी अश्वत्थामाने यह कर्म क्यों किया, यह तुम कृपया मुझसे कहो ॥ १४५ ॥

सञ्जय उवाच

तेषां नूनं भयान्नासौ कृतवान्कुरुनन्दन ।
असांनिध्याद्धि पार्थानां केशवस्य च धीमतः ॥ १४६ ॥

संजय बोले– हे कुरुनंदन, सचमुच उनके भयसे ही वह कुछ न कर सका था । अब पांडवों और बुद्धिशाली श्रीकृष्णके दूर रहनेसे लाभ उठाकर ही उसने यह किया है ॥ १४६ ॥

सात्यकेश्चापि कर्मेदं द्रोणपुत्रेण साधितम् ।
न हि तेषां समक्षं तान्हन्यादपि मरुत्पतिः ॥१४७॥

उसी प्रकार सात्यकिके दूर रहनेके कारण द्रोणपुत्रने यह कर्म पूरा किया । क्यों कि उनके देखते साक्षात् देवराज इंद्र भी उन्हें नहीं मार सकता था ॥ १४७ ॥

एतदीदृशकं वृत्तं राजन्सुप्तजने विभो ।
ततो जनक्षयं कृत्वा पाण्डवानां महात्ययम्
दिष्ट्या दिष्ट्येति चान्योन्यं समेत्योचुर्महारथाः ॥ १४८ ॥

महाराज ! उन सो रहे लोगोंका ऐसा वृत्त है । बादमें इस तरह जनसंहार करके और पांडवोंको बडी हानि पहुँचाकर वे तीनों महारथ ' बहुत अच्छा ' ' बहुत अच्छा ' ऐसा एक दूसरेसे मिलकर चिल्लाने लगे ॥ १४८ ॥

पर्यष्वजत्ततो द्रौणिस्ताभ्यां च प्रतिनन्दितः ।
इदं हर्षाच्च सुमहदाददे वाक्यमुत्तमम् ॥ १४९ ॥

उनके दोनोंसे अभिनंदन पाकर अश्वत्थामाने उन्हें आलिंगन दिया । फिर बडे हर्षसे यह वाक्य बोला ॥ १४९ ॥

पाञ्चाला निहताः सर्वे द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
सोमका मत्स्यशेषाश्च सर्वे विनिहता मया ॥ १५० ॥

सभी पांचलों और द्रौपदीके सभी पुत्रोंको मैंने मार डाला तथा सोमकों और बचे हुए मत्स्यदेशीयोंको भी मैंने निःशेष मार डाला है ॥ १५० ॥

इदानीं कृतकृत्याः स्म याम तत्रैव माचिरम् ।
यदि जीवति नो राजा तस्मै शंसामहे प्रियम् ॥ १५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ४५६ ॥

अब हम कृतार्थ हुए हैं । अब विना विलंबके वहीं जाएँ, अगर हमारे महाराज जीवित हों तो उन्हें यह प्रिय समाचार निवेदित करें ॥ १५१ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ ४५६ ॥

: ९ :

सञ्जय उवाच

ते हत्वा सर्वपाञ्चालान्द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
अगच्छन्सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः ॥ १ ॥

संजय बोले– वे तीनों सब पांचालों और द्रौपदीपुत्रोंका नाश करके मिलकर वहीं गये, जहां दुर्योधन मारा जाकर पडा हुआ था ॥ १ ॥

गत्वा चैनमपश्यंस्ते किञ्चित्प्राणं नराधिपम् ।
ततो रथेभ्यः प्रस्कन्द्य परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥ २ ॥

वहां जाकर उन्होंने देखा कि राजाके प्राण अभी जरा शेष हैं । फिर अपने अपने रथोंमेंसे कूदकर उन्होंने तुम्हारे पुत्रको घेर लिया ॥ २ ॥

तं भग्नसक्थं राजेन्द्र कृच्छ्रप्राणमचेतसम् ।
वमन्तं रुधिरं वक्त्रादपश्यन्वसुधातले ॥ ३ ॥

महाराज ! उन्होंने उस दुर्योधनको ऐसी हालतमें देखा कि जिसकी जांघे टूटी थीं, प्राणोंको कष्ट हो रहे थे, चेतना नष्ट हुई थी, मुँहमेंसे लोहू निकल रहा था और वह भूमिपर गिरा हुआ था ॥ ३ ॥

वृतं समन्ताद्बहुभिः श्वापदैर्घोरदर्शनैः ।
शालावृकगणैश्चैव भक्षयिष्यद्भिरन्तिकात् ॥ ४ ॥

दीखनेमें भयंकर पशुओंने उसे चारों ओरसे घेर डाला था । तथा भेडियोंके समूहोंने भी निकट आकर घेरा डाला था जो उसे खाना चाहते थे ॥ ४ ॥

निवारयन्तं कृच्छ्रात्ताञ्श्वापादान्संचिखादिषून् ।
विवेष्टमानं मह्यां च सुभृशं गाढवेदनम् ॥ ५ ॥

उसे खानेकी कामनासे आगे बढनेवाले श्वापदोंको बडे कष्टसे हटानेकी चेष्टा करनेवाले, असह्य वेदनासे जमीनपर हिलचाल करनेवाले, ॥ ५ ॥

तं शयानं महात्मानं भूमौ स्वरुधिरोक्षितम् ।
हतशिष्टास्त्रयो वीराः शोकार्ताः पर्यवारयन्
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ६ ॥

अपनेही रुधिरसे सराबोर, जमीनपर सोते हुए उस महात्माको उन बचे हुए, शोकार्त तीन वीरोंने अश्वत्थामा, कृप और सात्वत कृतवर्माने घेर लिया ॥ ६ ॥

तैस्त्रिभिः शोणितादिग्धैर्निःश्वसद्भिर्महारथैः ।
शुशुभे संवृतो राजा वेदी त्रिभिरिवाग्निभिः ॥ ७ ॥

रुधिरसे लिप्त, हांफते हुए उन तीनों महारथों द्वारा घिरा हुआ राजा तीन अग्निओं द्वारा घिरी वेदीके समान शोभा पाने लगा ॥ ७ ॥

ते तं शयानं सम्प्रेक्ष्य राजानमतथोचितम् ।
अविषह्येन दुःखेन ततस्ते रुरुदुस्त्रयः ॥ ८ ॥

उस राजाको वहां पडे देखकर जो कि किसी राजाके लिये उचित नहीं था, वे तीनों असह्य दुःखसे रोने लगे ॥ ८ ॥

ततस्ते रुधिरं हस्तैर्मुखान्निर्मृज्य तस्य ह ।
रणे राज्ञः शयानस्य कृपणं पर्यदेवयन् ॥ ९ ॥

फिर उन्होंने युद्धमें सोते हुए राजाके मुँहपरसे रुधिर पोंछ डाला और दीनतापूर्वक दुःख करने लगे ॥ ९ ॥

कृप उवाच

न दैवस्यातिभारोऽस्ति यदयं रुधिरोक्षितः ।
एकादशचमूभर्ता शेते दुर्योधनो हतः ॥ १० ॥

कृपाचार्य बोले– दैवको कुछ भी कठिन नहीं है । क्योंकि ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी यह राजा दुर्योधन लहूलुहान होकर आज भूमिपर सो रहा है ॥ १० ॥

पश्य चामीकराभस्य चामीकरविभूषिताम् ।
गदां गदाप्रियस्येमां समीपे पतितां भुवि ॥ ११ ॥

देखो, सुनहली कान्तिवाले गदाप्रिय दुर्योधनकी सुवर्णविभूषित गदा निकट ही भूमिपर पडी हुई है ॥ ११ ॥

इयमेनं गदा शूरं न जहाति रणे रणे ।
स्वर्गायापि व्रजन्तं हि न जहाति यशस्विनम् ॥ १२ ॥

यह गदा इस शूर और यशस्वीको किसी युद्धमें नहीं छोडती है, जब कि यह स्वर्ग जाने निकला है तब भी उसे वह नहीं छोड रही है ॥ १२ ॥

पश्येमां सह वीरेण जाम्बूनदविभूषिताम् ।
शयानां शयने धर्म्ये भार्यां प्रीतिमतीमिव ॥ १३ ॥

देखो, यह सुवर्णविभूषित गदा इस वीरके साथ धर्म्य शयनपर प्रीतिमती भार्याके समान सो रही है ॥ १३ ॥

यो वै मूर्धावसिक्तानामग्रे यातः परन्तपः ।
स हतो ग्रसते पांसून्पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १४ ॥

कालका परिवर्तन कैसा होता है देखो, जो मूर्धाभिषिक्तोंमें अग्रसर था और शत्रुओंको घबरानेवाला था वह आज मारा जाकर धूल ग्रास रहा है ॥ १४ ॥

येनाजौ निहता भूमावशेरत पुरा द्विषः ।
स भूमौ निहतः शेते कुरुराजः परैरयम् ॥ १५ ॥

जिसके मारे हुए शत्रु भूमिपर सोते थे वही कुरुराज शत्रुओंके द्वारा मारा जाकर जमीनपर सो रहा है ॥ १५ ॥

भयान्नमन्ति राजानो यस्य स्म शतसंघशः ।
स वीरशयने शेते क्रव्याद्भिः परिवारितः ॥ १६ ॥

जिसके भयसे सैंकडों राजे महाराजे नम्र हुआ करते थे वह आज मांसाशी जानवरोंसे घिरा हुआ वीरशय्यापर सो रहा है ॥ १६ ॥

उपासत नृपाः पूर्वमर्थहेतोर्यमीश्वरम् ।
धिक्सद्यो निहतः शेते पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १७ ॥

देखो, कैसा काल बदल जाता है ! जिस सम्राटकी सेवा बडे राजा महाराजा स्वार्थके लिये किया करते थे, दुःखकी बात है कि वही सम्राट आज मारा जाकर सोरहा है ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच

तं शयानं नृपश्रेष्ठं ततो भरतसत्तम ।
अश्वत्थामा समालोक्य करुणं पर्यदेवयत् ॥ १८ ॥

सञ्जय बोले– हे भरतकुलश्रेष्ठ ! उस श्रेष्ठ राजाको इस प्रकार सोये देखकर अश्वत्थामा करुण दुःख करने लगा ॥ १८ ॥

आहुस्त्वां राजशार्दूल मुख्यं सर्वधनुष्मताम् ।
धनाध्यक्षोपमं युद्धे शिष्यं सङ्कर्षणस्य ह ॥ १९ ॥

हे राजशार्दूल ! तुम्हें सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और युद्धमें कुबेरके समान, बलरामके शिष्य अत एव अतुल योद्धा कहते हैं ॥ १९ ॥

कथं विवरमद्राक्षीद्भीमसेनस्तवानघ ।
बलिनः कृतिनो नित्यं स च पापात्मवान्नृप ॥ २० ॥

हे राजन् ! भीमसेन तुममें वैगुण्य कैसे देख सका ? बलवान् लोग हमेशाही धन्य रहते हैं और वह तो पापात्मा है ॥ २० ॥

कालो नूनं महाराज लोकेऽस्मिन्बलवत्तरः ।
पश्यामो निहतं त्वां चेद्भीमसेनेन संयुगे ॥ २१ ॥

हे महाराज ! इस लोकमें काल सबसे सचमुच बलवत्तर है। जिससे हम तुम्हें युद्धमें भीमसेन-द्वारा मारे गये देख रहे हैं ॥ २१ ॥

कथं त्वां सर्वधर्मज्ञं क्षुद्रः पापो वृकोदरः ।
निकृत्या हतवान्मन्दो नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २२ ॥

तुम जैसे सब धर्म जाननेवालेको क्षुद्र, पापी और मंद भीम अधर्मसे जखमी करके कैसे मार सका ? सचमुच काल अपरिहार्य है ॥ २२ ॥

धर्मयुद्धे ह्यधर्मेण समाहूयौजसा मृधे ।
गदाया भीमसेनेन निर्भिन्ने सक्थिनी तव ॥ २३ ॥

पराक्रमसे धर्मयुद्ध करनेके लिये बुलाकर भीमसेनने अधर्मपूर्वक गदाके प्रहारसे तुम्हारी जांघें तोड डालीं हैं ॥ २३ ॥

अधर्मेण हतस्याजौ मृद्यमानं पदा शिरः ।
यदुपेक्षितवान्क्षुद्रो धिक्तमस्तु युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरका धिक्कार हो, जिस क्षुद्रने अधर्मसे मारे गये राजाके सिरपर लात मारी जा रही है यह देखकर उपेक्षा की ॥ २४ ॥

युद्धेष्वपवदिष्यन्ति योधा नूनं वृकोदरम् ।
यावत्स्थास्यन्ति भूतानि निकृत्या ह्यसि पातितः ॥ २५ ॥

योद्धा लोग युद्धोंमें भीमको अपवाद देंगे, दूषण देंगे जब तक प्राणिजगत् रहेगा; क्योंकि तुम्हें उसने अधर्मसे गिराया है ॥ २५ ॥

ननु रामोऽब्रवीद्राजंस्त्वां सदा यदुनन्दनः ।
दुर्योधनसमो नास्ति गदया इति वीर्यवान् ॥ २६ ॥

सचमुच यदुकुलोत्पन्न राम बलभद्र तुम्हारे बारेमें सदा कहा करते थे कि गदायुद्धमें दुर्योधनके समान वीर्यवान् दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥

श्लाघते त्वां हि वार्ष्णेयो राजन्संसत्सु भारत ।
सुशिष्यो मम कौरव्यो गदायुद्ध इति प्रभो ॥ २७ ॥

महाराज ! वार्ष्णेय यादव—बलराम सभामें हमेशा तुम्हारी सराहना किया करते थे कि गदायुद्धमें कौरवराज मेरा अच्छा शिष्य है ॥ २७ ॥

यां गतिं क्षत्रियस्याहुः प्रशस्तां परमर्षयः ।
हतस्याभिमुखस्याजौ प्राप्तस्त्वमसि तां गतिम् ॥ २८ ॥

महर्षियोंने जिस गतिको क्षत्रियकी गति कहा है वही गति युद्धमें संमुख मरकर तुमने प्राप्तकी है ॥ २८ ॥

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं पुरुषर्षभ ।
हतपुत्रां तु शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ।
भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् ॥ २९ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ दुर्योधन ! मैं तुम्हारे लिये नहीं शोक करूंगा, परंतु हतपुत्रा गांधारी और तुम्हारे पिताके लिये शोक कर रहा हूं । अब वे भिखारी बनकर इस पृथ्वीपर दुःख करते फिरेंगे ॥ २९ ॥

धिगस्तु कृष्णं वार्ष्णेयमर्जुनं चापि दुर्मतिम् ।
धर्मज्ञमानिनौ यौ त्वां वध्यमानमुपेक्षताम् ॥ ३० ॥

यदुकुलोत्पन्न कृष्ण और दुष्टबुद्धि अर्जुनका धिक्कार करना चाहिये । अपनेको धर्मज्ञ समझकर भी जिन्होंने मारे जानेवाले तुम्हारी उपेक्षा की ॥ ३० ॥

पाण्डवाश्चापि ते सर्वे किं वक्ष्यन्ति नराधिपान् ।
कथं दुर्योधनोऽस्माभिर्हत इत्यनपत्रपाः ॥ ३१ ॥

सारे पांडव भी राजाओंसे लज्जित हुए बिना क्या कहेंगे कि उन्होंने दुर्योधनको किस तरह मारा है ? ॥ ३१ ॥

धन्यस्त्वमसि गान्धारे यस्त्वमायोधने हतः ।
प्रयातोऽभिमुखः शत्रून्धर्मेण पुरुषर्षभ ॥ ३२ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ गांधारीपुत्र ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम युद्धमें शत्रुओंपर धर्मसे संमुख चढाई करके मारे गये ॥ ३२ ॥

हतपुत्रा हि गान्धारी निहतज्ञातिबान्धवा ।
प्रज्ञाचक्षुश्च दुर्धर्षः कां गतिं प्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥

गांधारी जिसके सारे पुत्र, ज्ञाति बांधव मारे गये हैं, तथा प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र इन दोनोंकी क्या गति होगी ? ॥ ३३ ॥

धिगस्तु कृतवर्माणं मां कृपं च महारथम् ।
ये वयं न गताः स्वर्गं त्वां पुरस्कृत्य पार्थिवम् ॥ ३४ ॥

कृतवर्माका, मेरा और महारथ कृपका धिक्कार करना चाहिये कि जिन्होंने तुम्हें अपने राजाको आगे किया और स्वयं स्वर्ग नहीं गये ॥ ३४ ॥

दातारं सर्वकामानां रक्षितारं प्रजाहितम् ।
यद्वयं नानुगच्छामस्त्वां धिगस्मान्नराधमान् ॥ ३५ ॥

हमारा धिक्कार हो कि जो हम तुम जैसे सब मनोरथोंके दाता, रक्षिता और प्रजाहिततत्पर राजाके पीछे नहीं जाते हैं ॥ ३६ ॥

कृपस्य तव वीर्येण मम चैव पितुश्च मे ।
सभृत्यानां नरव्याघ्र रत्नवन्ति गृहाणि च ॥ ३६ ॥

हे नरव्याघ्र ! तुम्हारे विक्रमके आधारपर कृपाचार्य और मेरे पिताके घर तथा सेवक–अनुसेवकोंके घर रत्नोंसे युक्त थे ॥ ३६ ॥

भवत्प्रसादादस्माभिः समित्रैः सहबान्धवैः ।
अवाप्ताः क्रतवो मुख्या बहवो भूरिदक्षिणाः ॥ ३७ ॥

तुम्हारी कृपासे मित्रबांधवों सहित हमने बडे और बडी दक्षिणायुक्त यज्ञ प्राप्त किये थे ॥ ३७ ॥

कुतश्चापीदृशं सार्थमुपलप्स्यामहे वयम् ।
यादृशेन पुरस्कृत्य त्वं गतः सर्वपार्थिवान् ॥ ३८ ॥

क्या फिर कहींसेभी ऐसा साथ हम प्राप्त करेंगे ? जिससे तुम सब राजाओंके आगे बढ चुके हो ॥ ३८ ॥

वयमेव त्रयो राजन्गच्छन्तं परमां गतिम् ।
यद्वै त्वां नानुगच्छामस्तेन तप्स्यामहे वयम् ॥ ३९ ॥

महाराज ! हम ही तीन आदमी ऐसे हैं जो परम गती प्राप्त करनेवाले तुम्हारे पीछे नहीं आरहे हैं, जिससे हम पछताएंगे ॥ ३९ ॥

त्वत्स्वर्गहीना हीनार्थाः स्मरन्तः सुकृतस्य ते ।
किं नाम तद्भवेत्कर्म येन त्वानुव्रजेम वै ॥ ४० ॥

ऐसा कौनसा कर्म है जिसके आचरणसे हम, जो तुम्हारे स्वर्गसे हीन, हीन उद्देश्ययुक्त, और तुम्हारे पुण्यकर्मका दुःखपूर्वक स्मरण करते करते तुम्हारे पीछे आसकेंगे ॥ ४० ॥

दुःखं नूनं कुरुश्रेष्ठ चरिष्यामो महीमिमाम् ।
हीनानां नस्त्वया राजन्कुतः शान्तिः कुतः सुखम् ॥ ४१ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! हम इस पृथ्वीपर निश्चय ही दुःखसे मारे मारे फिरेंगे । तुमसे बिछुडे हुए हमको सुख कहां और शांति कहां ? ॥ ४१ ॥

गत्वैतांस्तु महाराज समेत्य त्वं महारथान् ।
यथाश्रेष्ठं यथाज्येष्ठं पूजयेर्वचनान्मम ॥ ४२ ॥

हे महाराज ! तुम जाकर महारथोंसे मिलनेपर उनकी श्रेष्ठता और ज्येष्ठताके अनुसार मेरे कथनसे उनका गौरव करो ॥ ४२ ॥

आचार्यं पूजयित्वा च केतुं सर्वधनुष्मताम् ।
हतं मयाद्य शंसेथा धृष्टद्युम्नं नराधिप ॥ ४३ ॥

सब धनुधारियोंके अग्रणी आचार्य द्रोणकी पूजा करके, हे महाराज ! उनसे कह दो कि आज मैंने धृष्टद्युम्नका वध किया है ॥ ४३ ॥

परिष्वजेथा राजानं बाह्लिकं सुमहारथम् ।
सैन्धवं सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ ४४ ॥

अच्छे महारथ राजा बाह्लिकका तुम आलिंगन करो । तथा सिंधुराज, सोमदत्त और भूरिश्रवाका भी आलिंगन करो ॥ ४४ ॥

तथा पूर्वगतानन्यान्स्वर्गे पार्थिवसत्तमान् ।
अस्मद्वाक्यात्परिष्वज्य पृच्छेथास्त्वमनामयम् ॥ ४५ ॥

जो राजे महाराजे पहले स्वर्ग चले बस हैं उन्हें भी हमारे कथनसे आलिंगन देकर तुम उनसे उनके कुशलके बारेमें प्रश्न पूछो ॥ ४५ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजा भग्नसक्थमचेतसम् ।
अश्वत्थामा समुद्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

यों कहकर जांघ टूटे राजाको बेसुध देखकर अश्वत्थामा नीचेका वचन बोला ॥ ४६ ॥

दुर्योधन जीवसि चेद्वाचं श्रोत्रसुखां शृणु ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो वयम् ॥ ४७ ॥

हे महाराज दुर्योधन ! अगर तुम जीवित हो तो कानोंको सुख पहुंचानेवाली यह मेरी वाणी सुनो । पांडवोंमेंसे सात और धृतराष्ट्रके अनुयायियोंमेंसे हम तीन बचे हैं ॥ ४७ ॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः ।
अहं च कृतवर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ४८ ॥

वे पांच भाई, श्रीकृष्ण तथा सात्यकि; और मैं, कृतवर्मा तथा शारद्वत कृपाचार्य ॥ ४८ ॥

द्रौपदेया हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
पाञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्यशेषं च भारत ॥ ४९ ॥

द्रौपदीके सभी पुत्र तथा धृष्टद्युम्नके सभी पुत्र मारे जा चुके हैं । और हे भारत ! सभी पाञ्चाल और बचे हुए मत्स्यदेशीय भी मारे गये हैं ॥ ४९ ॥

कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि पाण्डवाः ।
सौप्तिके शिबिरं तेषां हतं सनरवाहनम् ॥ ५० ॥

किये कर्मका प्रतिशोध देखो, अब पांडव हतपुत्र बन गये हैं । उनका सारा शिबिर सुप्तावस्थामें मनुष्यों और वाहनोंके सहित मारा गया है ॥ ५० ॥

मया च पापकर्मासौ धृष्टद्युम्नो महीपते ।
प्रविश्य शिबिरं रात्रौ पशुमारेण मारितः ॥ ५१ ॥

महाराज ! उस पापकर्मा धृष्टद्युम्नको मैंने शिबिरमें रातको घूसकर जैसे पशुको मारा जाता है, वैसे मार दिया ॥ ५१ ॥

दुर्योधनस्तु तां वाचं निशम्य मनसः प्रियाम् ।
प्रतिलभ्य पुनश्चेत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५२ ॥

मनको प्यारी लगनेवाली वह वाणी सुनकर दुर्योधन फिर होशमें आया और यह बचन बोला ॥ ५२ ॥

न मेऽकरोत्तद्गाङ्गेयो न कर्णो न च ते पिता ।
यत्त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतम् ॥ ५३ ॥

हे अश्वत्थामन् ! आज तुमने कृपाचार्य और कृतवर्मांकी सहायतासे मेरा जो प्रिय कार्य किया है वह मेरे लिये भीष्मजीने, या कर्णने या तुम्हारे पिताजीने भी नहीं किया था ॥ ५३ ॥

स चेत्सेनापतिः क्षुद्रो हतः सार्धं शिखण्डिना ।
तेन मन्ये मघवता सममात्मानमद्य वै ॥ ५४ ॥

अगर वह क्षुद्र सेनापति शिखण्डीके साथ मारा गया हो तो मैं आज अपनेको इंद्र समान समझता हूं ॥ ५४ ॥

स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः सङ्गमः पुनः ।
इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं स कुरुराजो महामनाः ।
प्राणानुदसृजद्वीरः सुहृदां शोकमादधत् ॥ ५५ ॥

'तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा भला हो । फिर हमारा मिलन स्वर्गमें होगा ।' इतना कहकर वह महामना कौरवराज दुर्योधन स्तब्ध हुआ । उसने प्राण छोड दिये और मित्रोंको शोक धारण करवाया ॥ ५५ ॥

×

तथेति ते परिष्वक्ताः परिष्वज्य च तं नृपम् ।
पुनः पुनः प्रेक्षमाणाः स्वकानारुरुहू रथान् ॥ ५६ ॥

फिर उन्होंने ' अच्छा, ठीक है ' कहकर उसका आलिंगन किया । और आलिंगनके बाद उस राजाकी ओर बार बार देखते हुए वे अपने अपने रथोंमें जा आरूढ हुए ॥ ५६ ॥

इत्येवं तव पुत्रस्य निशम्य करुणां गिरम् ।
प्रत्यूषकाले शोकार्तः प्राधावं नगरं प्रति ॥ ५७ ॥

इस प्रकार तुम्हारे पुत्रकी करुण वाणी सुनकर मैं शोकसे पीडित होकर प्रभातकालमें नगरकी ओर दौड गया ॥ ५७ ॥

तव पुत्रे गते स्वर्गं शोकार्तस्य ममानघ ।
ऋषिदत्तं प्रनष्टं तद्दिव्यदर्शित्वमद्य वै ॥ ५८ ॥

महाराज ! तुम्हारे पुत्रके स्वर्गवासके बाद मैं शोकसे पीडित हुआ और ऋषिकी दी हुई वह मेरी दिव्य दृष्टि भी आज नष्ट हो गयी ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति श्रुत्वा स नृपतिः पुत्रज्ञातिवधं तदा ।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च ततश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ समाप्तं सौप्तिकपर्व ॥ ५१५ ॥

वैशम्पायन बोले– इस प्रकार पुत्र और ज्ञातिके वधका समाचार सुनकर उस राजाने दीर्घ और उष्ण निःश्वास छोडा और फिर चिन्तामग्न हो गया ॥ ५९ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें नववां अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ सौप्तिकपर्व समाप्त ॥ ५१५ ॥

: १० :

वैशम्पायन उवाच

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः ।
शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उस रातके बीत जानेके बाद धृष्टद्युम्नके सारथिने रातको सौप्तिकमें जो हत्याकांड हुआ वह धर्मराजको कह सुनाया ॥ १ ॥

द्रौपदेया महाराज द्रुपदस्यात्मजैः सह ।
प्रमत्ता निशि विश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके ॥ २ ॥

हे महाराज ! द्रौपदीके पुत्र द्रुपदपुत्रोंके साथ रात्रिके समय अपने शिबिरमें विश्वस्त हो असावधानीसे सो रहे थे ॥ २ ॥

कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च ।
अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि ॥ ३ ॥

रातको क्रूर कृतवर्माने, गौतमगोत्री कृपने और पापी अश्वत्थामाने तुम्हारे शिबिरका संहार किया ॥ ३ ॥

एतैर्नरगजाश्वानां प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
सहस्राणि निकृन्तद्भिर्निःशेषं ते बलं कृतम् ॥ ४ ॥

इन्होंने प्रास, शक्ति, परश्वध आदि शस्त्रोंसे हजारों मनुष्यों, हाथियों और घोडोंको मारकर तुम्हारी सारी सेना निःशेष कर डाली ॥ ४ ॥

छिद्यमानस्य महतो वनस्येव परश्वधैः ।
शुश्रुवे सुमहाञ्शब्दो बलस्य तव भारत ॥ ५ ॥

हे भारत! परश्वधों–कुल्हाडीसे बडे वनको तोडते समय जैसे बहुत बडी आवाज आती है वैसी तुम्हारे सैन्यकी आवाज सुनाई दे रही थी ॥ ५ ॥

अहमेकोऽवशिष्टस्तु तस्मात्सैन्यान्महीपते ।
मुक्तः कथंचिद्धर्मात्मन्व्यग्रस्य कृतवर्मणः ॥ ६ ॥

हे महात्मा धर्मात्मन्! उस सैन्यमेंसे मैं संहारव्यग्र कृतवर्माके सामनेसे किसी तरह मुक्त हुआ, इसलिये बाकी रहा हूं ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वाक्यमशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
पपात मह्यां दुर्धर्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ७ ॥

वह अशुभ वाक्य सुनकर पराक्रमी कुंतीपुत्र युधिष्ठिर पुत्रशोकसे व्यग्र हो भूमिपर गिर पडे ॥ ७ ॥

तं पतन्तमभिक्रम्य परिजग्राह सात्यकिः ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ८ ॥

उन्हें गिरते देखकर सात्यकिने तथा भीमसेन, अर्जुन और माद्रीके पुत्रोंने उनको संभाला ॥ ८ ॥

लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया गिरा ।
जित्वा शत्रूञ्जितः पश्चात्पर्यदेवयदातुरः ॥ ९ ॥

होशमें आकर कुंतीपुत्र युधिष्ठिर शोकविह्वल शब्दोंसे पश्चात्ताप करने लगे । क्यों कि वे शत्रुओंको जीतकर भी स्वयं हार गये थे ॥ ९ ॥

दुर्विदा गतिरर्थानामपि ये दिव्यचक्षुषः ।
जीयमाना जयन्त्यन्ये जयमाना वयं जिताः ॥ १० ॥

होनहारकी गति दिव्य दृष्टिवालोंके लिये भी दुर्ज्ञेय होती है। जो हारे गये थे वे शत्रु विजयी हो रहे हैं और जो हम विजयी थे, पराजित हुए हैं ॥ १० ॥

हत्वा भ्रातॄन्वयस्यांश्च पितॄन्पुत्रान्सुहृद्गणान् ।
बन्धूनमात्यान्पौत्रांश्च जित्वा सर्वाञ्जिता वयम् ॥ ११ ॥

भाइयों, मित्रों, पितरों, पुत्रों, मित्रगणों, बन्धुओं, अमात्यों, पौत्रों इन सबको मारकर और जीतकर भी हम पराजित हुए हैं ॥ ११ ॥

अनर्थो ह्यर्थसंकाशस्तथार्थोऽनर्थदर्शनः ।
जयोऽयमजयाकारो जयस्तस्मात्पराजयः ॥ १२ ॥

अनर्थ अर्थ जैसा दीख रहा है और अर्थ अनर्थके समान दिखाई दे रहा है। यह हमारी विजय अजयाकार दीख रही है, इसलिये हमारी विजय ही पराजय समझनी चाहिये ॥१२॥

यं जित्वा तप्यते पश्चादापन्न इव दुर्मतिः ।
कथं मन्येत विजयं ततो जिततरः परैः ॥ १३ ॥

जिसे जीतनेके बाद पछतावा होता है, जैसे आपत्तिमें पडनेपर मूर्ख और दुष्टको होता है वह विजय कैसे मानी जा सकती है? उसे तो शत्रुओंसे बुरी तरह पराजित हुआ समझना चाहिये ॥ १३ ॥

येषामर्थाय पापस्य धिग्जयस्य सुहृद्वधे ।
निर्जितैरप्रमत्तैर्हि विजिता जितकाशिनः ॥ १४ ॥

धिक्कारपात्र पाप जय जिनके लिये हमने प्राप्त की, उन मित्रों और बांधवोंके वधके बाद योंही कहना पडेगा कि वे पराजित होकर भी सावधान थे इसलिये हम विजयशालियोंकी उन्होंने पराजय की ॥ १४ ॥

कर्णिनालीकदंष्ट्रस्य खड्गजिह्वस्य संयुगे ।
चापव्यात्तस्य रौद्रस्य ज्यातलस्वननादिनः ॥ १५ ॥

युद्धमें कर्णि और नालीक ही जिसकी दंष्ट्राएं थीं, खड्ग ही जीभ, खींचा हुआ धनुष कराल मुंह, धनुषकी रस्सीकी आवाज ही दहाड, ॥ १५ ॥

क्रुद्धस्य नरसिंहस्य संग्रामेष्वपलायिनः ।
ये व्यमुच्यन्त कर्णस्य प्रमादात्त इमे हताः ॥ १६ ॥

ऐसा, संग्राममेंसे कभी न भागनेवाला क्रुद्ध नरसिंह जो कर्ण उसकी अनवधानताके कारण जो बचे हुए थे वे अब मर गये ॥ १६ ॥

रथह्रदं शरवर्षोर्मिमन्तं रत्नाचितं वाहनराजियुक्तम् ।
शक्त्यृष्टिमीनध्वजनागनक्रं शरासनावर्तमहेषुफेनम् ॥ १७॥

रथरूप जलाशय, बाणवृष्टिकी लहरोंवाला, रत्नोंसे सुशोभित, वाहनयुक्त, जिसमें शक्ति और ऋष्टिरूप मछलियां थीं, ध्वजरूप नाग और नक्र थे, धनुषकी हिलचालका फेन जिसमें था ॥ १७ ॥

संग्रामचन्द्रोदयवेगवेलं द्रोणार्णवं ज्यातलनेमिघोषम् ।
ये तेरुरुच्चावचशस्त्रनौभिस्ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ १८॥

संग्रामरूप चंद्रमाके उदयसे जिसका वेग और वेला बढती थी, जो धनुष टंकाररूप घोष करता था ऐसा जो द्रोणरूप समुद्र छोटे-बडे शस्त्रोंकी नावोंपर सवार होकर जिन राजपुत्रोंने पार किया वे केवल भूलके कारण मारे गये ॥ १८ ॥

न हि प्रमादात्परमोऽस्ति कश्चिद्वधो नराणामिह जीवलोके ।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात्त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति ॥ १९ ॥

इस जीवलोकमें असावधानताकी अपेक्षा अधिक बडा वध मनुष्योंके लिये और कुछ नहीं हो सकता । असावधान मनुष्यको अर्थ चारों तरफसे त्याग देते हैं और अनर्थ आ मिलते हैं ॥ १९ ॥

ध्वजोत्तमाग्रोच्छ्रितधूमकेतुं शरार्चिषं कोपमहासमीरम् ।
महाधनुर्ज्यातलनेमिघोषं तनुत्रनानाविधशस्त्रहोमम् ॥ २० ॥

धूमकेतुकी तरह जिसके उत्तम ध्वजका अग्र खूब ऊँचाईपर फहरता था, बाणरूप जिसकी ज्वालाएं थीं, क्रोधरूप महासमीर—पवन जिसके साथ था, महाधनुषकी ज्या और रथचक्रकी अराओंकी आवाजवाले जिनके कवचपर नानाविध शस्त्रोंका होम हो रहा था ऐसे ॥ २० ॥

महाचमूकक्षवराभिपन्नं महाहवे भीष्ममहादवाग्निम् ।
ये सेहुरात्तायतशस्त्रवेगं ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ २१ ॥

बडी सेनाके कक्षको जलानेपर तुले हुए, दवाग्नितुल्य भीष्मजीको जिनके शस्त्रोंका वेग बहुत था, महायुद्धमें जिन्होंने सहन किया वे राजपुत्र केवल भूल असावधानीके कारण मारे गये ॥ २१ ॥

न हि प्रमत्तेन नरेण लभ्या विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा ।
पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रून्सर्वान्महेन्द्रं सुखमेधमानम् ॥ २२ ॥

असावधान मनुष्यको विद्या, तप, संपत्ति अथवा विपुल यश इनमेंसे किसीकी प्राप्ति नहीं हो सकती । देखो, इंद्र सावधान रहकर अपने सारे शत्रुओंको मारकर सुखसे रहता है ॥२२॥

इन्द्रोपमान्पार्थिवपुत्रपौत्रान्पश्याविशेषेण हतान्प्रमादात् ।
तीर्त्वा समुद्रं वणिजः समृद्धाः सन्नाः कुनद्यामिव हेलमानाः ।
अमर्षितैर्ये निहताः शयाना निःसंशयं ते त्रिदिवं प्रपन्नाः ॥ २३ ॥

देखो, इन्द्रतुल्य राजपुत्र और पौर भूलके कारण एक ही तरहसे मारे गये। बडे समृद्ध वणिज समुद्रको पार करके एक छोटीसी नदीमें डूब मर जाएं वैसी यह घटना हुई है । असहिष्णु शत्रुओं द्वारा जो सुप्तावस्थामें मारे गये हैं वे निःसंदेह स्वर्ग पहुंच गये हैं ॥ २३ ॥

कृष्णां नु शोचामि कथं न साध्वीं शोकार्णवे साद्य विनङ्क्ष्यतीति ।
भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च हतान्निशम्य पाञ्चालराजं पितरं च वृद्धम् ।
ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां सा शेष्यते शोककृशाङ्गयष्टिः ॥ २४ ॥

मैं साध्वी द्रौपदीके बारेमें बिना शोक किये कैसे रहूंगा ? वह तो आज शोकसागरमें डूब मर जायेगी । भाइयों, पुत्रों तथा वृद्ध पिताकी मृत्यु सुनकर शोकसे कृश शरीरवाली वह बेसुध हो जमीनपर गिरकर निश्चय ही सो जायेगी ॥ २४ ॥

तच्छोकजं दुःखमपारयन्ती कथं भविष्यत्युचिता सुखानाम् ।
पुत्रक्षयभ्रातृवधप्रणुन्ना प्रदह्यमानेव हुताशनेन ॥ २५ ॥

उस शोकसे पैदा हुए दुःखको पार न कर सकनेवाली, पुत्रोंके विनाशसे और भाइयोंके वधसे पीडित द्रौपदी मानो अग्निसे जल रही हो सुखानुभव करनेको कैसे योग्य रहेगी ? ॥२५॥

इत्येवमार्तः परिदेवयन्स राजा कुरूणां नकुलं बभाषे ।
गच्छानयैनामिह मन्दभाग्यां समातृपक्षामिति राजपुत्रीम् ॥ २६ ॥

इस तरह पीडित होकर दुःख करते हुए पांडवोंके राजाने नकुलसे कहा– ' जाओ, मातृपक्ष-सहित उस हतभागिनी राजपुत्रीको यहां ले आओ ' ॥ २६ ॥

माद्रीसुतस्तत्परिगृह्य वाक्यं धर्मेण धर्मप्रतिमस्य राज्ञः ।
ययौ रथेनालयमाशु देव्याः पाञ्चालराजस्य च यत्र दाराः ॥ २७ ॥

धर्माचारके कारण साक्षात् धर्मतुल्य राजाके उस वचनको ग्रहण करके माद्रीपुत्र नकुल रथसे देवी द्रौपदीके मंदिर जहां पांचालराजकी स्त्रियां रहती थीं, शीघ्र चला गया ॥ २७ ॥

प्रस्थाप्य माद्रीसुतमाजमीढः शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः ।
रोरूयमाणः प्रययौ सुतानामायोधनं भूतगणानुकीर्णम् ॥ २८ ॥

नकुलको वहां भेजकर शोकमग्न मित्रोंके साथ पुत्रोंके शिबिरकी ओर जो भूतगणोंसे व्याप्त था रोते हुए निकल पडे ॥ २८ ॥

स तत्प्रविश्याशिवमुग्ररूपं ददर्श पुत्रान्सुहृदः सखींश्च ।
भूमौ शयानान्रुधिरार्द्रगात्रान्विभिन्नभग्नापहृतोत्तमाङ्गान् ॥ २९ ॥

उस अशिव और उग्र रूप शिविरमें प्रवेश करके उन्होंने देखा कि उनके पुत्र, हितचिंतक तथा मित्र, जिनके शरीर रुधिरसे विलिप्त थे और शिर फूटे, तूटे या अलग हुए थे, भूमिपर चिरनिद्रा ले रहे थे ॥ २९ ॥

स तांस्तु दृष्ट्वा भृशमार्तरूपो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
उच्चैः प्रचुक्रोश च कौरवाग्र्यः पपात चोर्व्यां सगणो विसंज्ञः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ५४५ ॥

वे धर्मनिष्ठोंमें श्रेष्ठ, कुरुकुलके अग्रणी युधिष्ठिर उन्हें देख बहुत दुःखी होकर बडा आक्रोश करने लगे और अपने मित्र भाइयोंके साथ बेसुध होकर भूमिपर गिर पडे ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वका दसवां अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ५४५ ॥

: ११ :

वैशम्पायन उवाच

स दृष्ट्वा निहतान्संख्ये पुत्रान्भ्रातॄन्सखींस्तथा ।
महादुःखपरीतात्मा बभूव जनमेजय ॥ १ ॥

वैशंपायन बोले— हे जनमेजय ! युद्धमें पुत्रों, भाइयों और मित्रोंको मरे हुए देखकर वे युधिष्ठिर महादुःखसे पीडित हो गये ॥ १ ॥

ततस्तस्य महाञ्शोकः प्रादुरासीन्महात्मनः ।
स्मरतः पुत्रपौत्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य ह ॥ २ ॥

फिर अपने पुत्रों, पौत्रों, भाइयों तथा अन्य संबंधितोंका दुःखपूर्वक स्मरण करते हुए उन महात्माको बडा शोक हुआ ॥ २ ॥

तमश्रुपरिपूर्णाक्षं वेपमानमचेतसम् ।
सुहृदो भृशसंविग्नाः सान्त्वयांचक्रिरे तदा ॥ ३ ॥

उस समय उनकी आंखें पूर्ण भरी थीं, वे कांप रहे थे और अचेत हो रहे थे । तब उनके सुहृद घबराकर उन्हें सान्त्वना देने लगे ॥ ३ ॥

ततस्तस्मिन्क्षणे काल्ये रथेनादित्यवर्चसा ।
नकुलः कृष्णया सार्धमुपायात्परमार्तया ॥ ४ ॥

तदनंतर उस भयानक क्षणमें सूर्यसदृश रथमें बैठकर परम दुःखित द्रौपदीके साथ नकुल वहां आ पहुंचा ॥ ४ ॥

उपप्लव्यगता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
तदा विनाशं पुत्राणां सर्वेषां व्यथिताभवत् ॥ ५ ॥

द्रौपदी जब शिबिरमें आगई तब वह पुत्रों तथा अन्य सबके विनाशका बहुत अप्रिय समाचार सुनकर अतीव दुःखी हो गई ॥ ५ ॥

कम्पमानेव कदली वातेनाभिसमीरिता ।
कृष्णा राजनमासाद्य शोकार्ता न्यपतद्भुवि ॥ ६ ॥

बायुवेगसे जर्जर होकर कांपता हुआ केलेका वृक्ष जैसे गिर पडता है उस प्रकार शोकपीडित द्रौपदी राजाके पास जाकर भूमिपर गिर पडी ॥ ६ ॥

बभूव वदनं तस्याः सहसा शोककर्शितम् ।
फुल्लपद्मपलाशाक्ष्यास्तमोध्वस्त इवांशुमान् ॥ ७ ॥

खिले हुए कलमकी पंखुडियोंके समान आंखोंवाली द्रौपदीका मुख, जैसे कि केतुके ग्रसनेपर सूर्य वैसे एकदम शोकके कारण पीला पड गया ॥ ७ ॥

ततस्तां पतितां दृष्ट्वा संरम्भी सत्यविक्रमः ।
बाहुभ्यां परिजग्राह समुपेत्य वृकोदरः ॥ ८ ॥

फिर उसे गिरती देखकर सत्यपराक्रमी भीमसेनने शीघ्र उसके निकट जाकर अपने दोनों बाहुओंसे उसे संभाल लिया ॥ ८ ॥

सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी ।
रुदती पाण्डवं कृष्णा सहभ्रातरमब्रवीत् ॥ ९ ॥

जब उस भामिनी द्रौपदीको भीमसेनने सान्त्वना दी तब वह रोती हुई भाइयोंके साथ पाण्डव युधिष्ठिरसे बोली ॥ ९ ॥

दिष्ट्या राजंस्त्वमद्येमामखिलां भोक्ष्यसे महीम् ।
आत्मजान्क्षत्रधर्मेण संप्रदाय यमाय वै ॥ १० ॥

महाराज ! आज तुम क्षत्रिय धर्मके अनुसार अपने पुत्रोंको यमराजको समर्पित करके बडे आनंदसे अखिल पृथ्वीका उपभोग कर सकोगे ॥ १० ॥

दिष्ट्या त्वं पार्थ कुशली मत्तमातङ्गगामिनम् ।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां सौभद्रं न स्मरिष्यसि ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! तुम भाग्यसे कृतार्थ हुए, अब मत्त हाथीके समान चलनेवाली पूरी पृथ्वीको प्राप्त करके तुम अभिमन्युका स्मरण नहीं करोगे ॥ ११ ॥

आत्मजांस्तेन धर्मेण श्रुत्वा शूरान्निपातितान् ।
उपप्लव्ये मया सार्धं दिष्ट्या त्वं न स्मरिष्यसि　　॥ १२ ॥

शिविरमें सो रहे शूर पुत्रोंके मरण सुनकर हे अर्जुन, मेरे साथ रहते हुए तुम्हें अब उन पुत्रोंकी याद नहीं आवेगी ॥ १२ ॥

प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा द्रौणिना पापकर्मणा ।
शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाशयम्　　॥ १३ ॥

हे पार्थ ! पापकर्मा अश्वत्थामाके हाथों सोरहे पुत्रोंका वध सुनकर शोक मुझे जला रहा है, जैसे अग्नि घर जलाती है ॥ १३ ॥

तस्य पापकृतो द्रौणेर्न चेदद्य त्वया मृधे ।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम्　　॥ १४ ॥

उस पापकर्मा द्रोणपुत्रका जीवित आज युद्धमें तुम उसके अनुयायियोंके साथ अगर पराक्रमसे समाप्त न करोगे ॥ १४ ॥

इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः ।
न चेत्फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः　　॥ १५ ॥

और उसे किये पापकर्मका फल न मिलनेवाला हो तो, हे पाण्डवों ! तुम खूब समझ लो कि मैं यहीं उपोषण करनेके लिये बैठूंगी ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततः कृष्णा पाण्डवं प्रत्युपाविशत् ।
युधिष्ठिरं याज्ञसेनी धर्मराजं यशस्विनी　　॥ १६ ॥

इतना कहकर यशस्विनी याज्ञसेनी द्रौपदी, पाण्डुत्र धर्मराज युधिष्ठिरके निकट बैठ गयी ॥ १६ ॥

दृष्ट्वोपविष्टां राजर्षिः पाण्डवो महिषीं प्रियाम् ।
प्रत्युवाच स धर्मात्मा द्रौपदीं चारुदर्शनाम्　　॥ १७ ॥

राजर्षि युधिष्ठिर धर्मात्माने अपनी प्रिय राज्ञी सुंदरी द्रौपदीको बैठी देखकर उससे कहा ॥ १७ ॥

धर्म्यं धर्मेण धर्मज्ञे प्राप्तास्ते निधनं शुभे ।
पुत्रास्ते भ्रातरश्चैव तान्न शोचितुमर्हसि　　॥ १८ ॥

हे धर्मज्ञे, शुभे ! तुम्हारे वे पुत्र और भाई धर्मसे धर्मयुक्त मरण पाकर चले गये हैं, अब उनके लिये तुम्हें रोना नहीं चाहिये ॥ १८ ॥

द्रोणपुत्रः स कल्याणि वनं दूरमितो गतः ।
तस्य त्वं पातनं संख्ये कथं ज्ञास्यसि शोभने ॥ १९ ॥

हे कल्याणि ! वह अश्वत्थामा यहांसे बहुत दूर अरण्यमें चला गया होगा। हे सुंदरी ! युद्धमें यद्यपि वह मारा जाय तो भी तुम कैसे जान सकोगी ? ॥ १९ ॥

द्रौपद्युवाच

द्रोणपुत्रस्य सहजो मणिः शिरसि मे श्रुतः ।
निहत्य संख्ये तं पापं पश्येयं मणिमाहृतम् ।
राजञ्शिरसि तं कृत्वा जीवेयमिति मे मतिः ॥ २० ॥

द्रौपदी बोली– महाराज ! मैंने सुना है कि जन्मसे ही अश्वत्थामाके सिरपर एक मणि है । युद्धमें उस पापीको मारकर वह मणि लायी जाय तो मैं देख सकूंगी और मेरा विचार है कि उस मणि को सिरपर रखकर जीवित रहूंगी ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा पाण्डवं कृष्णा राजानं चारुदर्शना ।
भीमसेनमथाभ्येत्य कुपित वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले– पाण्डवराजसे इतना कहकर सुंदरी द्रौपदी भीमसेनके पास आकर कुपित होकर बोली ॥ २१ ॥

त्रातुमर्हसि मां भीम क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ।
जहि तं पापकर्माणं शम्बरं मघवानिव ।
न हि ते विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ॥ २२ ॥

हे भीमसेन ! अब क्षत्रधर्मका स्मरण करके तुम्हींको मेरी रक्षा करनी चाहिये । जैसे इन्द्रने शंबरका वध किया वैसे तुम उसका वध करो, क्योंकि पराक्रममें तुम्हारी बराबरी करनेवाला कोई पुरुष विश्वमें नहीं है ॥ २२ ॥

श्रुतं तत्सर्वलोकेषु परमव्यसने यथा ।
द्वीपोऽभूस्त्वं हि पार्थानां नगरे वारणावते ।
हिडिम्बदर्शने चैव तथा त्वमभवो गतिः ॥ २३ ॥

जगत्के सब लोगोंको यह विदित है कि वारणावत नगरमें सब पांडव बडे संकटमें आ फंसे थे तब तुम्हीं उनके रक्षक बने थे । तथा हिडिंबसे भिडंत हुई तब भी तुम्हीं उनके आधार बन गये थे ॥ २३ ॥

तथा विराटनगरे कीचकेन भृशार्दिताम् ।
मामप्युद्धृतवान्कृच्छ्रात्पौलोमीं मघवानिव ॥ २४ ॥

उसी प्रकार विराटनगरीमें कीचकने मुझे बहुत सताया था तब उस संकटमेंसे जैसे इंद्र पौलोमीका उद्धार करता है वैसे ही तुम्हींने मेराभी उद्धार किया था ॥ २४ ॥

यथैतान्यकृथाः पार्थ महाकर्माणि वै पुरा ।
तथा द्रौणिममित्रघ्न विनिहत्य सुखी भव ॥ २५ ॥

हे शत्रुओंका नाश करनेवाले पार्थ वीर ! जिस प्रकार तुमने ये महाकर्म पहले किये थे उसी तरह अश्वत्थामाको मारकर तुम सुखी हो जाओ ॥ २५ ॥

तस्या बहुविधं दुःखान्निशम्य परिदेवितम् ।
नामर्षयत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः ॥ २६ ॥

इस प्रकार दुःखके कारण दीन भाषण द्रौपदीसे सुनकर वह महाबलवान् कुंतीपुत्र भीमसेन शान्त नहीं रह सका ॥ २६ ॥

स काञ्चनविचित्राङ्गमारुरोह महारथम् ।
आदाय रुचिरं चित्रं समार्गणगुणं धनुः ॥ २७ ॥

वह रंगबिरंगे सुवर्णमय महारथपर अद्भुत, सुंदर बाण और रस्सी सहित धनुष लेकर सवार हो गया ॥ २७ ॥

नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे वृतः ।
विस्फार्य सशरं चापं तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ २८ ॥

अश्वत्थामाके वधके लिये नियुक्त भीमने नकुलको सारथि बनाकर, बाणसहित धनुषको खींचकर शीघ्र घोडोंको चलनेकी सूचना दी ॥ २८ ॥

ते हयाः पुरुषव्याघ्र चोदिता वातरंहसः ।
वेगेन त्वरिता जग्मुर्हरयः शीघ्रगामिनः ॥ २९ ॥

हे पुरुषव्याघ्र ! वायुवेगसे शीघ्रातिशीघ्र जानेवाले वे घोडे हांकनेपर त्वरित वेगसे दौडने लगे ॥ २९ ॥

शिबिरात्स्वाद्गृहीत्वा स रथस्य पदमच्युतः ।
द्रोणपुत्ररथस्याशु ययौ मार्गेण वीर्यवान् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ५७५ ॥

वह अपराजित वीर्यवान् भीम अपने शिबिरसे निकलकर अश्वत्थामाके रथके मार्गसे शीघ्र चला गया ॥ ३० ॥

महाभारतके सौप्तिकपर्वमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ५७५ ॥

: १२ :

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे यदूनामृषभस्ततः ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशंपायन बोले– उस पराक्रमी भीमसेनके जानेके बाद जिनकी आंखें कमल जैसी थीं वे यादवोंके श्रेष्ठ श्रीकृष्ण कुंतीपुत्र युधिष्ठिरसे बोले ॥ १ ॥

एष पाण्डव ते भ्राता पुत्रशोकमपारयन् ।
जिघांसुर्द्रौणिमाक्रन्दे याति भारत भारतः ॥ २ ॥

हे पांडुपुत्र ! इस तुम्हारे भाईको पुत्रशोक बहुत असह्य हो रहा है; सो हे भारत ! वह इस आक्रंदनमें अश्वत्थामाको मारनेकी इच्छासे जा रहा है ॥ २ ॥

भीमः प्रियस्ते सर्वेभ्यो भ्रातृभ्यो भरतर्षभ ।
तं कृच्छ्रगतमद्य त्वं कस्मान्नाभ्यवपद्यसे ॥ ३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! यह भीम तुम्हें सब भाइयोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय है । वह आज संकटमें गिरा हुआ है, तो भी आप उसकी रक्षाके लिये क्यों नहीं दौडते हो ? ॥ ३ ॥

यत्तदाचष्ट पुत्राय द्रोणः परपुरञ्जयः ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेद्यत्पृथिवीमपि ॥ ४ ॥

शत्रुकी नगरीको जीतनेवाले द्रोणाचार्यने जो ब्रह्मशिर नामक अस्त्र अपने पुत्रको दिया है वह पृथ्वीको जला सकता है ॥ ४ ॥

तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।
प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥ ५ ॥

सब धनुर्धारियोंके अग्रणी, महात्मा, महाभाग द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर वह अस्त्र अर्जुनको दिया है ॥ ५ ॥

तत्पुत्रोऽस्यैवमेवैनमन्वयाचदमर्षणः ।
ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव ॥ ६ ॥

उस समय उनके असहिष्णु पुत्र अश्वत्थामाने भी पितासे उसकी याचना की तब कुछ अप्रसन्नसे होकर वे पुत्रसे बोले ॥ ६ ॥

विदितं चापलं ह्यासीदात्मजस्य महात्मनः ।
सर्वधर्मविदाचार्यो नान्विषत्सततं सुतम् ॥ ७ ॥

उन महात्माको अपने पुत्रका चापल विदित था । इस लिये सब धर्म जाननेवाले वे आचार्य अपने पुत्रको खास चाहते नहीं थे ॥ ७ ॥

परमापद्गतेनापि न स्म तात त्वया रणे ।
इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु विशेषतः　　　　॥ ८ ॥

परंतु ' हे तात ! तुम यद्यपि आपत्तिमें पड गये तो भी युद्धमें विशेष करके मनुष्योंपर इस अस्त्रका प्रयोग कभी न करो ' ॥ ८ ॥

इत्युक्तवान्गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान् ।
न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ　　　　॥ ९ ॥

गुरु द्रोणाचार्य पुत्रसे यों कहकर बादमें बोले– ' हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कभी सज्जनोंके मार्गमें रोडे मत अटकाओ ' ॥ ९ ॥

स तदाज्ञाय दुष्टात्मा पितुर्वचनमप्रियम् ।
निराशः सर्वकल्याणैः शोचन्पर्यपतन्महीम्　　　　॥ १० ॥

उस समय पिताके वचनको अप्रिय समझकर वह दुष्टात्मा सब तरहके कल्याणोंके बारेमें निराश हो शोक करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ १० ॥

ततस्तदा कुरुश्रेष्ठ वनस्थे त्वयि भारत ।
अवसद्द्वारकामेत्य वृष्णिभिः परमार्चितः　　　　॥ ११ ॥

उसके बाद हे कुरुश्रेष्ठ ! जब तुम अरण्यमें रहा करते थे तब वह द्वारका आकर यादवोंसे आदर प्राप्त करके रह गया था ॥ ११ ॥

स कदाचित्समुद्रान्ते वसन्द्वारवतीमनु ।
एक एकं समागम्य मामुवाच हसन्निव　　　　॥ १२ ॥

वह एक दिन द्वारकाके निकट समुद्रके तटपर एकान्तमें अकेला ही मुझसे मिलकर जरा हंसता हुआ सा मुझसे बोला ॥ १२ ॥

यत्तदुग्रं तपः कृष्ण चरन्सत्यपराक्रमः ।
अगस्त्याद्भारताचार्यः प्रत्यपद्यत मे पिता　　　　॥ १३ ॥

हे कृष्ण ! भारतोंके आचार्य ! मेरे सत्यपराक्रमी पिताने उग्र तपश्चर्या करके अगस्त्यसे जो प्राप्त किया था ॥ १३ ॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम देवगन्धर्वपूजितम् ।
तदद्य मयि दाशार्ह यथा पितरि मे तथा　　　　॥ १४ ॥

वह देवों और गन्धर्वोंद्वारा पूजित ब्रह्मशिर नामक अस्त्र, हे श्रीकृष्ण ! जैसे मेरे पितामें है वैसा ही मुझमें भी है ॥ १४ ॥

अस्मत्तस्तदुपादाय दिव्यमस्त्रं यदूत्तम ।
ममाप्यस्त्रं प्रयच्छ त्वं चक्रं रिपुहरं रणे ॥ १५ ॥

हे यादवश्रेष्ठ ! हमसे उस दिव्य अस्त्रका स्वीकार करके युद्धमें शत्रुका नाश करनेवाला तुम्हारा अस्त्र जो चक्र है, वह मुझे दे दो ॥ १५ ॥

स राजन्प्रीयमाणेन मयाप्युक्तः कृताञ्जलिः ।
याचमानः प्रयत्नेन मत्तोऽस्त्रं भरतर्षभ ॥ १६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! हाथ जोडकर, मुझसे प्रयत्नपूर्वक अस्त्र मांगनेवाले उससे प्रसन्न होकर मैंने भी कहा ॥ १६ ॥

देवदानवगन्धर्वमनुष्यपतगोरगाः ।
न समा मम वीर्यस्य शतांशेनापि पिण्डिताः ॥ १७ ॥

देव, राक्षस, गंधर्व, मनुष्य, पशु, सर्प ये सभी इकट्ठा होकर भी मेरे बलके एक शतांशकी भी बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥ १७ ॥

इदं धनुरियं शक्तिरिदं चक्रमियं गदा ।
यद्यदिच्छसि चेदस्त्रं मत्तस्तत्तद्ददानि ते ॥ १८ ॥

यह धनुष, यह शक्ति, यह चक्र, यह गदा इनमेंसे तुम जो अस्त्र लेना चाहते हो वह मैं तुम्हें दे दूँ ॥ १८ ॥

यच्छक्नोषि समुद्यन्तुं प्रयोक्तुमपि वा रणे ।
तद्गृहाण विनास्त्रेण यन्मे दातुमभीप्ससि ॥ १९ ॥

इनमेंसे जिसे तुम उठा सकोगे या युद्धमें जिसका प्रयोग कर सकोगे वह तुम मुझे जो अस्त्र देना चाहते हो उसे दिये बिना ही ले लो ॥ १९ ॥

स सुनाभं सहस्रारं वज्रनाभमयस्मयम् ।
वव्रे चक्रं महाबाहो स्पर्धमानो मया सह ॥ २० ॥

हे महाबाहो ! वह मुझसे स्पर्धा कर रहा था, इसलिये उसने वह सुंदर और वज्र जैसी नाभीवाला चमकदार हजार अराओंवाला चक्र पसंद किया ॥ २० ॥

गृहाण चक्रमित्युक्तो मया तु तदनन्तरम् ।
जग्राहोपेत्य सहसा चक्रं सव्येन पाणिना ।
न चैतदशकत्स्थानात्संचालयितुमच्युत ॥ २१ ॥

उसके बाद जब मैंने उससे कहा कि चक्र ले लो, तब उसने एकाएक लपककर बांयें हाथसे चक्र पकड लिया । और हे अच्युत ! वह उसे स्थानसे विचलित भी नहीं कर सका ॥ २१ ॥

अथ तद्दक्षिणेनापि ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
सर्वयत्नेन तेनापि गृह्णन्नैतदकल्पयत् ॥ २२ ॥

फिर उसने दाहिने हाथसे भी उठानेका उपक्रम किया, परंतु सब प्रकारसे यत्न करके भी उसे नहीं ले सका ॥ २२ ॥

ततः सर्वबलेनापि यच्चैतन्न शशाक सः ।
उद्धर्तुं वा चालयितुं द्रौणिः परमदुर्मनाः ।
कृत्वा यत्नं परं श्रान्तः स न्यवर्तत भारत ॥ २३ ॥

फिर संपूर्ण बलका प्रयोग करके भी जब वह उसे न उठाने या चलानेको भी समर्थ हुआ तब हे भारत ! बहुत यत्न करनेसे थका हुआ और दुःखी अश्वत्थामा निवृत्त हुआ ॥ २३ ॥

निवृत्तमथ तं तस्मादभिप्रायाद्विचेतसम् ।
अहमामन्त्र्य सुस्निग्धमश्वत्थामानमब्रुवम् ॥ २४ ॥

बादमें उस अभिप्रायको छोडकर और विमनस्क हो गये अश्वत्थामाको स्नेहपूर्वक संबोधन करके मैं उससे बोला ॥ २४ ॥

यः स देवमनुष्येषु प्रमाणं परमं गतः ।
गाण्डीवधन्वा श्वेताश्वः कपिप्रवरकेतनः ॥ २५ ॥

जिसका देवों और मनुष्योंमें बडा आदर है, जिसके ध्वजपर हनुमान हैं, जिसके घोडे सफेद हैं वह गांडीव धनुष धारण करनेवाला ॥ २५ ॥

यः साक्षाद्देवदेवेशं शितिकण्ठमुमापतिम् ।
द्वंद्वयुद्धे पराजिष्णुस्तोषयामास शङ्करम् ॥ २६ ॥

जिसने साक्षात् देवोंके देव, शितिकंठ और पार्वतीपति भगवान् शंकरको द्वन्द्व युद्धमें पराजित करनेकी जिद करके प्रसन्न किया था ॥ २६ ॥

यस्मात्प्रियतरो नास्ति ममान्यः पुरुषो भुवि ।
नादेयं यस्य मे किंचिदपि दाराः सुतास्तथा ॥ २७ ॥

इस पृथ्वीपर मुझे जिससे अधिक प्रिय दूसरा कोई पुरुष नहीं है और जिसके लिये पत्नी पुत्र आदि कुछ भी अदेय वस्तु मेरे पास नहीं है ॥ २७ ॥

तेनापि सुहृदा ब्रह्मन्पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
नोक्तपूर्वमिदं वाक्यं यत्त्वं मामभिभाषसे ॥ २८ ॥

हे ब्राह्मण ! उस मेरे मित्र और शुद्ध कर्म करनेवाले अर्जुनने भी यह बात कभी नहीं निकाली थी जो आज तुम मुझसे कह रहे हो ॥ २८ ॥

ब्रह्मचर्यं महद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्चितः ॥ २९ ॥

हिमालयके प्रदेशमें जाकर बारह वर्ष तक बडे और कठोर ब्रह्मचर्यका पालन करके तपश्चर्याके द्वारा मैंने जिसकी अर्चना की थी ॥ २९ ॥

समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत ।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥ ३० ॥

और जो तेजस्वी सनत्कुमार मेरे समान तपका आचरण करनेवाली रुक्मिणीकी कोखमें उत्पन्न हुआ कि जो मेरा प्रद्युम्ननामक पुत्र है ॥ ३० ॥

तेनाप्येतन्महद्दिव्यं चक्रमप्रतिमं मम ।
न प्रार्थितमभून्मूढ यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३१ ॥

अरे मूढ ! उसने भी मेरा यह महान्, दिव्य और अप्रतिम चक्र नहीं मांगा था जो अभी तुमने मांगा ॥ ३१ ॥

रामेणातिबलेनैतन्नोक्तपूर्वं कदाचन ।
न गदेन न साम्बेन यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३२ ॥

अति बलवान् बलभद्रने भी ऐसी बात नहीं की थी, तथा गदने या सांबने भी कभी नहीं मांगा जो अभी तुमने मांगा ॥ ३२ ॥

द्वारकावासिभिश्चान्यैर्वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
नोक्तपूर्वमिदं जातु यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३३ ॥

यह जो तुमने मांगा है वह द्वारकामें रहनेवाले अन्य वृष्णि और अन्धकवंशीय महारथोंने कभी नहीं मांगा था ॥ ३३ ॥

भारताचार्यपुत्रः सन्मानितः सर्वयादवैः ।
चक्रेण रथिनां श्रेष्ठ किं नु तात युयुत्ससे ॥ ३४ ॥

तुम भरतवंशीयोंके आचार्यके पुत्र हो इसलिये यादवोंने तुम्हारा बडा संमान किया । हे रथियोंमें श्रेष्ठ ! क्या तुम चक्रसे युद्ध करना चाहते हो ? ॥ ३४ ॥

एवमुक्तो मया द्रौणिर्मामिदं प्रत्युवाच ह ।
प्रयुज्य भवते पूजां योत्स्ये कृष्ण त्वयेत्युत ॥ ३५ ॥

मेरे यों कहनेपर अश्वत्थामाने मुझे उत्तर दिया कि हे कृष्ण ! तुम्हें पूजा प्रदान करके मैं तुमसे ही लडूंगा ॥ ३५ ॥

ततस्ते प्रार्थितं चक्रं देवदानवपूजितम् ।
अजेयः स्यामिति विभो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते　　　　॥ ३६ ॥

हे प्रभो ! मैं तुमसे सत्य कह रहा हूं कि पृथ्वीमें अजेय होनेके मनोरथसे मैंने वह तुम्हारा देवों और दानवों द्वारा पूजित चक्र मांगा था ॥ ३६ ॥

त्वत्तोऽहं दुर्लभं काममनवाप्यैव केशव ।
प्रतियास्यामि गोविन्द शिवेनाभिवदस्व माम्　　　　॥ ३७ ॥

हे केशव ! मेरी यह दुर्लभ कामना तुम्हारे द्वारा पूरी किये बिना ही मैं वापस लौटूंगा । हे गोविंद ! तुम मुझे शुभ आशीर्वाद दे दो ॥ ३७ ॥

एतत्सुनाभं वृष्णीनामृषभेण त्वया धृतम् ।
चक्रमप्रतिचक्रेण भुवि नान्योऽभिपद्यते　　　　॥ ३८ ॥

सो यह सुंदर नाभिवाला चक्र जो तुम वृष्णिप्रमुखने अपने हाथमें रख्खा है और जिसके सदृश अन्य चक्र नहीं है, उसे पृथ्वीमें दूसरा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥

एतावदुक्त्वा द्रौणिर्मां युग्यमश्वान्धनानि च ।
आदायोपययौ बालो रत्नानि विविधानि च ।　　　　॥ ३९ ॥

मुझसे यों कहकर वह मूर्ख अश्वत्थामा हमारे दिये युग्य, घोडे, धन और विविध रत्न लेकर वहांसे चल पडा ॥ ३९ ॥

स संरम्भी दुरात्मा च चपलः क्रूर एव च ।
वेद चास्त्रं ब्रह्मशिरस्तस्माद्रक्ष्यो वृकोदरः　　　　॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ६१५ ॥

वह दुष्ट उतावला, चंचल और क्रूर है तथा ब्रह्मशिर अस्त्र भी जानता है, इसलिये भीमसेनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ६१५ ॥

: १३ :

वैशंपायन उवाच

एवमुक्त्वा युधां श्रेष्ठः सर्वयादवनन्दनः ।
सर्वायुधवरोपेतमारुरोह महारथम् ।
युक्तं परमकाम्बोजैस्तुरगैर्हेममालिभिः　　　　॥ १ ॥

वैशंपायन बोले– वीरश्रेष्ठ यादवप्रिय कृष्ण यों कहकर सब अच्छे आयुधोंसे संपन्न महारथमें आरूढ हो गये, जो रथ सुवर्णमाला धारण करनेवाले और उत्तम काम्बोज देशोत्पन्न घोडोंसे युक्त था ॥ १ ॥

×

आदित्योदयवर्णस्य धुरं रथवरस्य तु ।
दक्षिणामवहत्सैन्यः सुग्रीवः सव्यतोऽवहत् ।
पार्ष्णिवाहौ तु तस्यास्तां मेघपुष्पबलाहकौ ॥ २ ॥

उस आदित्यवर्ण रथश्रेष्ठ धुराको दाहिनी तरफसे 'सैन्य' (घोडेका नाम) ढो रहा था और बांयीं तरफसे 'सुग्रीव' ढो रहा था। उस धुराके पार्ष्णिभागमें 'मेघपुष्प' और 'बलाहक' थे ॥ २ ॥

विश्वकर्मकृता दिव्या नानारत्नविभूषिता ।
उच्छ्रितेव रथे माया ध्वजयष्टिरदृश्यत ॥ ३ ॥

विश्वकर्माकी बनायी, विविध रत्नोंसे सुशोभित दिव्य ध्वजयष्टि रथपर मानो ऊंची उठी माया हो ऐसी दिखाई देनी लगी ॥ ३ ॥

वैनतेयः स्थितस्तस्यां प्रभामण्डलरश्मिवान् ।
तस्य सत्यवतः केतुर्भुजगारिरदृश्यत ॥ ४ ॥

उसपर प्रभामंडलकी किरणोंसे युक्त नागशत्रु गरुड विराजमान था ऐसी उस सत्यवानकी पताका दिखायी दे रही थी ॥ ४ ॥

अन्वारोहद्धृषीकेशः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।
अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः । ॥ ५ ॥

सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ सत्यकर्मा अर्जुन और कुरुराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णके बैठनेके बाद चढ बैठे ॥ ५ ॥

अशोभेतां महात्मानौ दाशार्हमभितः स्थितौ ।
रथस्थं शार्ङ्गधन्वानमश्विनाविव वासवम् ॥ ६ ॥

वे दोनों महात्मा जो श्रीकृष्णजीके दोनों तरफ खडे थे, शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले रथस्थ श्रीकृष्णजीको ऐसी शोभा दे रहे थे जैसे इन्द्रकी अश्विनी कुमार शोभा देते हों ॥ ६ ॥

तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितम् ।
प्रतोदेन जवोपेतान्परमाश्वानचोदयत् ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णजीने उन दोनोंको लोकपूजित रथमें पास बिठलाकर बडे बेगवान् घोडोंको चाबूकसे चलनेकी प्रेरणा दी ॥ ७ ॥

ते हयाः सहसोत्पेतुर्गृहीत्वा स्यन्दनोत्तमम् ।
आस्थितं पाण्डवेयाभ्यां यदूनामृषभेण च ॥ ८ ॥

वे घोडे उस उत्तम रथको, जिसमें दो पांडव और यादवश्रेष्ठ कृष्ण बैठे थे, लेकर सहसा उडने–दौडने लगे ॥ ८ ॥

वहतां शार्ङ्गधन्वानमश्वानां शीघ्रगामिनाम् ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः पक्षिणां पततामिव ॥ ९ ॥

शार्ङ्गधर कृष्णको शीघ्र गतिसे ले जानेवाले घोडोंका वेगसे उडनेवाले पंछियोंकी तरह बहुत बडा शब्द हो रहा था ॥ ९ ॥

ते समार्छन्नरव्याघ्राः क्षणेन भरतर्षभ ।
भीमसेनं महेष्वासं समनुद्रुत्य वेगिताः ॥ १० ॥

हे भरतश्रेष्ठ! एक क्षण बाद वे नरव्याघ्र पीछे पीछे वेगसे दौडते हुए महातेजस्वी भीमसेनके पास जा पहुंचे ॥ १० ॥

क्रोधदीप्तं तु कौन्तेयं द्विषदर्थे समुद्यतम् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं समेत्यापि महारथाः ॥ ११ ॥

क्रोधसे जलते हुए और शत्रुको मारनेके लिये सज्ज कुंतीपुत्र भीमको वे महारथ निकट जाकर भी रोक न सके ॥ ११ ॥

स तेषां प्रेक्षतामेव श्रीमतां दृढधन्विनाम् ।
ययौ भागिरथीकच्छं हरिभिर्भृशवेगितैः
यत्र स्म श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनाम् ॥ १२ ॥

उन श्रीमान् दृढधनुर्धरोंके समक्षही वह भीम अतिवेगवान् घोडोंकी सहायतासे गंगाके तटकी ओर चला गया; जहां उन महात्माओंके पुत्रोंको मारनेवाला अश्वत्थामा ठहरा हुआ है ऐसा सुना था ॥ १२ ॥

स ददर्श महात्मानमुदकान्ते यशस्विनम् ।
कृष्णद्वैपायनं व्यासमासीनमृषिभिः सह ॥ १३ ॥

वहां उसने देखा कि महात्मा, यशस्वी, कृष्णद्वैपायन व्यास अन्य ऋषियोंके साथ पानीके निकट बैठे हुए थे ॥ १३ ॥

तं चैव क्रूरकर्माणं घृताक्तं कुशचीरिणम् ।
रजसा ध्वस्तकेशान्तं ददर्श द्रौणिमन्तिके ॥ १४ ॥

उनके पास उस क्रूरकर्मा अश्वत्थामाको भी देखा जो दर्भ, वल्कल लिये हुए था, जिसने शरीरपर घी लगाया था और धूलके कारण जिसके बालोंके अग्र बिखरे हुए थे ॥ १४ ॥

तमभ्यधावत्कौन्तेयः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १५ ॥

महाबाहु कुंतीपुत्र भीमसेन बाण सहित धनुष लिये ‘ खडा रह ’ ‘ खडा रह ’ कहता हुआ उसकी ओर दौड पडा ॥ १५ ॥

स दृष्ट्वा भीमधन्वानं प्रगृहीतशरासनम् ।
भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दनरथे स्थितौ ।
व्यथितात्माभवद्द्रौणिः प्राप्तं चेदममन्यत ॥ १६ ॥

धनुष–बाण पकडकर आनेवाले भयंकर धनुर्धर भीमको तथा उसके पीछे श्रीकृष्णके रथमें खडे उसके दोनों भाइयोंको देखकर अश्वत्थामाका जी घबरा गया और उसने यही प्राप्त कर्तव्य समझा ॥ १६ ॥

स तद्दिव्यमदीनात्मा परमास्त्रमचिन्तयत् ।
जग्राह च स चैषीकां द्रौणिः सव्येन पाणिना ।
स तामापदमासाद्य दिव्यमस्त्रमुदीरयत् ॥ १७ ॥

उसने दीन न होकर उस श्रेष्ठ अस्त्रका स्मरण किया और बांयें हाथसे एक सींक ले ली । इस तरह अश्वत्थामाने उस संकटको जानकर दिव्य अस्त्रका प्रक्षेपण किया ॥ १७ ॥

अमृष्यमाणस्ताञ्शूरान्दिव्यायुधधरान्स्थितान् ।
अपाण्डवायेति रुषा व्यसृजद्दारुणं वचः ॥ १८ ॥

उन दिव्य शस्त्र लिये खडे शूरोंको सहन करनेकी शक्ति उसमें नहीं थी इसलिये उसने ‘ जगत् पाण्डवशून्य हो जाय ’ ऐसे दारुण वचनका उच्चार किया ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूल द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
सर्वलोकप्रमोहार्थं तदस्त्रं प्रमुमोच ह ॥ १९ ॥

हे राजशार्दूल ! उस पराक्रमी अश्वत्थामाने सब लोगोंका नाश करनेके लिये वह अस्त्र छोड दिया ॥ १९ ॥

ततस्तस्यामिषीकायां पावकः समजायत ।
प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन्कालान्तकयमोपमः ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ६३५ ॥

उसके बाद उस सींकमें तीनों लोकोंको मानो जला रहा हो, काल, अन्तक यमराज जैसा पावक–अग्नि उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ६३५ ॥

: १४ :

वैशम्पायन उवाच

इङ्गितेनैव दाशार्हस्तमभिप्रायमादितः ।
द्रौणेर्बुद्ध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

वैशंपायन बोले– श्रीकृष्णने इंगितसेही अश्वत्थामाका अभिप्राय प्रथम जानकर अर्जुनसे कहा ॥ १ ॥

अर्जुनार्जुन यद्दिव्यमस्त्रं ते हृदि वर्तते ।
द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः सम्प्रति पाण्डव ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! अर्जुन ! आचार्य द्रोणका सिखाया जो दिव्य अस्त्र तुम्हारे हृदयमें है, हे पांडव ! अब उसके प्रयोगका यह काल प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

भ्रातॄणामात्मनश्चैव परित्राणाय भारत ।
विसृजैतत्त्वमप्याजावस्त्रमस्त्रनिवारणम् ॥ ३ ॥

हे भारत ! भाईयोंकी और अपनी रक्षाके लिये युद्धमें उसके अस्त्रका निवारण करनेके लिये तुमभी अस्त्र छोडो ॥ ३ ॥

केशवेनैवमुक्तस्तु पाण्डवः परवीरहा ।
अवातरद्रथात्तूर्णं प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णके यों कहनेके बाद शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला अर्जुन बाणयुक्त धनुष लेकर शीघ्र रथमेंसे नीचे उतर गया ॥ ४ ॥

पूर्वमाचार्यपुत्राय ततोऽनन्तरमात्मने ।
भ्रातृभ्यश्चैव सर्वेभ्यः स्वस्तीत्युक्त्वा परन्तपः ॥ ५ ॥

शत्रुको घबरानेवाले अर्जुनने प्रथम अश्वत्थामाका, फिर अपना, और सब भाइयोंका कल्याण हो ऐसा कहकर ॥ ५ ॥

देवताभ्यो नमस्कृत्य गुरुभ्यश्चैव सर्वशः ।
उत्ससर्ज शिवं ध्यायन्नस्त्रमस्त्रेण शाम्यताम् ॥ ६ ॥

देवताओं तथा सब गुरुओंको नमस्कार करके शिवका ध्यान धरते हुए इस उद्देश्यसे अस्त्र छोडा कि अस्त्रसे अस्त्र शान्त हो जाय ॥ ६ ॥

ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीवधन्वना ।
प्रजज्वाल महार्चिष्मद्युगान्तानलसंनिभम् ॥ ७ ॥

सहसा अर्जुनका छोडा हुआ वह अस्त्र बडी ज्वालाओंसे युक्त हो प्रलयकालीन अग्निके समान जलने लगा ॥ ७ ॥

तथैव द्रोणपुत्रस्य तदस्त्रं तिग्मतेजसः ।
प्रजज्वाल महाज्वालं तेजोमण्डलसंवृतम् ॥ ८ ॥

उसी तरह तेजस्वी अश्वत्थामाका वह अस्त्र महाज्वालायुक्त और तेजोमंडलसे घिरकर जलने लगा ॥ ८ ॥

निर्घाता बहवश्चासन्पेतुरुल्काः सहस्रशः ।
महद्भयं च भूतानां सर्वेषां समजायत ॥ ९ ॥

उनके परस्पर आघात बहुत हुए, हजारों उल्कापात हुए और सब प्राणिओंको बडा भय मालूम पडने लगा ॥ ९ ॥

सशब्दमभवद्व्योम ज्वालामालाकुलं भृशम् ।
चचाल च मही कृत्स्ना सपर्वतवनद्रुमा ॥ १० ॥

आकाश सशब्द हुआ, ज्वालाओंसे अतीव आकुल हुआ, और पर्वतों, वनों तथा वृक्षोंके सहित सारी पृथ्वी विचलित हो गयी ॥ १० ॥

ते अस्त्रे तेजसा लोकांस्तापयन्ती व्यवस्थिते ।
महर्षी सहितौ तत्र दर्शयामासतुस्तदा ॥ ११ ॥

वे अस्त्र जब तेजसे लोगोंको यों ताप देते रहे तब दो महर्षी मिलकर वहाँ दृग्गोचर हुए ॥ ११ ॥

नारदः स च धर्मात्मा भरतानां पितामहः ।
उभौ शमयितुं वीरौ भारद्वाजधनञ्जयौ ॥ १२ ॥

नारद और वे धर्मात्मा जो भारतोंके पितामह व्यास थे दोनों मिलकर दोनों वीरोंको- अश्वत्थामा और अर्जुनको शांत करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ १२ ॥

तौ मुनी सर्वधर्मज्ञौ सर्वभूतहितैषिणौ ।
दीप्तयोरस्त्रयोर्मध्ये स्थितौ परमतेजसौ ॥ १३ ॥

सर्व धर्म जाननेवाले, सब भूतमात्रका हित चाहनेवाले परमतेजस्वी वे दोनों मुनि जलते हुए दोनों अस्त्रोंके बीचमें खडे हो गये ॥ १३ ॥

तदन्तरमनाधृष्यावुपगम्य यशस्विनौ ।
आस्तामृषिवरौ तत्र ज्वलिताविव पावकौ ॥ १४ ॥

वे दोनों यशस्वी ऋषिवर उन अस्त्रोंके बीच बिना हिचकिचाहटके जाकर खडे हुए जैसे जल रहे हुए दो पावक अग्नियां ॥ १४ ॥

प्राणभृद्भिरनाधृष्यौ देवदानवसंमतौ ।
अस्त्रतेजः शमयितुं लोकानां हितकाम्यया ॥ १५ ॥

जिन्हें प्राणियोंसे भय नहीं, जो देवों तथा दानवोंको पूज्य हैं ऐसे वे दोनों लोगोंका हित करनेकी कामनासे अस्त्रके तेजको शान्त करनेके लिए उपस्थित थे ॥ १५ ॥

ऋषी ऊचतुः

नानाशस्त्रविदः पूर्वे येऽप्यतीता महारथाः ।
नैतदस्त्रं मनुष्येषु तैः प्रयुक्तं कथञ्चन ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ६५१ ॥

ऋषि बोले– पुराने समयमें नाना अस्त्र जाननेवाले जो महारथ हो गये उन्होंने कभी इस अस्त्रका प्रयोग मनुष्योंपर नहीं किया था ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ६५१ ॥

: १५ :

वैशम्पायन उवाच

दृष्ट्वैव नरशार्दूलस्तावग्निसमतेजसौ ।
सञ्जहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उन अग्नितुल्य तेजस्वी मुनियोंको देखकर नरशार्दूल अर्जुनने त्वरा करके दिव्य बाण पीछे खींच लिया ॥ १ ॥

उवाच वदतां श्रेष्ठस्तावृषी प्राञ्जलिस्तदा ।
प्रयुक्तमस्त्रमस्त्रेण शाम्यतामिति वै मया ॥ २ ॥

वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह अर्जुन हाथ जोडकर उन ऋषियोंसे बोला, मैंने यह अस्त्र इसी उद्देश्यसे छोडा है कि अस्त्रसे अस्त्र शान्त हो ॥ २ ॥

संहृते परमास्त्रेऽस्मिन्सर्वानस्मानशेषतः ।
पापकर्मा ध्रुवं द्रौणिः प्रधक्ष्यत्यस्त्रतेजसा ॥ ३ ॥

यदि यह दिव्य अस्त्र उपसंहृत किया जावे तो पापकर्मा अश्वत्थामा निश्चय ही हम सबको अपने अस्त्रके तेजसे पूरी तरह जला डालेगा ॥ ३ ॥

अत्र यद्धितमस्माकं लोकानां चैव सर्वथा ।
भवन्तौ देवसंकाशौ तथा संहर्तुमर्हतः ॥ ४ ॥

सो इस समय जो हमारा और खास करके लोगोंका हित हो उसे करनेके लिये देवतुल्य आप दोनों रोक सकते हैं ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वा संजहारास्त्रं पुनरेव धनञ्जयः ।
संहारो दुष्करस्तस्य देवैरपि हि संयुगे ॥ ५ ॥

यों कहकर धनंजयने फिर अपने अपने अस्त्रको लौटा लिया । सचमुच युद्धमें उस अस्त्रको खींच लेना देवोंके लिये भी असंभव था ॥ ५ ॥

विसृष्टस्य रणे तस्य परमास्त्रस्य संग्रहे ।
न शक्तः पाण्डवादन्यः साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ६ ॥

युद्धमें छोडे हुए उस परम अस्त्रको वापस बटोर लेनेमें अर्जुनके शिवाय प्रत्यक्ष इंद्र भी समर्थ नहीं था ॥ ६ ॥

ब्रह्मतेजोभवं तद्धि विसृष्टमकृतात्मना ।
न शक्यमावर्तयितुं ब्रह्मचारिव्रतादृते ॥ ७ ॥

क्योंकि वह ब्रह्मतेजसे उत्पन्न हुआ है और अयोग्य मनुष्यने उसे छोडा है तो उसे ब्रह्मचारिव्रत साधनके विना नहीं खींचा जा सकता ॥ ७ ॥

अचीर्णब्रह्मचर्यो यः सृष्ट्वावर्तयते पुनः ।
तदस्त्रं सानुबन्धस्य मूर्धानं तस्य कृन्तति ॥ ८ ॥

ब्रह्मचर्यका आचरण न करनेवाला जो मनुष्य इसे छोडकर फिर खींचता है उसका शिरःकर्तन उसके परिवारके साथ ही उस अस्त्रद्वारा होता है ॥ ८ ॥

ब्रह्मचारी व्रती चापि दुरवापमवाप्य तत् ।
परमव्यसनार्तोऽपि नार्जुनोऽस्त्रं व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारी, व्रतस्थ अर्जुनने उस अप्राप्य अस्त्रको प्राप्त करनेपर बडे संकटोंसे दुःखी होकर भी कभी प्रयुक्त नहीं किया था ॥ ९ ॥

सत्यव्रतधरः शूरो ब्रह्मचारी च पाण्डवः ।
गुरुवर्ती च तेनास्त्रं संजहारार्जुनः पुनः ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन गुरुकी सेवा करनेवाला, शूर, ब्रह्मचारी, सत्यव्रती था; इसीसे वह उस अस्त्रका फिर उपसंहार कर सका ॥ १० ॥

द्रौणिरप्यथ सम्प्रेक्ष्य तावृषी पुरतः स्थितौ ।
न शशाक पुनर्घोरमस्त्रं संहर्तुमाहवे ॥ ११ ॥

अश्वत्थामाने भी सामने खडे उन दोनों ऋषियोंको देखा, परंतु वह युद्धमें उस भयंकर अस्त्रको वापस नहीं लौटा ले सका ॥ ११ ॥

अशक्तः प्रतिसंहारे परमास्त्रस्य संयुगे ।
द्रौणिर्दीनमना राजन्द्वैपायनमभाषत ॥ १२ ॥

युद्धक्षेत्रमें उस परम अस्त्रको वापस लेनेमें असमर्थ अश्वत्थामा दीनहृदय होकर व्यास महर्षिसे बोला ॥ १२ ॥

उत्तमव्यसनार्तेन प्राणत्राणमभीप्सुना ।
मयैतदस्त्रमुत्सृष्टं भीमसेनभयान्मुने ॥ १३ ॥

हे मुनिवर ! भीमसेनसे डरकर, बडे संकटसे दुःखी होकर प्राणोंकी रक्षा करनेकी इच्छासे मैंने यह अस्त्र छोडा है ॥ १३ ॥

अधर्मश्च कृतोऽनेन धार्तराष्ट्रं जिघांसता ।
मिथ्याचारेण भगवन्भीमसेनेन संयुगे ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इस भीमसेनने दुर्योधनका वध करनेके लिये युद्धमें असदाचार करके अधर्म किया है ॥ १४ ॥

अतः सृष्टमिदं ब्रह्मन्मयास्त्रमकृतात्मना ।
तस्य भूयोऽद्य संहारं कर्तुं नाहमिहोत्सहे ॥ १५ ॥

हे ब्रह्मन् ! इसीलिये मैंने यद्यपि मैं अकृतात्मा हूं तो भी यह अस्त्र प्रयुक्त किया; अब इसे फिर लौटा लेनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ॥ १५ ॥

विसृष्टं हि मया दिव्यमेतदस्त्रं दुरासदम् ।
अपाण्डवायेति मुने वह्नितेजोऽनुमन्त्र्य वै ॥ १६ ॥

हे मुनिवर ! मैंने इस दुर्धर और दिव्य अस्त्रको अग्नितेजसे अनुमंत्रित करके पृथ्वी अ-पांडव हो जाय इसीलिये प्रयुक्त किया है ॥ १६ ॥

तदिदं पाण्डवेयानामन्तकायाभिसंहितम् ।
अद्य पाण्डुसुतान्सर्वाञ्जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥ १७ ॥

सो यह पांडवोंके अन्तपर तुला हुआ है, वह आज सभी पांडवोंको जीवितसे भ्रष्ट करेगा ॥ १७ ॥

कृतं पापमिदं ब्रह्मन्रोषाविष्टेन चेतसा ।
वधमाशास्य पार्थानां मयास्त्रं सृजता रणे ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! क्रोधाविष्ट अन्तःकरणसे पांडवोंके नाशकी आशा मनमें रखकर इस अस्त्रका प्रयोग करके मैंने यह पाप किया है ॥ १८ ॥

व्यास उवाच

अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तात विद्वान्पार्थो धनञ्जयः ।
उत्सृष्टवान्न रोषेण न वधाय तवाहवे ॥ १९ ॥

व्यास बोले– हे भाई ! विद्वान् धनंजय अर्जुनने क्रोधावेशमें आकर तेरे वधके लिये युद्धमें ब्रह्मशिर अस्त्रका प्रयोग नहीं किया है ॥ १९ ॥

*

अस्त्रमस्त्रेण तु रणे तव संशमयिष्यता ।
विसृष्टमर्जुनेनेदं पुनश्च प्रतिसंहृतम् ॥ २० ॥

अस्त्रसे ही युद्धमें तेरे अस्त्रको शान्त करनेके उद्देश्यसे अर्जुनने अस्त्र छोडा था और फिर उसे वापिस खींच लिया ॥ २० ॥

ब्रह्मास्त्रमप्यवाप्यैतदुपदेशात्पितुस्तव ।
क्षत्रधर्मान्महाबाहुर्नाकम्पत धनंजयः ॥ २१ ॥

तेरे पिताके उपदेशसे ब्रह्मास्त्रकी प्राप्ति करके भी महाबाहु अर्जुन क्षत्रधर्मसे जरा भी विचलित नहीं हुआ ॥ २१ ॥

एवं धृतिमतः साधोः सर्वास्त्रविदुषः सतः ।
सभ्रातृबन्धोः कस्मात्त्वं वधमस्य चिकीर्षसि ॥ २२ ॥

इस तरह धैर्यवान्, साधु, सब अस्त्र जाननेवाले, मित्रबंधुसहित इस अर्जुनका वध किस कारणसे तू करना चाहता है ? ॥ २२ ॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो यत्र परमास्त्रेण वध्यते ।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥ २३ ॥

जहां ब्रह्मशिर अस्त्रको परमास्त्रसें नष्ट किया जाता है उस राष्ट्रमें बारह वर्ष तक पर्जन्यवृष्टि नहीं होती ॥ २३ ॥

एतदर्थं महाबाहुः शक्तिमानपि पाण्डवः ।
न विहन्त्येतदस्त्रं तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ २४ ॥

इसलिये यद्यपि यह अर्जुन महाबाहु और शक्तिमान् है तो भी प्रजाके हितकी कामनासे वह तेरे अस्त्रको नष्ट नहीं कर रहा है ॥ २४ ॥

पाण्डवास्त्वं च राष्ट्रं च सदा संरक्ष्यमेव नः ।
तस्मात्संहर दिव्यं त्वमस्त्रमेतन्महाभुज ॥ २५ ॥

हे महाबाहो ! पांडवोंकी, तेरी, इस राष्ट्रकी सदा हमें रक्षा करना अवश्य होता है । इसलिये तू इस दिव्य अस्त्रको वापस लौटा ले ॥ २५ ॥

अरोषस्तव चैवास्तु पार्थाः सन्तु निरामयाः ।
न ह्यधर्मेण राजर्षिः पाण्डवो जेतुमिच्छति ॥ २६ ॥

तेरा रोष समाप्त हो जाय, और पांडव निरामय रहें, क्योंकि राजर्षि पांडुपुत्र युधिष्ठिर अधर्मसे नहीं जीतना चाहता है ॥ २६ ॥

मणिं चैतं प्रयच्छैभ्यो यस्ते शिरसि तिष्ठति ।
एतदादाय ते प्राणान्प्रतिदास्यन्ति पाण्डवाः ॥ २७ ॥

और यह जो तेरे सिरपर मणि है वह तू इन्हें दे दे । इसे लेकर वे पांडव तुझे तेरे प्राण प्रदान करेंगे ॥ २७ ॥

द्रौणिरुवाच

पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत्कौरवैर्धनम् ।
अवाप्तानीह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते ॥ २८ ॥

अश्वत्थामा बोला– पांडवोंने जो रत्न प्राप्त किये थे और कौरवोंने जो धन प्राप्त किया था उन सबकी अपेक्षा यह मेरी मणि कुछ विशेष है ॥ २८ ॥

यमाबध्य भयं नास्ति शस्त्रव्याधिक्षुधाश्रयम् ।
देवेभ्यो दानवेभ्यो वा नागेभ्यो वा कथञ्चन ॥ २९ ॥

जिसे बांधनेसे शस्त्र, व्याधि–रोग और भूखसे किसी प्रकारका डर नहीं रहा करता है; तथा देवों, दानवों अथवा नागोंसे किसी तरहका भय नहीं रहता है ॥ २९ ॥

न च रक्षोगणभयं न तस्करभयं तथा ।
एवंवीर्यो मणिरयं न मे त्याज्यः कथञ्चन ॥ ३० ॥

तथा राक्षसोंके समूहसे भय नहीं रहता और चोरोंसे भी भय नहीं रहता है । ऐसी शक्तिशाली यह मणि मेरे लिये किसी भी प्रकारसे त्याज्य नहीं है ॥ ३० ॥

यत्तु मे भगवानाह तन्मे कार्यमनन्तरम् ।
अयं मणिरयं चाहमिषीका निपतिष्यति ।
गर्भेषु पाण्डवेयानाममोघं चैतदुद्यतम् ॥ ३१ ॥

जो भी भगवान् आपने मुझसे कहा है वह मुझे तुरंत करना चाहिये। यह मणि, यह मैं और यह सींक गिर जायगी, और प्रयुक्त किया हुआ यह अमोघ अस्त्र पांडवोंके गर्भस्थ जीवोंपर गिरेगा ॥ ३१ ॥

व्यास उवाच

एवं कुरु न चान्या ते बुद्धिः कार्या कदाचन ।
गर्भेषु पाण्डवेयानां विसृज्यैतदुपारम ॥ ३२ ॥

व्यास बोले– तू ऐसा कर, तेरी बुद्धिमें परिवर्तन कराना कभी संभव नहीं है । पांडवोंके गर्भोंपर इस अस्त्रको छोडकर तू शान्त हो जा ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

तत: परममस्त्रं तदश्वत्थामा भृशातुरः
द्वैपायनवचः श्रुत्वा गर्भेषु प्रमुमोच ह ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ६८४ ॥

वैशंपायन बोले– तदनन्तर अश्वत्थामाने बहुत आतुर हो व्यासजीका बचन सुनकर वह परम अस्त्र पांडवोंके गर्भोंपर छोड दिया ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ६८४ ॥

: १६ :

वैशंपायन उवाच

तदाज्ञाय हृषीकेशो विसृष्टं पापकर्मणा ।
हृष्यमाण इदं वाक्यं द्रौणिं प्रत्यब्रवीत्तदा ॥ १ ॥

वैशंपायन बोले– उस पापकर्माने अस्त्र छोडा है यह जानकर श्रीकृष्ण अश्वत्थामासे आनन्दपूर्वक यह वाक्य बोले ॥ १ ॥

विराटस्य सुतां पूर्वं स्नुषां गाण्डीवधन्वनः ।
उपप्लव्यगतां दृष्ट्वा व्रतवान्ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ २ ॥

कुछ दिन पहले विराट राजाकी कन्या जो गांडीवधनुर्धर अर्जुन बहू है, वह जब शिबिरमें थी तब एक व्रतवान् ब्राह्मणने उसे देखकर कहा था ॥ २ ॥

परिक्षीणेषु कुरुषु पुत्रस्तव जनिष्यति ।
एतदस्य परिक्षित्त्वं गर्भस्थस्य भविष्यति ॥ ३ ॥

जब सारे कुरुवंशीयोंका परिक्षय होगा तब तेरे एक पुत्र पैदा होगा और इसी कारणसे तेरे गर्भस्थ पुत्रका नाम परिक्षित् होगा ॥ ३ ॥

तस्य तद्वचनं साधोः सत्यमेव भविष्यति ।
परिक्षिद्भविता ह्येषां पुनर्वंशकरः सुतः ॥ ४ ॥

उस साधुका वह वचन सत्य सिद्ध होगा । क्योंकि इनके वंशको फिर चालू करनेवाला पुत्र परिक्षित् होगा ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणं गोविन्दं सात्वतप्रवरं तदा ।
द्रौणिः परमसंरब्धः प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥ ५ ॥

जब श्रीकृष्ण कृतवर्मासे यों कह रहे थे तब अश्वत्थामाने बहुत क्षुब्ध होकर इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ५ ॥

नैतदेवं यथात्थ त्वं पक्षपातेन केशव ।
वचनं पुण्डरीकाक्ष न च मद्वाक्यमन्यथा ॥ ६ ॥

हे पुण्डरीक जैसी आँखोंवाले केशव ! तुम पक्षपातसे जो वचन कह रहे हो वह ठीक नहीं है। मेरा वाक्य विपरीत नहीं होगा ॥ ६ ॥

पतिष्यत्येतदस्त्रं हि गर्भे तस्या मयोद्यतम् ।
विराटदुहितुः कृष्ण यां त्वं रक्षितुमिच्छसि ॥ ७ ॥

हे कृष्ण ! यह मेरा छोडा हुआ अस्त्र जिसकी तुम रक्षा करना चाहते हो उसी विराटकन्याके गर्भपर जा गिरेगा ॥ ७ ॥

वासुदेव उवाच

अमोघः परमास्त्रस्य पातस्तस्य भविष्यति ।
स तु गर्भो मृतो जातो दीर्घमायुरवाप्स्यति ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण बोले– उस परमास्त्रका पात अमोघ–सफल होगा, परंतु मृत अवस्थामें जन्मा हुआ वह पुत्र दीर्घ आयु प्राप्त करेगा ॥ ८ ॥

त्वां तु कापुरुषं पापं विदुः सर्वे मनीषिणः ।
असकृत्पापकर्माणं बालजीवितघातकम् ॥ ९ ॥

तुझे सब पण्डित समझेंगे कि तू पापी, कापुरुष, बार बार पापकर्म करनेवाला, बालककी हत्या करनेवाला है ॥ ९ ॥

तस्मात्त्वमस्य पापस्य कर्मणः फलमाप्नुहि ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि चरिष्यसि महीमिमाम् ।
अप्राप्नुवन्क्वचित्काञ्चित्संविदं जातु केनचित् ॥ १० ॥

इसलिये इस पापकर्म कर्मका फल तुझे यह मिलेगा । तू इस पृथ्वीपर कहीं, किसी प्रकार, किसीकी सहानुभूति बिना प्राप्त किये तीन हजार वर्षतक घूमता रहेगा ॥ १० ॥

निर्जनानसहायस्त्वं देशान्प्रविचरिष्यसि ।
भवित्री न हि ते क्षुद्र जनमध्येषु संस्थितिः ॥ ११ ॥

हे क्षुद्र ! तू अकेला होकर निर्मनुष्य देशोंमें मारा मारा फिरेगा । और लोगोंके बीच तेरे लिये स्थान नहीं रहेगा ॥ ११ ॥

पूयशोणितगन्धी च दुर्गकान्तारसंश्रयः ।
विचरिष्यसि पापात्मन्सर्वव्याधिसमन्वितः ॥ १२ ॥

हे पापात्मन् ! तू सब प्रकारके रोगोंसे पीडित होकर, पूय और लोहूकी दुर्गंधसे युक्त बन दुर्गम अरण्यके आश्रयसे घूमा करेगा ॥ १२ ॥

वयः प्राप्य परिक्षित्तु वेदव्रतमवाप्य च ।
कृपाच्छारद्वताद्वीरः सर्वास्त्राण्युपलप्स्यते ॥ १३ ॥

और वह परिक्षित् तो दीर्घायु प्राप्त करके तथा वेदव्रत प्राप्त करके वीर बनेगा और शारद्वत कृपसे सर्व अस्त्रविद्याका लाभ कर लेगा ॥ १३ ॥

विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति ॥ १४ ॥

वह धर्मात्मा परम अस्त्र सीखकर क्षत्रिय धर्ममें रहकर साठ वर्षतक इस भूमिका पालन करेगा ॥ १४ ॥

इतश्चोर्ध्वं महाबाहुः कुरुराजो भविष्यति ।
परिक्षिन्नाम नृपतिर्मिषतस्ते सुदुर्मते ।
पश्य मे तपसो वीर्यं सत्यस्य च नराधम ॥ १५ ॥

अब इसके बाद वह महाबाहु परिक्षित् नामसे विख्यात राजा होकर तेरे देखते ही कुरुवंशका राजा बनेगा । अरे दुष्टमते ! नराधम! मेरे तपका और सत्यका प्रभाव देख ॥ १५ ॥

व्यास उवाच

यस्मादनादृत्य कृतं त्वयास्मान्कर्म दारुणम् ।
ब्राह्मणस्य सतश्चैव यस्मात्ते वृत्तमीदृशम् ॥ १६ ॥

व्यास बोले– तूने हमारा अनादर करके यह दारुण कर्म किया है और ब्राह्मण होकर भी तेरा जब ऐसा वर्ताव है ॥ १६ ॥

तस्माद्यद्देवकीपुत्र उक्तवानुत्तमं वचः ।
असंशयं ते तद्भावि क्षुद्रकर्मन्व्रजाश्वितः ॥ १७ ॥

हे क्षुद्र कर्म करनेवाले ! इसी कारण जो श्रीकृष्णने उत्तम बचन कहा है वह निःसंदेह सत्य होगा । यहांसे शीघ्र दूर जा ॥ १७ ॥

अश्वत्थामोवाच

सहैव भवता ब्रह्मन्स्थास्यामि पुरुषेष्वहम् ।
सत्यवागस्तु भगवानयं च पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

अश्वत्थामा बोला– हे ब्रह्मन् ! मैं आपके साथ मनुष्योंमें रहूंगा । और भगवान् पुरुषोत्तमकी वाणी भी सत्य हो ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रदायाथ मणिं द्रौणिः पाण्डवानां महात्मनाम्।
जगाम विमनास्तेषां सर्वेषां पश्यतां वनम् ॥ १९ ॥

वैशंपायन बोले– महात्मा पांडवोंको मणि देकर अश्वत्थामा उदासीन होकर सबके देखते वहांसे बनको चला गया ॥ १९ ॥

पाण्डवाश्चापि गोविन्दं पुरस्कृत्य हतद्विषः।
कृष्णद्वैपायनं चैव नारदं च महामुनिम् ॥ २० ॥

पांडव भी शत्रुका निःपात करके भगवानको अग्रसर करके तथा कृष्णद्वैपायन व्यास और महामुनि नारदको साथमें लेकर ॥ २० ॥

द्रोणपुत्रस्य सहजं मणिमादाय सत्वराः।
द्रौपदीमभ्यधावन्त प्रायोपेतां मनस्विनीम् ॥ २१ ॥

अश्वत्थामाकी नैसर्गिक मणि लेकर शीघ्र गतिसे मनस्विनी और प्रायोपवेशन–उपवास करनेवाली द्रौपदीकी ओर दौडे ॥ २१ ॥

ततस्ते पुरुषव्याघ्राः सदश्वैरनिलोपमैः।
अभ्ययुः सहदाशार्हाः शिबिरं पुनरेव ह ॥ २२ ॥

बादमें वे पुरुषव्याघ्र अच्छे और वायुतुल्य घोडोंसे श्रीकृष्णको साथमें लेकर शिबिरमें फिर आ पहुंचे ॥ २२ ॥

अवतीर्य रथाभ्यां तु त्वरमाणा महारथाः।
ददृशुर्द्रौपदीं कृष्णामार्तामार्ततराः स्वयम् ॥ २३ ॥

उन महारथोंने रथोंमेंसे शीघ्रतापूर्वक उतरकर दुःखी द्रुपदकन्या कृष्णा द्रौपदीको देखा। उस समय वे खुद इससे भी अधिक दुःखी थे ॥ २३ ॥

तामुपेत्य निरानन्दां दुःखशोकसमन्विताम्।
परिवार्य व्यतिष्ठन्त पाण्डवाः सहकेशवाः ॥ २४ ॥

जिसका आनंद नष्ट हो चुका था और जो दुःखशोकसे आकुल थी ऐसी द्रौपदीके पास जाकर कृष्ण सहित पांडव उसकी चारों ओर खडे हुए ॥ २४ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो भीमसेनो महाबलः।
प्रददौ तु मणिं दिव्यं वचनं चेदब्रवीत् ॥ २५ ॥

अनंतर राजाकी अनुज्ञासे महाबलवान् भीमसेनने वह मणि उसे दे दी और यह वचन कहा ॥ २५ ॥

अयं भद्रे तव मणिः पुत्रहन्ता जितः स ते ।
उत्तिष्ठ शोकमुत्सृज्य क्षत्रधर्ममनुस्मर ॥ २६ ॥

हे भद्रे ! यह मणि है, पुत्रोंका वह घातक हमसे पराजित हुआ है । अब तुम शोकका त्याग करके उठो और क्षत्रिय धर्मका स्मरण करो ॥ २६ ॥

प्रयाणे वासुदेवस्य शमार्थमसितेक्षणे ।
यान्युक्तानि त्वया भीरु वाक्यानि मधुघातिनः ॥ २७ ॥

हे असितेक्षणे, काली आंखोंवाली ! मधु दैत्यका वध करनेवाले भगवान् जब शांतिकी स्थापना करनेके लिये निकले थे तब तुमने, हे भीरु ! जो वाक्य कहे थे ॥ २७ ॥

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा भ्रातरो न च ।
नैव त्वमपि गोविन्द शममिच्छति राजनि ॥ २८ ॥

अगर महाराज शांतिकी स्थापना करना चाहते हैं तो मैं कहूंगी कि मेरे पति नहीं हैं, मेरे पुत्र नहीं हैं, भाई नहीं हैं और हे गोविंद, तुम भी नहीं हो ॥ २८ ॥

उक्तवत्यसि धीराणि वाक्यानि पुरुषोत्तमम् ।
क्षत्रधर्मानुरूपाणि तानि संस्मर्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

भगवान्से जो धीर वाक्य तुमने कहे थे वे क्षत्रधर्मके अनुरूप थे । तुम उनका जरूर स्मरण करो ॥ २९ ॥

हतो दुर्योधनः पापो राज्यस्य परिपन्थकः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं विस्फुरतो मया ॥ ३० ॥

पापी दुर्योधन जो राज्यका अन्तराय था मारा गया है । तडपते हुए दुःशासनका रुधिरपान मैंने किया है ॥ ३० ॥

वैरस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ।
जित्वा मुक्तो द्रोणपुत्रो ब्राह्मण्याद्गौरवेण च ॥ ३१ ॥

अब वैरका आनृण्य हो चुका है; अब हम बोलनेवालोंकी दृष्टिसे भी निन्दनीय नहीं रहे हैं । अश्वत्थामाको जीतकर भी वह ब्राह्मण और गुरु है इसलिये छोड दिया ॥ ३१ ॥

यशोऽस्य पातितं देवि शरीरं त्ववशेषितम् ।
वियोजितश्च मणिना न्यासितश्चायुधं भुवि ॥ ३२ ॥

हे देवि ! उसके यशका पतन हुआ और सिर्फ शरीर बाकी रहा है । उसकी मणि उससे छिन ली गयी है तथा उसे भूमिपर शस्त्रत्याग भी करवाया है ॥ ३२ ॥

द्रौपद्युवाच

केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम ।
शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ॥ ३३ ॥

द्रौपदी बोली— मैं केवल आनृण्य प्रतिशोध पा चुकी हूं; गुरुपुत्र तो मेरा गुरुही है । अब हे भारत ! इस मणिको महाराज अपने सिरपर बांध लें ॥ ३३ ॥

वैशंपायन उवाच

तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत्तदा ।
गुरोरुच्छिष्टमित्येव द्रौपद्या वचनादपि ॥ ३४ ॥

वैशंपायन बोले— उस समय गुरुका उच्छिष्ट मानकर द्रौपदीके वचनसेभी महाराजने वह मणि लेकर सिरपरही रक्खी ॥ ३४ ॥

ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन्प्रभुः ।
शुशुभे स महाराजः सचन्द्र इव पर्वतः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर उस दिव्य मणिको सिरपर धारण करनेवाले सामर्थ्यसंपन्न महाराज चंद्रसे सुशोभित पर्वतके समान सुशोभित हुए ॥ ३५ ॥

उत्तस्थौ पुत्रशोकार्ता ततः कृष्णा मनस्विनी ।
कृष्णं चापि महाबाहुं पर्यपृच्छत धर्मराट् ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ७२० ॥

उसके बाद पुत्रशोकसे व्याकुल मनस्विनी द्रौपदी उठी, और धर्मराज महाबाहु श्रीकृष्णसे पूछने लगे ॥ ३५

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ७२० ॥

: १७ :

वैशम्पायन उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु सौप्तिके तै रथैस्त्रिभिः ।
शोचन्युधिष्ठिरो राजा दाशार्हमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशंपायन बोले— सौप्तिकमें उन तीन मनुष्योंने सारी सेनाका नाश किया, तब उसके बारेमें शोक करते हुए राजा युधिष्ठिर भगवान्‌से यह बोले ॥ १ ॥

कथं नु कृष्ण पापेन क्षुद्रेणाक्लिष्टकर्मणा ।
द्रौणिना निहताः सर्वे मम पुत्रा महारथाः ॥ २ ॥

भगवान् ! उस पापी, क्षुद्र और मलिन कर्म करनेवाले अश्वत्थामाने मेरे सारे महारथ पुत्रोंको कैसे मार डाला ? ॥ २ ॥

तथा कृतास्त्रा विक्रान्ताः सहस्रशतयोधिनः ।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रोणपुत्रेण पातिताः ॥ ३ ॥

उसी तरह अस्त्र जाननेवाले विक्रमशील, हजारों सैंकडोंके साथ युद्ध करनेवाले द्रुपदके पुत्र भी अश्वत्थामाके हाथों मारे गये ॥ ३ ॥

यस्य द्रोणो महेष्वासो न प्रादादाहवे मुखम् ।
तं जघ्ने रथिनां श्रेष्ठं धृष्टद्युम्नं कथं नु सः ॥ ४ ॥

महातेजस्वी द्रोण युद्धमें जिसे मुंह न देते थे सामना न करते थे, उस रथिश्रेष्ठ धृष्टद्युम्नको उसने कैसे मारा ? ॥ ४ ॥

किं नु तेन कृतं कर्म यथायुक्तं नरर्षभ ।
यदेकः शिबिरं सर्वमवधीन्नो गुरोः सुतः ॥ ५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! अश्वत्थामाने ऐसा कौनसा युक्त कर्म किया था, जिससे वह अकेला सारे शिबिरको मार सका ? ॥ ५ ॥

वासुदेव उवाच

नूनं स देवदेवानामीश्वरेश्वरमव्ययम् ।
जगाम शरणं द्रौणिरेकस्तेनावधीद्बहून् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण बोले- निश्चय ही वह अश्वत्थामा देवोंका देव, ईश्वरके ईश्वर, अव्यय भगवान् शिव की शरणमें गया होगा जिससे वह अकेला भी बहुतोंको मार सका ॥ ६ ॥

प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि ।
वीर्यं च गिरिशो दद्याद्येनेन्द्रमपि शातयेत् ॥ ७ ॥

क्योंकि महादेव प्रसन्न हुए तो अमरता भी प्रदान करेंगे । वे गिरिश महादेव ऐसा बल देंगे जिससे इंद्र को भी शान्त किया जा सके ॥ ७ ॥

वेदाहं हि महादेवं तत्त्वेन भरतर्षभ ।
यानि चास्य पुराणानि कर्माणि विविधान्युत ॥ ८ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मैं महादेवको पुरी तरह जानता हूं । साथ ही उनके जो पुराने और विविध कर्म हैं वे भी जानता हूं ॥ ८ ॥

आदिरेष हि भूतानां मध्यमन्तश्च भारत ।
विचेष्टते जगच्चेदं सर्वमस्यैव कर्मणा ॥ ९ ॥

हे भारत ! वह भूतोंका आदि, मध्य और अन्त है । और यह सारा जगत् उन्हींके कर्मसे क्रिया करता है ॥ ९ ॥

एवं सिसृक्षुर्भूतानि ददर्श प्रथमं विभुः ।
पितामहोऽब्रवीचैनं भूतानि सृज माचिरम् ॥ १० ॥

पितामह ब्रह्मदेव भी जब सृष्टि बनाना चाह रहे थे तब उन्होंने भी ऐसा उपरिनिर्दिष्ट शिवका प्रभाव देखा और वे उन शिवसे बोले कि आप भूतोंकी उत्पत्ति अविलंब कीजिये ॥ १० ॥

हरिकेशस्तथेत्युक्त्वा भूतानां दोषदर्शिवान् ।
दीर्घकालं तपस्तेपे मग्नोऽम्भसि महातपाः ॥ ११ ॥

भूतोंके दोष देखनेवाले भगवान् शिवने हां, ठीक है कहकर वे महा तपस्वी थे तो भी दीर्घकाल तक पानीमें डूबकर तप किया ॥ ११ ॥

सुमहान्तं ततः कालं प्रतीक्ष्यैनं पितामहः ।
स्रष्टारं सर्वभूतानां ससर्ज मनसापरम् ॥ १२ ॥

पितामह ब्रह्माने बहुत दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करके उन्होंने अपने मनसे सब भूतोंके दूसरे निर्माताको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

सोऽब्रवीत्पितरं दृष्ट्वा गिरिशं मग्नमम्भसि ।
यदि मे नाग्रजस्त्वन्यस्ततः स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः ॥ १३ ॥

वह शिवको जलमें मग्न देखकर पितासे बोला, यदि मुझसे पहले कोई उत्पन्न नहीं हुआ है । तो मैं प्रजानिर्माण करूंगा ॥ १३ ॥

तमब्रवीत्पिता नास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः ।
स्थाणुरेषः जले मग्नो विस्रब्धः कुरु वै कृतिम् ॥ १४ ॥

पिता उससे बोले, तुझसे पहले जन्म हुआ कोई दूसरा पुरुष नहीं है । यह जलमें डूबा हुआ है वह स्थाणु शिव—अनादि पुरुष है; तू निःशंक होकर प्रजानिर्माण कर ॥ १४ ॥

सभूतान्यसृजत्सप्त दक्षादींस्तु प्रजापतीन् ।
यैरिमं व्यकरोत्सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ १५ ॥

उनसे सात भूतोंका निर्माण किया, फिर दक्ष आदि प्रजापतियोंका निर्माण किया, जिनकी सहायतासे उसने यह चार प्रकारका भूतसमुदाय उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम् ।
बिभक्षयिषवो राजन्सहसा प्राद्रवंस्तदा ॥ १६ ॥

हे महाराज ! बादमें उत्पन्न करते ही भूखसे व्याकुल सब प्रजा एकाएक प्रजापतिको खानेके लिये दौडीं ॥ १६ ॥

स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवत् ।
आभ्यो मां भगवान्पातु वृत्तिरासां विधीयताम् ॥ १७ ॥

उन खाने चाहनेवालोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये वह पितामहके पास दौडता गया और कहने लगा– हे भगवान् ! इनसे मेरी रक्षा कीजिये और इन्हें जीनेका साधन दीजिये ॥१७॥

ततस्ताभ्यो ददावन्नमोषधीः स्थावराणि च ।
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ॥ १८ ॥

तब उन्हों उनको अन्न, औषधियां, सब स्थावर चीजें दे दीं । तथा जंगम भूतोंमें बलवानोंके लिये दुर्बल भूत खाद्यकी तौरपर दे डाले ॥ १८ ॥

विहितान्नाः प्रजास्तास्तु जग्मुस्तुष्टा यथागतम् ।
ततो ववृधिरे राजन्प्रीतिमत्यः स्वयोनिषु ॥ १९ ॥

इस प्रकार प्रजाको अन्न देनेके बाद वे जैसे आयी थीं संतुष्ट होकर चली गयीं । फिर हे महाराज ! वे अपनी योनीमें आनंदपूर्वक वृद्धि पाने लगीं । १९ ॥

भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरावपि ।
उदतिष्ठज्जलाज्ज्येष्ठः प्रजाश्चेमा ददर्श सः ॥ २० ॥

भूतसमुदायके बढनेके बाद और लोकोंके पितामहके सन्तुष्ट होनेके बाद जलमेंसे ज्येष्ठ-बडा भाई ऊपर आया उसने सारी ये प्रजाएं देखीं ॥ २० ॥

बहुरूपाः प्रजा दृष्ट्वा विवृद्धाः स्वेन तेजसा ।
चुक्रोध भगवान्रुद्रो लिङ्गं स्वं चाप्यविध्यत ॥ २१ ॥

बहुत रूपवाली और अपने तेजसे वृद्ध हुई प्रजाको देखकर भगवान् रुद्रको बडा क्रोध आया और उसने अपना लिंग पटक दिया ॥ २१ ॥

तत्प्रविद्धं तथा भूमौ तथैव प्रत्यतिष्ठत ।
तमुवाचाव्ययो ब्रह्मा वचोभिः शमयन्निव ॥ २२ ॥

वह पटका हुआ लिंग उस समय वैसा ही रह गया । फिर अव्यय अनादि अनंत ब्रह्मा वचनोंसे उन्हें मानो शांत करते हुए बोले ॥ २२ ॥

किं कृतं सलिले शर्व चिरकालं स्थितेन ते ।
किमर्थं चैतदुत्पाट्य भूमौ लिङ्गं प्रवेरितम् ॥ २३ ॥

हे शिव ! आपने दीर्घकाल पानीमें रहकर क्या किया ? यह लिंग उखाडकर भूमिपर काहेके लिये पटक दिया ? ॥ २३ ॥

सोऽब्रवीज्जातसंरम्भस्तदा लोकगुरुर्गुरुम् ।
प्रजाः सृष्टाः परेणेमाः किं करिष्याम्यनेन वै ॥ २४ ॥

तब क्रुद्ध होकर लोक गुरु पितामहसे बोले कि, इन प्रजाओंको किसी दूसरेने उत्पन्न किया अब मैं इससे क्या करूं ? ॥ २४ ॥

तपसाधिगतं चान्नं प्रजार्थं मे पितामह ।
ओषध्यः परिवर्तैरन्यथैव सततं प्रजाः ॥ २५ ॥

हे पितामह ! मेरी प्रजाके लिये तपश्चर्यासे अन्न भी प्राप्त कर लिया । इन प्रजाओंमें हमेशा जैसा परिवर्तन होगा वैसा औषधियोंमें भी होगा ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो जगाम विमना भवः ।
गिरेर्मुञ्जवतः पादं तपस्तप्तुं महातपाः ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ७४६ ॥

महातपस्वी भगवान् शंकर यों कहकर क्रुद्ध और विमनस्क हो मुंजवान् नामक पर्वतकी तलहटीमें तप करनेके लिये चले गये ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ७४६ ॥

: १८ :

वासुदेव उवाच

ततो देवयुगेऽतीते देवा वै समकल्पयन् ।
यज्ञं वेदप्रमाणेन विधिवद्यष्टुमीप्सवः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले— फिर देवयुगके बीत जानेपर वेदोंको प्रमाण मानकर विधिके अनुसार जब देव यज्ञ करना चाहते थे उन्होंने यज्ञका संकल्प किया ॥ १ ॥

कल्पयामासुरव्यग्रा देशान्यज्ञोचितांस्ततः ।
भागार्हा देवताश्चैव यज्ञियं द्रव्यमेव च ॥ २ ॥

फिर उन्होंने व्यग्र हुए बिना यज्ञके लिये उचित देश, यज्ञका हविर्भाग लेनेके लिये उचित देवता और यज्ञिय द्रव्य निश्चित किया ॥ २ ॥

ता वै रुद्रमजानन्त्यो याथातथ्येन देवताः ।
नाकल्पयन्त देवस्य स्थाणोर्भागं नराधिप ॥ ३ ॥

हे राजन् ! उन देवताओंको रुद्रका ठीक ठीक ज्ञान न होनेके कारण उन्होंने देव स्थाणु भाग यज्ञमें नहीं रक्खा था ॥ ३ ॥

×

सोऽकल्प्यमाने भागे तु कृत्तिवासा मखेऽमरैः
तरसा भागमन्विच्छन्धनुरादौ ससर्ज ह ॥ ४ ॥

जब देवोंने यज्ञमें कुछ भाग नहीं रक्खा यह शंकरजीने देखा तब भाग प्राप्त करनेके लिये शीघ्रही उन्होंने सर्व प्रथम धनुष पैदा किया ॥ ४ ॥

लोकयज्ञः क्रियायज्ञो गृहयज्ञः सनातनः ।
पञ्चभूतमयो यज्ञो नृयज्ञश्चैव पञ्चमः ॥ ५ ॥

लोकयज्ञ, क्रियायज्ञ, गृहयज्ञ, सनातन पंचभूतमय यज्ञ और पांचवां मनुष्य यज्ञ ॥ ५ ॥

लोकयज्ञेन यज्ञैषी कपर्दी विदधे धनुः ।
धनुः सृष्टमभूत्तस्य पञ्चकिष्कुप्रमाणतः ॥ ६ ॥

यज्ञभाग चाहनेवाले शिवने लोकयज्ञसे धनुष बनाया। वह बनाया हुआ धनुष पांच हाथके प्रमाणमें था ॥ ६ ॥

वषट्कारोऽभवज्ज्या तु धनुषस्तस्य भारत ।
यज्ञाङ्गानि च चत्वारि तस्य संहननेऽभवन् ॥ ७ ॥

वषट्कार उस धनुषकी ज्या बन गया । यज्ञके चार अंग उसके सिरे बन गये ॥ ७ ॥

ततः क्रुद्धो महादेवस्तदुपादाय कार्मुकम् ।
आजगामाथ तत्रैव यत्र देवाः समीजिरे ॥ ८ ॥

बादमें वह धनुष लेकर क्रुद्ध महादेव वहीं आ पहुंचे जहां देव यज्ञ कर रहे थे ॥ ८ ॥

तमात्तकार्मुकं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमव्ययम् ।
विव्यथे पृथिवी देवी पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ९ ॥

धनुष लेकर आनेवाले, ब्रह्मचारी और अव्यय शिवको देखकर देवी पृथिवी पीडित हुई और पर्वत कम्पित हुए ॥ ९ ॥

न ववौ पवनश्चैव नाग्निर्जज्वाल चैधितः ।
व्यभ्रमच्चापि संविग्नं दिवि नक्षत्रमण्डलम् ॥ १० ॥

पवनका चलना बंद हुआ, इंधन देनेपर भी अग्नि नहीं जलती थी और नक्षत्रमंडल घबराकर आकाशमें घूमने लगा ॥ १० ॥

न बभौ भास्करश्चापि सोमः श्रीमुक्तमण्डलः ।
तिमिरेणाकुलं सर्वमाकाशं चाभवद्‌वृतम् ॥ ११ ॥

सूर्य भी प्रकाशित नहीं हो रहा था, चन्द्रमाकी शोभा उसके मंडलको छोड गयी और सारा आकाश अंधेरेसे भरा और आच्छादित हुआ ॥ ११ ॥

अभिभूतास्ततो देवा विषयान्न प्रजज्ञिरे ।
न प्रत्यभाच्च यज्ञस्तान्वेदा बभ्रंशिरे तदा ॥ १२ ॥

देव घबरा गये यहां तक कि वे विषयोंको जानते भी न थे । उस समय यज्ञकी शोभा नष्ट हो गयी और वेद भ्रष्ट होगये ॥ १२ ॥

ततः स यज्ञं रौद्रेण विव्याध हृदि पत्रिणा ।
अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा सपावकः ॥ १३ ॥

फिर उन्होंने एक भयंकर बाणसे यज्ञके हृदयपर प्रहार किया, तब यज्ञ हरिण बनकर अग्निके साथ वहांसे दूर भाग गया ॥ १३ ॥

स तु तेनैव रूपेण दिवं प्राप्य व्यरोचत ।
अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर नभस्तले ॥ १४ ॥

हे युधिष्ठिर ! वह उसी रूपसे आकाशमें जाकर प्रकाशित होने लगा जिसका पीच्छा आकाशमें रुद्रके द्वारा किया जाता है ॥ १४ ॥

अपक्रान्ते ततो यज्ञे संज्ञा न प्रत्यभात्सुरान् ।
नष्टसंज्ञेषु देवेषु न प्राज्ञायत किंचन ॥ १५ ॥

यज्ञके भाग जानेके बाद देवोंमें फिर संज्ञा सुधि नहीं प्रतीत हुए । देवोंके यों बेसुध होनेके बाद कुछ भी जाना नहीं जाता था ॥ १५ ॥

त्र्यम्बकः सवितुर्बाहू भगस्य नयने तथा ।
पूष्णश्च दशनान्क्रुद्धो धनुष्कोट्या व्यशातयत् ॥ १६ ॥

महादेवने क्रुद्ध होकर धनुषके अग्रसे सविताके बाहु, भागकी आंखें, पूषाके दांत तोड दिये ॥ १६ ॥

प्राद्रवन्त ततो देवा यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ।
केचित्तत्रैव घूर्णन्तो गतासव इवाभवन् ॥ १७ ॥

तब देव और यज्ञके अंग जिधर उधर भागने लगे, कुछ लोग वहीं पडे गतप्राणसे हो गये ॥ १७ ॥

स तु विद्राव्य तत्सर्वं शितिकण्ठोऽवहस्य च ।
अवष्टभ्य धनुष्कोटिं रुरोध विबुधांस्ततः ॥ १८ ॥

इस तरह उन सबको भगाकर महादेवने हंसकर और धनुषकी कोटीसे सब देवोंको रख्खा ॥ १८ ॥

ततो वागमरैरुक्ता ज्यां तस्य धनुषोऽच्छिनत्
अथ तत्सहसा राजंश्छिन्नज्यं विस्फुरद्धनुः ॥ १९ ॥

फिर देवोंके कहनेके अनुसार वाणीने महादेवके धनुषकी ज्या तोड डाली । इस तरह ज्या टूटा धनुष एकाएक कंपित हुआ ॥ १९ ॥

ततो विधनुषं देवा देवश्रेष्ठमुपागमन् ।
शरणं सह यज्ञेन प्रसादं चाकरोत्प्रभुः ॥ २० ॥

तदनन्तर सारे देव धनुपरहित भगवानकी शरणमें गये, उनके साथ यज्ञ भी था । तब प्रभुने उनपर कृपा की ॥ २० ॥

ततः प्रसन्नो भगवान्प्रास्यत्कोपं जलाशये ।
स जलं पावको भूत्वा शोषयत्यनिशं प्रभो ॥ २१ ॥

हे महाराज ! बादमें भगवान्‌ने प्रसन्न होकर अपने कोपको जलाशयमें फेंक दिया वह अग्नि वडवाग्नि बनकर अभीतक जलका नित्य शोषण कर रहा है ॥ २१ ॥

भगस्य नयने चैव बाहू च सवितुस्तथा ।
प्रादात्पूष्णश्च दशनान्पुनर्यज्ञं च पाण्डव ॥ २२ ॥

हे पांडव ! महादेवजीने भगकी आंखें, सविताके बाहु, पूषाके दांत तथा यज्ञ फिर वापस दे डाला ॥ २२ ॥

ततः सर्वमिदं स्वस्थं बभूव पुनरेव ह ।
सर्वाणि च हवींष्यस्य देवा भागमकल्पयन् ॥ २३ ॥

उसके बाद सब कुछ पहलेकी तरह शांत हुआ । देवोंने भी सब हविर्द्रव्योंमें उनका महादेवका भाग निश्चित कर दिया ॥ २३ ॥

तस्मिन्क्रुद्धेऽभवत्सर्वमस्वस्थं भुवनं विभो ।
प्रसन्ने च पुनः स्वस्थं स प्रसन्नोऽस्य वीर्यवान् ॥ २४ ॥

हे राजन् ! उनके क्रुद्ध होनेपर सारा विश्व बेचैन होता है, और प्रसन्न होनेपर फिर स्वस्थ होता है, वह वीर्यवान् महादेव इसपर प्रसन्न हुए होंगे ॥ २४ ॥

तनस्ते निहताः सर्वे तव पुत्रा महारथाः ।
अन्ये च बहवः शूराः पाञ्चालाश्च सहानुगाः ॥ २५ ॥

इसी कारणवश तुम्हारे सब पुत्र महारथ होते हुए भी उससे मारे गये तथा और भी जो शूरवीर थे, और अनुयायियोंके साथ पांचाल भी मारे गये ॥ २५ ॥

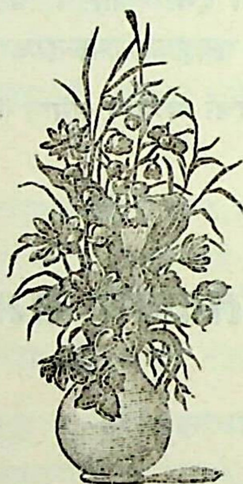
न तन्मनसि कर्तव्यं न हि तद्द्रौणिना कृतम् ।
महादेवप्रसादः स कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ समाप्तं ऐषीकपर्व ॥ ७७२ ॥

इसको अपने मनको चोर नहीं लगने देनी चाहिये, वह कृत्य अश्वत्थामाने नहीं किया है, अपितु वह महादेवका प्रसाद है यह समझकर अनन्तरका कार्य तुम करो ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके सौप्तिकपर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ऐषीकपर्व समाप्त ॥ ७७२ ॥

॥ सौप्तिकपर्व समाप्त ॥





११

महाभारत

स्त्रीपर्व

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर



पारडी [जि. वलसाड]

संवत् २०३३, शक १८९९, सन् १९७७

*

प्रथम आवृत्ति

*

प्रकाशक और मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
किल्ला-पारडी [जि. वलसाड] गुजरात

स्त्री पर्व

आभार प्रदर्शन

इस महाभारत प्रकाशनके लिए भारतसरकारके शिक्षा मंत्रालयने आर्थिक सहायता प्रदान करके जो महान् कार्य किया है, उसके लिए हम हृदयसे आभारी हैं।

इस महाभारत प्रकाशनके लिए हम माननीय श्री सेठ गंगाप्रसादजी बिरला और माननीय श्री सेठ बी. एम. बिरला का भी उपकार नहीं भूल सकते। उन्होंने कागज देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

*



महाभारत

स्त्रीपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिये नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जय की घोषणा करना चाहिये ।

: १ :

जनमेजय उवाच—

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः ।
धृतराष्ट्रो महाराजः श्रुत्वा किमकरोन्मुने ॥ १ ॥

महाराज जनमेजय बोले— हे वैशम्पायन मुने ! जिस समय राजा दुर्योधन और उसकी सब सेना मारी गयी, तब महाराज धृतराष्ट्रने इस समाचारको सुनकर क्या किया ? ॥ १ ॥

तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २ ॥

इसी प्रकार महामनस्वी कुरुकुलराज धर्मपुत्र युधिष्ठिरने क्या किया ? और कृपाचार्य आदि तीनों महारथियोंने इसके बाद क्या किया ? ॥ २ ॥

अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापश्चान्योन्यकारितः ।
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत संजयः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको शाप दिया था और अश्वत्थामाने पाण्डवोंको शाप दिया था, ऐसे परस्पर शाप प्राप्त हुए थे, यहां तक अश्वत्थामाकी करतूत मैंने सुन ली है; फिर सञ्जयने राजा धृतराष्ट्रसे क्या कहा वह वृत्तान्त हमसे कहिये ॥ ३ ॥

वैशंपायन उवाच—

हते पुत्रशते दीनं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ ४ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे महाराज ! अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर राजा धृतराष्ट्रकी ऐसी दयनीय दशा हो गई, जैसे शाखाओंके कट जानेसे वृक्षकी होती है । उस समय वे पुत्रशोकसे संतप्त हो गये ॥ ४ ॥

ध्यानमूकत्वमापन्नं चिन्तया समभिप्लुतम् ।
अभिगम्य महाप्राज्ञः संजयो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

अपने पुत्रोंका ध्यान करते करते वे मौन हो गये और चिन्तामें भर गये ! उस अवस्थामें राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर महाप्राज्ञ सञ्जय बोले ॥ ५ ॥

किं शोचसि महाराज नास्ति शोके सहायता ।
अक्षौहिण्यो हताश्चाष्टौ दश चैव विशां पते ।
निर्जनेयं वसुमती शून्या संप्रति केवला ॥ ६ ॥

हे महाराज ! आप क्यों शोक करते हैं ? इस शोकमें आपकी सहायता कर सके, ऐसा कोई भी नहीं बच गया है । प्रजापते ! इस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ मारी गयी हैं । इस समय पृथ्वी मनुष्योंसे रहित होकर केवल सूनीसी दिखायी देती है ॥ ६ ॥

नानादिग्भ्यः समागम्य नानादेश्या नराधिपाः ।
सहितास्तव पुत्रेण सर्वे वै निधनं गताः ॥ ७ ॥

अनेक देशोंके विभिन्न दिशाओंसे आये हुये राजा तुम्हारे पुत्रोंके सहित सबके सब मारे गये हैं ॥ ७ ॥

पितॄणां पुत्रपौत्राणां ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
गुरूणां चानुपूर्व्येण प्रेतकार्याणि कारय ॥ ८ ॥

अब आप उठिये और अपने चाचा, ताऊ, पुत्र, पौत्र, भाई—बन्धु, सुहृद् तथा गुरुजनोंके प्रेतकर्म कीजिये ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं पुत्रपौत्रवधार्दितः।
पपात भुवि दुर्धर्षो वाताहत इव द्रुमः ॥ ९ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! सञ्जयके ऐसे करुणा भरे वचन सुनकर अपने पुत्र और पोतोंके वधसे व्याकुल हुए दुर्धर्ष राजा धृतराष्ट्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर गये, उस समय राजाकी ऐसी दशा हो गई, जैसे आँधीके उखाडे हुए वृक्षकी ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

हतपुत्रो हतामात्यो हतसर्वसुहृज्जनः।
दुःखं नूनं भविष्यामि विचरन्पृथिवीमिमाम् ॥ १० ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे संजय ! मेरे पुत्र, मन्त्री और सब मित्र मारे गये, अब मैं सत्यही इस पृथ्वीपर भटकता हुआ केवल दुःख ही भोगूंगा ॥ १० ॥

किं नु बन्धुविहीनस्य जीवितेन ममाद्य वै।
लूनपक्षस्य इव मे जराजीर्णस्य पक्षिणः ॥ ११ ॥

अब मैं बन्धु–बान्धवोंसे रहित होकर जीकर क्या करूंगा ? मेरी इस समय ऐसी दशा हो गई है, जैसे पङ्ख काटनेसे जराजीर्ण पक्षीकी ॥ ११ ॥

हृतराज्यो हतसुहृद्धृतचक्षुश्च वै तथा।
न भ्राजिष्ये महाप्राज्ञ क्षीणरश्मिरिवांशुमान् ॥ १२ ॥

महाप्राज्ञ ! मेरा राज्य छिन गया, सब मित्र भी मारे गये और आंख जाती रहीं; अब क्षीण किरणोंवाले सूर्यके समान मैं इस जगत्में प्रकाशित नहीं होऊंगा ॥ १२ ॥

न कृतं सुहृदो वाक्यं जामदग्न्यस्य जल्पतः।
नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ १३ ॥

मैंने पहिले अपने मित्र जमदग्निपुत्र परशुराम, देवर्षि नारद और श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास मुनिके हितके वचन नहीं माने थे ॥ १३ ॥

सभामध्ये तु कृष्णेन यच्छ्रेयोऽभिहितं मम।
अलं वैरेण ते राजन्पुत्रः संगृह्यतामिति ॥ १४ ॥

मुझसे जो सभाके बीचमें बैठकर श्रीकृष्णने कल्याण भरे वचन कहे थे कि– " हे राजन् ! वैर बढानेसे आपको क्या लाभ है ? अपने पुत्र दुर्योधनको रोकिये " ॥ १४ ॥

तच्च वाक्यमकृत्वाहं भृशं तप्यामि दुर्मतिः।
न हि श्रोतास्मि भीष्मस्य धर्मयुक्तं प्रभाषितम् ॥ १५ ॥

तब मैंने दुर्बुद्धिमें पडकर उनके वचन न माने और आज मैं अत्यन्त संतप्त हो रहा हूं। अब मैं भीष्मके धर्म भरे बचन भी नहीं सुन सकूंगा ॥ १५ ॥

+

दुर्योधनस्य च तथा वृषभस्येव नर्दतः ।
दुःशासनवधं श्रुत्वा कर्णस्य च विपर्ययम् ।
द्रोणसूर्योपरागं च हृदयं मे विदीर्यते ॥ १६ ॥

साँडके समान गर्जनेवाले दुर्योधनके वीरोचित भाषण भी अब मैं नहीं सुन सकूंगा। दुःशासन मारा गया, कर्ण नष्ट हुआ और द्रोणाचार्यरूपी सूर्यको भी ग्रहण लग गया, यह सब सुनकर मेरा हृदय फटता है ॥ १६ ॥

न स्मराम्यात्मनः किञ्चित्पुरा सञ्जय दुष्कृतम् ।
यस्येदं फलमद्येह मया मूढेन भुज्यते ॥ १७ ॥

हे सञ्जय ! मुझे स्मरण नहीं होता है कि मैंने इस जन्ममें कोई ऐसा पाप किया है, जिसका मुझ मूढको आज यह भयानक फल भोगना पड रहा है ॥ १७ ॥

नूनं ह्यपकृतं किञ्चिन्मया पूर्वेषु जन्मसु ।
येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान् ॥ १८ ॥

मुझे निश्चय है कि मैंने पूर्व जन्मोंमें कुछ ऐसा महान् पाप किया था, उसीसे ब्रह्माने मुझे ऐसे दुःखमय कर्मोंमें नियुक्त किया है ॥ १८ ॥

परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे ।
सुहृन्मित्रविनाशश्च दैवयोगादुपागतः ।
कोऽन्योऽस्ति दुःखिततरो मया लोके पुमानिह ॥ १९ ॥

मेरा यह बुढापा, सारे बन्धु-बान्धवोंका विनाश और प्रारब्धहीसे मेरे सुहृदों तथा मित्रोंका भी अन्त हो गया । अब इस जगत्में मुझसे बढकर महान् दुःखी और दूसरा कौन है ? ॥ १९ ॥

तन्मामद्यैव पश्यन्तु पाण्डवाः संशितव्रतम् ।
निवृतं ब्रह्मलोकस्य दीर्घमध्वानमास्थितम् ॥ २० ॥

इसलिये सब पाण्डव आज ही व्रतधारी मुझे ब्रह्म लोकके खुले हुए बडे मार्गपर आगे जाते देखें ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच—

तस्य लालप्यमानस्य बहुशोकं विचिन्वतः ।
शोकापहं नरेन्द्रस्य सञ्जयो वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— इस प्रकारसे राजा धृतराष्ट्रको बहुत शोक प्रकट करते हुए अनेक प्रकार रोते देख, सञ्जयने उनके शोकका निवारण करनेके लिये यह वचन कहा— ॥ २१ ॥

शोकं राजन्व्यपनुद श्रुतास्ते वेदनिश्चयाः ।
शास्त्रागमाश्च विविधा वृद्धेभ्यो नृपसत्तम ।
सृञ्जये पुत्रशोकार्ते यदूचुर्मुनयः पुरा ॥ २२ ॥

हे नृपश्रेष्ठ महाराज ! आपने बूढोंके मुखसे वेदोंके सिद्धान्त और अनेक प्रकारके शास्त्र एवं आगम सुने हैं, इनको पूर्व कालमें मुनियोंने राजा सृञ्जयको पुत्रशोकसे पीडित होनेपर सुनाया था; इसलिये आप शोकको छोड दीजिए ॥ २२ ॥

तथा यौवनजं दर्पमास्थिते ते सुते नृप ।
न त्वया सुहृदां वाक्यं ब्रुवतामवधारितम् ।
स्वार्थश्च न कृतः कश्चिल्लुब्धेन फलगृद्धिना ॥ २३ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन जब जवानीके घमंडमें आकर मनमाना बर्ताव करने लगा, तब आपने पहिले हितकी बात बतानेवाले मित्रोंके वचनपर ध्यान नहीं दिया । वह लोभी था और वह राज्यका उपभोग स्वयं ही लेना चाहता था, इस कारण उसने दूसरे किसीको अपने स्वार्थका सहायक नहीं किया ॥ २३ ॥

तव दुःशासनो मन्त्री राधेयश्च दुरात्मवान् ।
शकुनिश्चैव दुष्टात्मा चित्रसेनश्च दुर्मतिः ।
शल्यश्च येन वै सर्वं शल्यभूतं कृतं जगत् ॥ २४ ॥

दुःशासन, दुरात्मा राधापुत्र कर्ण, दुष्टात्मा शकुनि, दुर्मति चित्रसेन और जिसने सब जगत्को कण्टकमय बनाया था वह शल्य– ये ही लोग तुम्हारे मन्त्री थे ॥ २४ ॥

कुरुवृद्धस्य भीष्मस्य गान्धार्या विदुरस्य च ।
न कृतं वचनं तेन तव पुत्रेण भारत ॥ २५ ॥

हे भारत ! कुरुकुलके ज्ञानवृद्ध भीष्म, गान्धारी और विदुर, आदियोंके वचन आपके पुत्र दुर्योधनने न माने ॥ २५ ॥

न धर्मः सत्कृतः कश्चिन्नित्यं युद्धमिति ब्रुवन् ।
क्षपिताः क्षत्रियाः सर्वे शत्रूणां वर्धितं यशः ॥ २६ ॥

उसने कभी किसी धर्मका आदरपूर्वक आश्रय नहीं लिया; केवल सदा युद्ध करनेहीकी बात करता था; तुम्हारे पुत्रने सब क्षत्रियोंका नाश कराया और शत्रुओंका यश बढा दिया ॥ २६ ॥

मध्यस्थो हि त्वमप्यासीर्न क्षमं किञ्चिदुक्तवान् ।
धूर्धरेण त्वया भारस्तुलया न समं धृतः ॥ २७ ॥

तुम भी उस समय मध्यस्थ बनकर रहे थे, इसे कोई योग्य सलाह तुमने भी नहीं दी । आप दुर्धर्ष वीर थे– आप विरोध कर सकते थे, तो भी आपने तराजूके दोनों ओर समान बोझ नहीं रक्खा ॥ २७ ॥

आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथा क्षमम्।
यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते ॥ २८ ॥

मनुष्यको ऐसा उचित है कि, वह पहिले ही शक्तिके अनुसार यथायोग्य बर्ताव करे, जिसमें आगे उसे बीती हुई बातके लिये पश्चात्ताप न करना पडे ॥ २८ ॥

पुत्रगृद्ध्या त्वया राजन्प्रियं तस्य चिकीर्षता।
पश्चात्तापमिदं प्राप्तं न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २९ ॥

राजन् ! तुमने पुत्रके प्रति सदा प्रेममें आकर उसके अनुकूल ही प्रिय करना चाहा, इसलिये आपको यह पश्चातापका समय प्राप्त हुआ है, अब आपने शोक नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥

मधु यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं नानुपश्यति।
स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येव यथा भवान् ॥ ३० ॥

जो केवल शहद देखकर वृक्षपर चढ जाता है और वहांसे अपने गिरनेका भय नहीं देखता, वह उस शहदके लालचसे वृक्षपरसे नीचे गिरकर तुम्हारे ही समान शोक करता है ॥ ३० ॥

अर्थान्न शोचन्प्राप्नोति न शोचन्विन्दते सुखम्।
न शोचञ्श्रियमाप्नोति न शोचन्विन्दते परम् ॥ ३१ ॥

शोक करनेवाले मनुष्यको ईप्सित पदार्थोंको प्राप्त नहीं कर सकता, शोक करनेवाला किसी सुखको नहीं प्राप्त करता है। शोक करनेवालेको लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होती है और उसे परमात्मा भी नहीं मिलता है ॥ ३१ ॥

स्वयमुत्पादयित्वाग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयेत्।
दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य आप ही आग बनाकर पीछे उसे कपडेसे ढकता है और जलने पर मनस्तापका अनुभव करता है, वह पण्डित नहीं कहा जा सकता है ॥ ३२ ॥

त्वयैव ससुतेनायं वाक्यवायुसमीरितः।
लोभाज्येन च संसिक्तो ज्वलितः पार्थपावकः ॥ ३३ ॥

तुमने अपने पुत्रको सङ्ग लेकर लोभरूपी घी डालकर वचन रूपी वायुसे धौंककर और पार्थरूपी अग्निको प्रज्वलित कर दिया था ॥ ३३ ॥

तस्मिन्समिद्धे पतिताः शलभा इव ते सुताः।
तान्केशवार्चिर्निर्दग्धान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३४ ॥

उस प्रज्वलित हुई अग्निकी ज्वालामें तुम्हारे सब पुत्र पतङ्गके समान पडकर जल गये। केशवकी आगमें जलकर भस्म हुए, उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥

यच्चाश्रुपातकलिलं वदनं वहसे नृप ।
अशास्त्रदृष्टमेतद्धि न प्रशंसन्ति पण्डिताः ॥ ३५ ॥

राजन् ! अब जो तुम अपनी आंसुओंसे भीगा हुआ मुंह लिये रहे हैं, यह व्यवहार शास्त्रसे विरुद्ध कार्य है, पण्डित लोग इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥ ३५ ॥

विस्फुलिङ्गा इव ह्येतान्दहन्ति किल मानवान् ।
जहीहि मन्युं बुद्ध्या वै धारयात्मानमात्मना ॥ ३६ ॥

ये शोकके आंसू मनुष्योंको अग्निकी चिनगारियोंके समान निःसंशय भस्म करते हैं, इसलिये आप शोक-क्रोधको छोडिये और बुद्धिके द्वारा अपने आत्माको स्वयं ही शान्त कीजिये ॥ ३६ ॥

एवमाश्वासितस्तेन संजयेन महात्मना ।
विदुरो भूय एवाह बुद्धिपूर्वं परंतप ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ३७ ॥

शत्रुओंको त्रस्त करनेवाले जनमेजय ! जब महात्मा सञ्जयने ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रको आश्वासन दिया, तब विदुरने भी राजाको फिर शांति देते हुए यह विचारपूर्वक कहा ॥ ३७ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ ३७ ॥

: २ :

वैशम्पायन उवाच—

ततोऽमृतसमैर्वाक्यैर्ह्लादयन्पुरुषर्षभम् ।
वैचित्रवीर्यं विदुरो यदुवाच निबोध तत् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! तब पुरुषसिंह विचित्रवीर्यपुत्र धृतराष्ट्रके पास आकर विदुरने अमृततुल्य वाक्योंके समान वचनोंसे आनन्द देते हुए वहां जो कुछ कहा सो तुम सुनो ॥ १ ॥

विदुर उवाच—

उत्तिष्ठ राजन्किं शेषे धारयात्मानमात्मना ।
स्थिरजङ्गममर्त्यानां सर्वेषामेष निर्णयः । ॥ २ ॥

विदुर बोले— हे लोकनाथ ! हे महाराज ! आप क्यों भूमिपर पडे हैं ? उठिये, और बुद्धिसे जगत्में सब स्थिर, चर और मनुष्योंकी अन्तमें यही गति है ॥ २ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ ३ ॥

अपने आत्माको शान्त कीजिये । जगत्में जितनी सञ्चय की हुई वस्तु हैं, उन सबका एक दिन नाश होता है। जितनी ऊंची वस्तु हैं, वे सब एक दिन नीची होती हैं, जितने संयोग हैं उन सबका अन्तमें वियोग होता है । इसी प्रकार सब उत्पन्न होनेवालोंका अन्त मृत्युमेंही है ॥ ३ ॥

यदा शूरं च भीरुं च यमः कर्षति भारत ।
तत्किं न योत्स्यन्ति हि ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४ ॥

हे भरत नन्दन ! क्षत्रियश्रेष्ठ ! जब शूर और कायर इन दोनोंको ही यमराज खींचकर ले जाते हैं, तब वीर क्षत्रिय लोग युद्ध क्यों नहीं करते ? ॥ ४ ॥

अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति ।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते ॥ ५ ॥

महाराज ! जो युद्ध नहीं करता वह भी मर जाता है और जो युद्ध करता है, वह भी जीवित रहता है । काल आनेपर कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

न चाप्येतान्हतान्युद्धे राजञ्शोचितुमर्हसि ।
प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम् ॥ ६ ॥

राजन् ! युद्धमें मारे गये इन वीरोंके लिये तो आपको शोक करना योग्य नहीं है । यदि आप शास्त्रोंको प्रमाण मानते हैं, तो निश्चयही ये सब क्षत्रिय परम गतिको गये हुए हैं ॥६॥

सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः ।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिवेदना ॥ ७ ॥

ये सब क्षत्रिय वेदोंका अध्ययन करनेवाले थे; सब व्रतधारी थे; और सब युद्धमें सामना करते हुए मरे हैं; इस कारण उनके लिये रोनेकी क्या बात है ? ॥ ७ ॥

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः ।
न ते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना ॥ ८ ॥
हतोऽपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः ।
उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे ॥ ९ ॥

सब अदृश्य जगत्से यहां आए थे और फिर अदृश्य जगत्में गये हुए हैं । ये तुम्हारे कोई नहीं थे और तुम उनके कोई नहीं हो; इसलिये यहां शोक करनेका कारण क्या है ? क्षत्रियोंको दोनों ही अवस्थाएं लाभप्रद हैं, अर्थात् युद्धमें जो मारा जाता है तो वह स्वर्ग प्राप्त करता है और शत्रुओंको मारता है तो उसे यश मिलता है; युद्धमें तो निष्फलता है ही नहीं ॥ ८–९ ॥

तेषां कामदुघाल्ँलोकानिन्द्रः संकल्पयिष्यति ।
इन्द्रस्यातिथयो ह्येते भवन्ति पुरुषर्षभ ॥ १० ॥

पुरुषश्रेष्ठ! जो क्षत्रिय युद्धमें मरते हैं वे सब इन्द्रके अतिथि बनते हैं, इन्द्र उनको इच्छानुसार सुख देनेवाले लोकोंको देते हैं ॥ १० ॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया ।
स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः ॥ ११ ॥

जिस प्रकार युद्धमें मारे गये क्षत्रियोंको सुगमतासे स्वर्ग मिलता है, ऐसा बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञ और अनेक तपस्या करनेसे भी नहीं मिलता और ऐसा सुख अनेक विद्या पढनेसे भी नहीं मिलता है ॥ ११ ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ १२ ॥

जगत्में सहस्रों माता-पिता और सैकडों स्त्री-पुत्रोंके सुखका अनुभव हम ले चुके हैं, परंतु आज वे किसके हैं और हम किसके हैं ? ॥ १२ ॥

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ १३ ॥

जगत्में शोकके सहस्रों स्थान हैं और भयके भी सैकडों स्थान हैं, उनमें प्रतिदिन मूर्ख लोग ही प्रभावित होकर जाते हैं, पण्डित नहीं ॥ १३ ॥

न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ।
न मध्यस्थः क्वचित्कालः सर्वं कालः प्रकर्षति ॥ १४ ॥

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! कालका कोई भी प्रिय मित्र, शत्रु और मध्यस्थ नहीं है, वह समान रूपसे सबको अपने पास खींचकर लाता है ॥ १४ ॥

अनित्यं जीवितं रूपं यौवनं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येदेषु न पण्डितः ॥ १५ ॥

जीवन, रूप, यौवन, द्रव्य संचय, आरोग्य और प्रिय लोगोंका सङ्ग ये सब अनित्य हैं, इसलिये पण्डित लोग इनकी इच्छा न करें ॥ १५ ॥

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते ॥ १६ ॥

सब जगत्के दुःखको आप अकेले अपने ऊपर लेकर शोक करना आपको उचित नहीं है । क्योंकि शोक करते ही कोई मर जाय तो भी उसका दुःख दूर नहीं होता है ॥ १६ ॥

अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत्पराक्रमम् ।
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि विवर्धते　　॥ १७ ॥

यदि मनुष्य अपना पराक्रम देखे तो विना शोक किये ही शोकका निवारण करनेका प्रयत्न करे । शोकरूपी दुःख दूर करनेकी यही औषधी है, कि उसका चिन्तन छोड दिया जाय । चिन्तन करनेसे शोक नष्ट नहीं होता, बरन उलटा बढता ही है ॥ १७ ॥

अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च ।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते येऽल्पबुद्धयः　　॥ १८ ॥

अल्पबुद्धिवाले मनुष्यही अप्रिय वस्तुका संयोग और प्रिय वस्तुका वियोग होनेसे मानसिक दुःखोंसे जलने लगते हैं ॥ १८ ॥

नार्थो न धर्मो न सुखं यदेतदनुशोचसि ।
न च नापैति कार्यार्थात्त्रिवर्गाच्चैव भ्रश्यते　　॥ १९ ॥

आप जो यह शोक करते हैं, इससे अर्थ, धर्म और कोई सुख भी सिद्ध नहीं होगा । इससे मनुष्य अपने कर्तव्यरूपी मार्गसे भ्रष्ट होता है, तथा धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिबर्गसे भी वंचित होता है ॥ १९ ॥

अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ।
असंतुष्टाः प्रमुह्यन्ति संतोषं यान्ति पण्डिताः　　॥ २० ॥

साधारण असंतुष्ट मनुष्य धनकी नानाप्रकारकी अवस्थाओंको पाकर मोहित हो जाते हैं; परन्तु पण्डित सदा सन्तुष्ट होते चले जाते हैं ॥ २० ॥

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतज्ज्ञानस्य सामर्थ्यं न बालैः समतामियात्　　॥ २१ ॥

मनुष्य मनके दुःखको बुद्धि एवं विचार द्वारा और शारीरिक कष्टको औषधियोंसे दूर करे, यह ज्ञानका सामर्थ्य है । उसको बालकोंके समान अविवेकी बर्ताव नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

शयानं चानुशयति तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति ।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम्　　॥ २२ ॥

पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म मनुष्यके सोनेपर सोता है, उठनेपर साथही उठता है और दौडनेपर साथही दौडता है ॥ २२ ॥

यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत्फलमुपाश्नुते　　॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ६० ॥

मनुष्य जिस जिस अवस्थामें जो जो शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी उसी अवस्थामें उसका वैसा ही फल भोगता है ॥ २३ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ६० ॥

: ३ :

धृतराष्ट्र उवाच—

सुभाषितैर्महाप्राज्ञ शोकोऽयं विगतो मम ।
भूय एव तु वाक्यानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे महाबुद्धिमान् ! तुम्हारे उत्तम वचन सुननेसे मेरा यह शोक नष्ट हो गया, परंतु तुम्हारे इन तात्त्विक वचनोंको अब कुछ और सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥

अनिष्टानां च संसर्गादिष्टानां च विवर्जनात् ।
कथं हि मानसैर्दुःखैः प्रमुच्यन्तेऽत्र पण्डिताः ॥ २ ॥

हम तुमसे प्रश्न करते हैं, कि अनिष्ट वस्तुओंके संयोग और प्यारी वस्तुओंके वियोगसे होनेवाले मानसिक दुःखसे पण्डित लोग किस प्रकार विमुक्त होते हैं ? ॥ २ ॥

विदुर उवाच—

यतो यतो मनो दुःखात्सुखाद्वापि प्रमुच्यते ।
ततस्ततः शमं लब्ध्वा सुगतिं विन्दते बुधः ॥ ३ ॥

विदुर बोले– हे राजन् ! जिस जिस वस्तुसे मनमें दुःख वा सुख होता हो, पण्डित उनहीसे दूर रहे और अपने मनको वशमें रखकर शान्ति प्राप्तकर उत्तम गतिको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ ।
कदलीसंनिभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते ॥ ४ ॥

हे पुरुषसिंह ! आप अत्यन्त विचार कर देखिये तो यह सब जगत् अनित्यही मालूम होता है । संपूर्ण विश्व केलेके वृक्षके समान सारहीन है; इसमें सार कुछ भी नहीं है ॥ ४ ॥

गृहाण्येव हि मर्त्यानामाहुर्देहानि पण्डिताः ।
कालेन विनियुज्यन्ते सत्त्वमेकं तु शोभनम् ॥ ५ ॥

पण्डितोंने मरनेवाले प्राणियोंके शरीरोंको घरके समान कहा है, जैसे घर टूटनेसे घरका स्वामी नहीं मर जाता; ऐसे ही समयपर शरीर नष्ट हो जाते हैं, परंतु अंदर जो सत्त्वस्वरूप आत्मा है, वह मनोहर है ॥ ५ ॥

यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु वै नरः ।
अन्यद्रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ ६ ॥

जैसे मनुष्य नये अथवा पुराने वस्त्र छोडकर दूसरे नवीन वस्त्र पहिननेकी इच्छा करता है, ऐसे ही देहधारी प्राणियोंके शरीर समयपर छोडे और धारण किये जाते हैं ॥ ६ ॥

+

वैचित्रवीर्य वासं हि दुःखं वा यदि वा सुखम् ।
प्राप्नुवन्तीह भूतानि स्वकृतेनैव कर्मणा ॥ ७ ॥

हे विचित्रवीर्यपुत्र ! मनुष्य विना कुछ कर्म किये फल नहीं भोगते । जो सुख अथवा दुःख मिलनेवालाही है तो मनुष्य अपने ही किये कर्मोंसे भोगते हैं ॥ ७ ॥

कर्मणा प्राप्यते स्वर्गं सुखं दुःखं च भारत ।
ततो वहति तं भारमवशः स्ववशोऽपि वा ॥ ८ ॥

भारत ! कर्मसेही स्वर्ग या नरक और इस जगत्में सुख या दुःख प्राप्त होते हैं; और मनुष्य उस सुख या दुःखके भारको स्वतंत्र या परतंत्र होकर वहता है ॥ ८ ॥

यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते ।
किञ्चित्प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापि वा ॥ ९ ॥

जैसे कोई मिट्टीका बरतन बनाते समय चाक पर चढाते ही फूट जाता है, कभी कोई बनते समय और कोई पूरा बन जानेपर टूटता है ॥ ९ ॥

छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा ।
आर्द्रं वाप्यथ वा शुष्कं पच्यमानमथापि वा ॥ १० ॥

कभी कोई सूतसे काट देनेपर, कभी कोई चाकसे उतारते समय, कोई उतर जानेपर, कभी गीली अथवा सूखी अवस्थामें, कभी पकाये जाते समय ॥ १० ॥

अवतार्यमाणमापाकादुद्धृतं वापि भारत ।
अथ वा परिभुज्यन्तमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ ११ ॥

कभी आवाँसे उतारते समय, कभी पूर्ण बननेके बाद पाकस्थानसे उठाते समय अथवा कभी उसे उपयोगमें लाते समय फूट जाता है; ऐसीही अवस्था देहधारी प्राणियोंके शरीरोंकी होती है ॥ ११ ॥

गर्भस्थो वा प्रसूतो वाप्यथ वा दिवसान्तरः ।
अर्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपि वा ॥ १२ ॥

कोई गर्भहीमें उत्पन्न होतेही, कोई प्रसूत होनेपर, कोई कुछ दिनोंका होनेपर, कोई पंद्रह दिनका, कोई एक महिनेका ॥ १२ ॥

संवत्सरगतो वापि द्विसंवत्सर एव वा ।
यौवनस्थोऽपि मध्यस्थो वृद्धो वापि विपद्यते ॥ १३ ॥

अथवा कोई एक या दो वर्षका होनेपर, कोई यौवनावस्थामें, कोई मध्यमावस्थामें और कोई वृद्ध होनेपर मर जाता है ॥ १३ ॥

प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुतप्यसे ॥ १४ ॥

पूर्वजन्मके कर्मोंके वशमें होकर प्राणी इस जगत्में उत्पन्न होते हैं और मरते हैं । यह संसार अपने स्वभावसे ऐसे ही चलता है, तो आप किसलिये शोक कर रहे हैं ? ॥ १४ ॥

यथा च सलिले राजन्क्रीडार्थमनुसंचरन् ।
उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किञ्चित्सत्त्वं नराधिप ॥ १५ ॥

राजन् ! नरश्रेष्ठ ! जैसे कोई प्राणी खेलनेके लिये पानीमें तैरता है, उसमें कभी डूब जाता है और कभी उछलता है ॥ १५ ॥

एवं संसारगहनादुन्मज्जननिमज्जनात् ।
कर्मभोगेन बध्यन्तः क्लिश्यन्ते येऽल्पबुद्धयः ॥ १६ ॥

ऐसे ही इस गहन जगत्में जीवोंका मरना और जन्म लेना चलता रहता है; अल्पबुद्धिवाले मनुष्यही यहां कर्मके वशमें होकर बन्धते हैं और दुःख भोगते हैं ॥ १६ ॥

ये तु प्राज्ञाः स्थिताः सत्ये संसारान्तगवेषिणः ।
समागमज्ञा भूतानां ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ७७ ॥

परन्तु कल्याण चाहनेवाले पण्डित इन सब दुःखोंसे छूटकर मोक्ष पदको पाते हैं । जो बुद्धिवान् लोग इस जगत्में सत्य गुणसे युक्त सबका शोध लेनेवाले और प्राणियोंके मीलनको कर्मानुसार मानते हैं, वेही परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ ७७ ॥

: ४ :

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं संसारगहनं विज्ञेयं वदतां वर ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले— हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ बिदुर ! इस गहन संसारके विषयमें ज्ञान कैसे होगा ? हम इस विषयको सुनना चाहते हैं, तुम मेरे पृच्छाके अनुसार इसका वर्णन कहो ॥ १ ॥

विदुर उवाच—

जन्मप्रभृति भूतानां क्रियाः सर्वाः शृणु प्रभो ।
पूर्वमेवेह कलिले बसते किञ्चिदन्तरम् ॥ २ ॥

विदुर बोले—प्रभो ! जीवोंको जन्महीसे सब क्रिया करनी होती हैं, उनको सुनिये । पहिले जब स्त्रीके गर्भमें वीर्य और स्त्रीका रज मिलता है, तब ही जीव कलिलके रूपमें बास करता है ॥२॥

ततः स पञ्चमेऽतीते मासे मांसं प्रकल्पयेत् ।
ततः सर्वाङ्गसंपूर्णो गर्भो मासे प्रजायते ॥ ३ ॥

फिर क्रमसे जब पांच महीने बीत जाते हैं, तब वह मांसयुक्त होता है, फिर उस गर्भस्थ बालकके सब अङ्ग पुरे हो जाते हैं, और वह चैतन्यरूप होता है ॥ ३ ॥

अमेध्यमध्ये वसति मांसशोणितलेपने ।
ततस्तु वायुवेगेन ऊर्ध्वपादो ह्यधःशिराः ॥ ४ ॥

उस समय उसे मांस और रुधिर युक्त अपवित्र गर्भाशयमें रहना पडता है । फिर वायुके वेगसे उसके पैर ऊपरको और सिर नीचेकी ओर हो जाते हैं ॥ ४ ॥

योनिद्वारमुपागम्य बहून्क्लेशान्समृच्छति ।
योनिसंपीडनाच्चैव पूर्वकर्मभिरन्वितः ॥ ५ ॥

इस स्थितिमें योनिके द्वारके पास आकर उसे बहुत कष्ट सहन करने पडते हैं । पूर्व जन्मके कर्मोंसे युक्त वह जीव योनिमार्गसे पीडित होकर ॥ ५ ॥

तस्मान्मुक्तः स संसारादन्यान्पश्यत्युपद्रवान् ।
ग्रहास्तमुपसर्पन्ति सारमेया इवामिषम् ॥ ६ ॥

जब उस घोर आपत्तिसे छूटता है और बाहर आता है, तब संसारमें आकर अनेक उपद्रवोंको सामना करता और देखता है । जैसे मांसकी ओर कुत्ते टूट पडते हैं, उसी प्रकार ग्रह उस बालकके पीछे लगते हैं ॥ ६ ॥

ततः प्राप्तोत्तरे काले व्याधयश्चापि तं तथा ।
उपसर्पन्ति जीवन्तं बध्यमानं स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥

फिर जब कुछ समय बीत जाता है, तब अपने पहिले कर्मोंसे बंधे हुए उस जीवको जीवित रहते हुए अनेक रोग आकर पीडा देते हैं ॥ ७ ॥

बद्धमिन्द्रियपाशैस्तं सङ्गस्वादुभिरातुरम् ।
व्यसनान्युपवर्तन्ते विविधानि नराधिप ।
बध्यमानश्च तैर्भूयो नैव तृप्तिमुपैति सः ॥ ८ ॥

राजन् ! जब उस मनुष्यको आसक्तिके कारण रसास्वाद मिलता है, उनसे घिर कर और इन्द्रियरूपी पशोंसे बंधे हुए उस जीवको अनेक प्रकारके संकट आकर घेर लेते हैं; उनसे बंध जानेपर फिर इसे कभी तृप्तिही नहीं होती है ॥ ८ ॥

अयं न बुध्यते तावद्यमलोकमथागतम् ।
यमदूतैर्विकृष्यंश्च मृत्युं कालेन गच्छति ॥ ९ ॥

सामान्य जीव अपने सामने आये हुए यमलोकको भी नहीं जान सकता । नंतर काल प्रेरित हो यमदूत उसे खींच लेते हैं और वह मर जाता है ॥ ९ ॥

वाग्घीनस्य च यन्मात्रमिष्टानिष्टं कृतं मुखे ।
भूय एवात्मनात्मानं बध्यमानमुपेक्षते ॥ १० ॥

उस समय वह वाचाहीन होता है । उसने जो पहिले पुण्य और पापकर्म किये हैं वे उसे याद आते हैं। उनके अनुसार स्वयंको देहबंधनमें बंधता हुआ देखकर भी वह अपने कल्याणका प्रयत्न नहीं करता, उपेक्षा करता रहता है ॥ १० ॥

अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः ।
लोभक्रोधमदोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते ॥ ११ ॥

देखो कैसे आश्चर्यकी बात है, कि सब जगत् लोभके वशमें पडकर धोका खा रहा है। देखो, मनुष्य लोभ, क्रोध और मदसे पागल होकर अपने आपका कुछ ज्ञान नहीं करता ॥ ११ ॥

कुलीनत्वेन रमते दुष्कुलीनान्विकुत्सयन् ।
धनदर्पेण दृप्तश्च दरिद्रान्परिकुत्सयन् ॥ १२ ॥

हम कुलीन हैं इस अभिमानसे हीन कुलवालोंकी निन्दा करता हुआ कुलीन मनुष्य स्वयंमें रमता है और धनवान् धनके अभिमानसे दरिद्रियोंकी निन्दा करता है ॥ १२ ॥

मूर्खानिति परानाह नात्मानं समवेक्षते ।
शिक्षां क्षिपति चान्येषां नात्मानं शास्तुमिच्छति ॥ १३ ॥

वह दूसरोंको मूर्ख कहता है परंतु स्वयंकी ओर कभी नहीं देखता; दूसरोंके दोष देखाता है, और उनपर आक्षेप कराता है, परन्तु अपने दोषोंको दूर करनेकी इच्छा नहीं करता, अपनेको नियंत्रणमें नहीं रखना चाहता ॥ १३ ॥

अध्रुवे जीवलोकेऽस्मिन्यो धर्ममनुपालयन् ।
जन्मप्रभृति वर्तेत प्राप्नुयात्परमां गतिम् ॥ १४ ॥

जो इस तत्वको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे जानकर या सुनकर इस अनित्य क्षणभंगुर जीवलोकमें अपने धर्मको जन्मसे ही सदैव पालता है, वह परम गतिको पाता है ॥ १४ ॥

एवं सर्वं विदित्वा वै यस्तत्त्वमनुवर्तते ।
स प्रमोक्षाय लभते पन्थानं मनुजाधिप ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ९२ ॥

पृथ्वीनाथ ! जो इस प्रकार सब तत्वको जानकर ऐसा ही बर्ताव करता है, वह मोक्षतक पहुंचनेके लिये मार्ग प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ ९२ ॥

: ५ :

धृतराष्ट्र उवाच—

यदिदं धर्मगहनं बुद्ध्या समनुगम्यते ।
एतद्विस्तरशः सर्वं बुद्धिमार्गं प्रशंस मे ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले– हे विदुर ! तुमने जो धर्मके गूढ स्वरूपका वर्णन किया सो बुद्धिसे ही जानने योग्य है; इसलिये तुम इसही संपूर्ण बुद्धिमार्गका विस्तारपूर्वक वर्णन हमको सुनाओ ॥ १ ॥

विदुर उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ।
यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः ॥ २ ॥

विदुर बोले– हे महाराज ! हम स्वयंभूको प्रणाम करके आपसे इस संसाररूपी गहन वनका उसी ही प्रकार वर्णन करते हैं, जैसे महर्षियोंने कहा है ॥ २ ॥

कश्चिन्महति संसारे वर्तमानो द्विजः किल ।
वनं दुर्गमनुप्राप्तो महत्क्रव्यादसंकुलम् ॥ ३ ॥

इस महान् संसारमें कोई एक ब्राह्मण अपना जीवन बिता रहा था । वह एक समय वनके दुर्गम प्रदेशमें, जहां अत्यंत हिंसक पशु भरे हुए थे, जा पहुंचा ॥ ३ ॥

सिंहव्याघ्रगजाकारैरतिघोरैर्महाशनैः ।
समन्तात्संपरिक्षिप्तं मृत्योरपि भयप्रदम् ॥ ४ ॥

वह वन अत्यन्त भयानक और मांसभक्षी सिंह, व्याघ्र और हाथी आदि मोटे आकारवाले प्राणियोंसे चारों ओरसे घेरा हुआ था; उसे देखकर प्रत्यक्ष मृत्यु यमभी भयभीत होवे ॥ ४ ॥

तदस्य दृष्ट्वा हृदयमुद्वेगमगमत्परम् ।
अभ्युच्छ्रयश्च रोम्णां वै विक्रियाश्च परंतप ॥ ५ ॥

शत्रुको संताप देनेवाले राजन् ! वह वन देखकर इस ब्राह्मणका हृदय अत्यंत उद्विग्न हो गया । उसके रोएं खडे हो गये और उसका मन विकार युक्त हो गया ॥ ५ ॥

स तद्वनं व्यनुसरन्विप्रधावन्नितस्ततः ।
वीक्षमाणो दिशः सर्वाः शरणं क भवेदिति ॥ ६ ॥

वह उस वनमें घूमता हुआ इधर उधर दौडने लगा; और चारों ओर देखकर ढूंढने लगा कि कहीं अपनेको आश्रयस्थान मिले ॥ ६ ॥

स तेषां छिद्रमन्विच्छन्प्रद्रुतो भयपीडितः ।
न च निर्याति वै दूरं न च तैर्विप्रयुज्यते ॥ ७ ॥

वह उन हिंस्र प्राणियोंका छिद्र देखता हुआ भयभीत होकर दौडने लगा; परंतु वह वहांसे दूर नहीं निकल सका और वेही उसका पीछा नहीं छोडते थे ॥ ७ ॥

अथापश्यद्वनं घोरं समन्ताद्वागुरावृतम् ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वक्तं स्त्रिया परमघोरया ॥ ८ ॥

अनंतर वह घोर वन चारों ओरसे जालसे घिरा हुआ है और एक अत्यंत भयंकर स्त्रीने अपनी दोनों बाहुओंसे उसको परिवेष्टित किया है, ऐसा उसने देखा ॥ ८ ॥

पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः ।
नभःस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम् ॥ ९ ॥

फिर पर्वतोंके समान ऊंचे और पांच सिरवाले विषीले सांपोंसे तथा आकाशके समान बडे बडे वृक्षोंसे वह महान् वन वेष्टित है; ॥ ९ ॥

वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः ।
वल्लीभिस्तृणछन्नाभिर्गूढाभिरभिसंवृतः ॥ १० ॥

उस वनमें एक कुआं था, वह घासोंसे ढकी हुई गूढ लताओंसे सब ओरसे आच्छादित था ॥ १० ॥

पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ।
विलग्नश्चाभवत्तस्मिँल्लतासंतानसंकटे ॥ ११ ॥

फिर वह ब्राह्मण उस छिपे हुए कुंएमें गिर पडा, परंतु लताओंसे व्याप्त होनेके कारण वह उसमें अटककर नीचे नहीं गिरा, ऊपरही लटकता रह गया। नीचे गिरनेके संकटसे बच गया ॥ ११ ॥

पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम् ।
स तथा लम्बते तत्र ऊर्ध्वपादो ह्यधःशिराः ॥ १२ ॥

वह ब्राह्मण ऊपरको पैर और नीचेको सिर होकर उस कुएंमें लटक गया, जैसे कटहलका मोटा फल वृन्तमें बंधा हुआ लटकता रहता है ॥ १२ ॥

अथ तत्रापि चान्योऽस्य भूयो जात उपद्रवः ।
कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम् ॥ १३ ॥

तब वहां भी उसने फिर दूसरा एक उपद्रव खडा हुआ देखा। कुएके ऊपरके तटपर उसके मुखके पास एक बडा मतवाला हाथी खडा देखा ॥ १३ ॥

षड्वक्त्रं कृष्णशबलं द्विषट्कपदचारिणम् ।
क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ॥ १४ ॥

उस हाथीके छः मुह थे, वह काले विचित्र रङ्गका था और बारह पैरोंसे चलता था; और वह लताओं और वृक्षोंसे घिरे हुए कूपमें क्रमसे उसहीकी ओर चला आता था ॥ १४ ॥

तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः ।
नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः ।
आसते मधु संभृत्य पूर्वमेव निकेतजाः ॥ १५ ॥

जिस वृक्षकी शाखापर वह ब्राह्मण लटका था उसकी छोटी छोटी डालियोंमें पहलेसेही मधुके छत्तोंसे पैदा हुई अनेक रूपवाली, घोर एवं भयानक मधुमक्खियां घेरकर बैठी थीं ॥१५॥

भूयो भूयः समीहन्ते मधूनि भरतर्षभ ।
स्वादनीयानि भूतानां न यैर्बालोऽपि तृप्यते ॥ १६ ॥

भरतसिंह ! सब प्राणियोंको स्वादिष्ट लगनेवाले शहदको, जिसको चाखकर बालक कभी तृप्त नहीं होते, वे मक्खियां बार बार पीना इच्छती थीं ॥ १६ ॥

तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते सदा ।
तां लम्बमानः स पुमान्धारां पिबति सर्वदा ।
न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य संकटे ॥ १७ ॥

उस शहदकी अनेक धाराएं सतत झर रही थीं और वह लटका हुआ ब्राह्मण सतत उस शहदकी धाराको पी रहा था । वह संकटमें था, और उस शहदको पीते पीते उसकी प्यास नहीं बुझती थी ॥ १७ ॥

अभीप्सति च तां नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः ।
न चास्य जीविते राजन्निर्वेदः समजायत ॥ १८ ॥

वह अतृप्त रहकर बार बार उसे पीनेकी इच्छा करता था । राजन् ! उसे अपने उस जीवनसे खेद नहीं हुआ ॥ १८ ॥

तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता ।
कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति स्म मूषकाः ॥ १९ ॥

वहीं उसके मनमें जीवित रहकर शहद पीते रहनेकी आशा स्थित हुई । फिर उस ब्राह्मणने देखा कि कई काले और कई सफेद चूहे जिस लताको मैं पकडे रहा हूं, उसे काट रहे हैं ॥१९॥

व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया ।
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च ॥ २० ॥

पहले उसे दुर्गम वनमें अनेक सर्पों–व्याघ्रोंसे, दूसरा भयंकर स्त्रीसे, तीसरा कुएंके नीचे बैठे नागसे चौथा कुएंके मुखके पास खडे हुए हाथीसे ॥ २० ॥

वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषकेभ्यश्च पञ्चमम् ।
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद्भयम् ॥ २१ ॥

और पांचवां चूहोंके काट देनेपर वृक्षसे गिर जानेका भय है। शहदके लोभसे मधुमक्खियोंका जो महान् भय है वह छठा भय कहा गया है ॥ २१ ॥

एवं स वसते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे ।
न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ११४ ॥

इस प्रकार संसार-सागरमें गिरा हुआ वह मनुष्य इतने भयोंसे व्याप्त होकर वहां रहता है; और जीनेकी आशा रखता है। उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न नहीं होता ॥ २२ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें पांचवां अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ ११४ ॥

: ६ :

धृतराष्ट्र उवाच—

अहो खलु महद्दुःखं कृच्छ्रवासं वसत्यसौ ।
कथं तस्य रतिस्तत्र तुष्टिर्वा वदतां वर ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले— हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ विदुर ! आश्चर्यकी बात है कि वह ब्राह्मण महान् दुःख प्राप्त करके महाकष्टमें पडकर रहा था; तो भी वह वहां कैसे प्रसन्न और तृप्त होता था ? ॥ १ ॥

स देशः क नु यत्रासौ वसते धर्मसंकटे ।
कथं वा स विमुच्येत नरस्तस्मान्महाभयात् ॥ २ ॥

वह देश कहां है, जहां वह ब्राह्मण धर्मके सङ्कटमें रहता है ? वह उस महान् भयसे कैसे छूट सकता है ? ॥ २ ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व साधु चेष्टामहे तथा ।
कृपा मे महती जाता तस्याभ्युद्धरणेन हि ॥ ३ ॥

हम सब उसको वहांसे निकालनेका प्रयत्न करेंगे, मुझे उसके उद्धारके लिये बहुत दया आयी है, तुम यह सब मुझसे वर्णन करो ॥ ३ ॥

विदुर उवाच—

उपमानमिदं राजन्मोक्षविद्भिरुदाहृतम् ।
सुगतिं विन्दते येन परलोकेषु मानवः ॥ ४ ॥

विदुर बोले— हे महाराज ! मोक्ष तत्त्वके जाननेवाले महात्माओंने यह वृत्तान्त कहा है, इसे समझकर मनुष्य परलोकमें उत्तम गति प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

यत्तदुच्यति कान्तारं महत्संसार एव सः ।
वनं दुर्गं हि यत्त्वेतत्संसारगहनं हि तत् ॥ ५ ॥

जो भयानक वन कहा गया है वही घोर संसार ही है। जो दुर्गम वन कहा है, वह संसारका ही गहन रूप है ॥ ५ ॥

ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्तिताः ।
या सा नारी बृहत्काया अधितिष्ठति तत्र वै ।
तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा वर्णरूपविनाशिनीम् ॥ ६ ॥

जो सर्प कहे हैं, वे सब प्रकारके रोग हैं; जो बडी शरीरवाली स्त्री वहां खडी थी वह यौवन और रूप नाश करनेवाला बुढापा है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ६ ॥

यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम् ।
यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः ।
अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ ॥ ७ ॥

हे नृपते ! उस वनमें जो कुआं है, वह देहधारियोंका शरीर है; उसमें नीचे जो बडा सांप रहता है, वह काल ही है; वह सब प्राणियोंका अन्त करता है और शरीरधारियोंका सर्वस्व हरण कर लेता है ॥ ७ ॥

कूपमध्ये च या जाता वल्ली यत्र स मानवः ।
प्रताने लम्बते सा तु जीविताशा शरीरिणाम् ॥ ८ ॥

उस कूवेके मध्यमें जो घास उत्पन्न हुई है, जिसको मनुष्य पकडकर लटक रहा है, वही देहधारियोंके जीनेकी आशा है ॥ ८ ॥

स यस्तु कूपवीनाहे तं वृक्षं परिसर्पति ।
षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन्स तु संवत्सरः स्मृतः ।
मुखानि ऋतवो मासाः पादा द्वादश कीर्तिताः ॥ ९ ॥

जो इस कुएंके मुखके पासके वृक्षकी ओर छः मुखोंवाला हाथी आगे आता रहा है, वही संवत्सर है; छ ऋतु उसके मुख और बारह महीने उसके पैर समझे गये हैं ॥ ९ ॥

ये तु वृक्षं निकृन्तन्ति मूषकाः सततोत्थिताः ।
रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः ॥
ये ते मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः ॥ १० ॥

और जो चूहे सतत तत्पर रहकर उस वृक्षको काट रहे हैं, उनको विचारशील पण्डित प्राणियोंके दिन रात कहते हैं; इसमें जो शहदकी मक्खियां हैं, वे कामनाएं हैं ॥ १० ॥

यास्तु ता बहुशो धाराः स्रवन्ति मधुनिस्रवम् ।
तांस्तु कामरसान्विद्याद्यत्र मज्जन्ति मानवाः ॥ ११ ॥

जो अनेक धाराएं मधुकी बहती हैं, वेही इच्छाओंके रस हैं; मनुष्य उसीमें डूबता और उछलता है ॥ ११ ॥

एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तिं स्म ये विदुः ।
ते वै संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ १२६ ॥

पण्डित इस प्रकार इस संसारचक्रकी गतिको जानते हैं, इसी प्रकार वे पण्डित लोग इस संसारके बंधनोंको जानते हैं और बंधनोंको काट देते हैं ॥ १२ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ १२६ ॥

: ७ :

धृतराष्ट्र उवाच—

अहोऽभिहितमाख्यानं भवता तत्त्वदर्शिना ।
भूय एव तु मे हर्षः श्रोतुं वागमृतं तव ॥ १ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले— हे विदुर ! तुम तत्त्ववेत्ता पण्डित हो, तुमने जो मित्रके समान वचन कहे, इन अमृतमय वचनोंको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं, अब तुम कुछ और वर्णन करो ॥ १ ॥

विदुर उवाच—

शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि मार्गस्यैतस्य विस्तरम् ।
यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यन्ते संसारेभ्यो विचक्षणाः ॥ २ ॥

विदुर बोले— हे राजन् ! आप सुनिये, अब हम इस ही विषयको फिर विस्तारसे वर्णन करते हैं। इस ही तत्वको जानकर पण्डित लोग संसारबन्धनसे छूट जाते हैं ॥ २ ॥

यथा तु पुरुषो राजन्दीर्घमध्वानमास्थितः ।
क्वचित्क्वचिच्छ्रमात्स्थाता कुरुते वासमेव वा ॥ ३ ॥

राजन् ! जैसे बहुत दूरके मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य थक थककर कहीं कहीं विश्रामके लिये बैठ जाता है ॥ ३ ॥

एवं संसारपर्याये गर्भवासेषु भारत ।
कुर्वन्ति दुर्बुधा वासं मुच्यन्ते तत्र पण्डिताः ॥ ४ ॥

हे भारत ! इसही प्रकार अज्ञानी मनुष्य संसारयात्रा करते हुए गर्भवासमें आकर फिर भी उसी बन्धनमें पडते हैं; और पण्डित लोग उसी बन्धनको काटकर मुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

तस्माद्ध्वानमेवैतमाहुः शास्त्रविदो जनाः ।
यत्तु संसारगहनं वनमाहुर्मनीषिणः ॥ ५ ॥

इस कारण ही शास्त्रविद् लोगोंनें गर्भवासको मार्ग कहा है और गहन संसारको मनीषी वनके रूपसे वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

सोऽयं लोकसमावर्तो मर्त्यानां भरतर्षभ ।
चराणां स्थावराणां च गृध्येत्तत्र न पण्डितः ॥ ६ ॥

हे भरतसिंह ! चर–अचर जीवोंका और मनुष्योंका यह संसारचक्र है; पण्डितने इस संसारकी कभी इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥ ६ ॥

शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः ।
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्यालाः कथिता बुधैः ॥ ७ ॥

इस जगत्में जिन मनुष्योंकी संसारमें जो प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष शारीरिक और मानसिक व्याधियां हैं, वेही विद्वनोंकी दृष्टिसे सांप और हिंसक प्राणि हैं ॥ ७ ॥

क्लिश्यमानाश्च तैर्नित्यं हन्यमानाश्च भारत ।
स्वकर्मभिर्महाव्यालैर्नोद्विजन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ८ ॥

हे भारत ! अपने कर्मरूपी महान् हिंसक जीवोंसे सतत दुःखित तथा मारे जानेपर भी अल्प बुद्धिवाला मनुष्य संसारसे उद्विग्न नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

अथापि तैर्विमुच्येत व्याधिभिः पुरुषो नृप ।
आवृणोत्येव तं पश्चाज्जरा रूपविनाशिनी ॥ ९ ॥

नृप ! यदि इन व्याधियोंसे भी मनुष्य किसी प्रकार मुक्त हो जांय, तो भी रूप और यौवनका नाश करनेवाले बुढापेसे वह घेर जाता है ॥ ९ ॥

शब्दरूपरसस्पर्शैर्गन्धैश्च विविधैरपि ।
मज्जमानं महापङ्के निरालम्बे समन्ततः ॥ १० ॥

शब्द, रूप, रस, स्पर्श और अनेक प्रकारके गन्धके वशमें होकर मांस और चर्बीके सब ओरसे अवलम्बशून्य शरीरके भयानक कीचडमें फसता है ॥ १० ॥

संवत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रसंधयः ।
क्रमेणास्य प्रलुम्पन्ति रूपमायुस्तथैव च ॥ ११ ॥

वर्ष, महीने, पक्ष, दिन, रात्रि और सन्ध्या ही क्रमसे मनुष्यके रूप और आयुको नष्ट करते हैं ॥ ११ ॥

एते कालस्य निधयो नैताञ्जानन्ति दुर्बुधाः ।
अत्राभिलिखितान्याहुः सर्वभूतानि कर्मणा ॥ १२ ॥

यही सब कालके प्रतिनिधि हैं, मूर्ख लोग इन्हें नहीं जानते । सर्व भूतोंके कर्मके अनुसार उनके भाग्यके लेख लिखे गये हैं, ऐसा कहते हैं ॥ १२ ॥

रथं शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम् ।
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिश्च रश्मयः ॥ १३ ॥

प्राणियोंका शरीर रथके समान है, सत्त्व सारथि, इन्द्रियां घोडे हैं; कर्म और बुद्धि रास है ॥ १३ ॥

तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति ।
स तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत्परिवर्तते ॥ १४ ॥

जो इस रथमें बैठनेवाला अर्थात् जीव उन दौडते हुए घोडोंके सङ्ग दौडता है, वह इस संसारचक्रमें चाकके समान घूमता रहता है ॥ १४ ॥

यस्तान्यमयते बुद्ध्या स यन्ता न निवर्तते ।
याम्यमाहू रथं ह्येनं मुह्यन्ते येन दुर्बुधाः ॥ १५ ॥

जो संयमी मनुष्य अपनी बुद्धिसे उन इन्द्रियरूपी घोडोंको अपने वशमें रखते हैं, वे प्रयत्न-शील फिर इस संसारमें नहीं लौटते । हे महाराज ! इस संसारको याम्य– यमराजका रथ कहते हैं, इससे मूर्ख लोग मोहित हो जाते हैं ॥ १५ ॥

स चैतत्प्राप्नुते राजन्यत्त्वं प्राप्तो नराधिप ।
राज्यनाशं सुहृन्नाशं सुतनाशं च भारत ॥ १६ ॥

राजन् ! नरेश्वर ! वही दुःख प्रत्येक मूढको प्राप्त होता है, जो आपको प्राप्त हुआ है । भारत ! राज्य, मित्र और पुत्रोंका नाश– ये सब दुःख होते हैं ॥ १६ ॥

अनुतर्षुलमेवैतद्दुःखं भवति भारत ।
साधुः परमदुःखानां दुःखभैषज्यमाचरेत् ॥ १७ ॥

जो बहुत लोभ करता है, उसको यह दुःख होता है । इसलिये साधुको उचित है कि वह अपने दुःखोंकी ओषधि प्राप्त करे ॥ १७ ॥

न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः ।
तथोन्मोचयते दुःखाद्यथात्मा स्थिरसंयमः ॥ १८ ॥

जैसे मनकी स्थिरता शक्ति उसको दुःखसे छुडा सकती है, वैसे पराक्रम, धन, मित्र और बन्धु–बान्धव भी दुःखसे नहीं छुडा सकते ॥ १८ ॥

तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत ।
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः ॥ १९ ॥

भारत ! इसलिये मित्रता रखकर शील प्राप्त करना चाहिये । इन्द्रियोंको वशमें रखना, त्याग और सावधानी ये तीनों ब्रह्मके घोडे हैं ॥ १९ ॥

शीलरश्मिसमायुक्ते स्थितो यो मानसे रथे ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन्ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ १४६ ॥

जो मनुष्य इन तीन घोडोंकी शीलरूपी लगामको पकडकर मनरूपी रथमें बैठकर चलता है, वह मृत्युके डरको पार होके ब्रह्मलोकको चला जाता है । ॥ २० ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ १४६ ॥

: ८ :

वैशम्पायन उवाच—

विदुरस्य तु तद्वाक्यं निशम्य कुरुसत्तमः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! कुरुकुलराज धृतराष्ट्र विदुरके ऐसे वचन सुन पुत्रोंके शोकसे व्याकुल होकर मूर्च्छा खाकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १ ॥

तं तथा पतितं भूमौ निःसंज्ञं प्रेक्ष्य बान्धवाः ।
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षत्ता च विदुरस्तथा ॥ २ ॥

राजाको इस प्रकार पृथ्वीमें पडे और मूर्च्छित देखकर सब बान्धव, श्रीकृष्णद्वैपायन वेद–व्यास, विदुर, ॥ २ ॥

संजयः सुहृदश्चान्ये द्वाःस्था ये चास्य संमताः ।
जलेन सुखशीतेन तालवृन्तैश्च भारत ॥ ३ ॥

सञ्जय और मित्र, तथा जो विश्वासार्ह द्वारपाल थे वे सब उनके ऊपर ठंडा जल छिडकने लगे और ताडके पंखोंसे हवा करने लगे ॥ ३ ॥

पस्पृशुश्च करैर्गात्रं वीजमानाश्च यत्नतः ।
अन्वासन्सुचिरं कालं धृतराष्ट्रं तथागतम् ॥ ४ ॥

उनके शरीरपर हाथ फेरने लगे । उस अवस्थामें वे बहुत प्रयत्न करके राजाको चेतनामें लानेके लिये बहुत देरतक उपचार करते रहे ॥ ४ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य लब्धसंज्ञो महीपतिः ।
विललाप चिरं कालं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ५ ॥

अनन्तर दीर्घकालके पश्चात् राजा धृतराष्ट्र चैतन्य होकर, पुत्रोंके शोकसे व्याकुल होकर बहुत देर तक रोते रहे ॥ ५ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुष्ये च परिग्रहम् ।
यतोमूलानि दुःखानि संभवन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥

फिर कहने लगे कि, मनुष्य जन्मको धिक्कार है । विशेष कर इसमें गृहस्थाश्रम स्वीकार कर परिवार निर्माण करना बहुत बुरा है; क्योंकि इसके कारण बार बार अनेक दुःख ही भोगने पडते हैं ॥ ६ ॥

पुत्रनाशेऽर्थनाशे च ज्ञातिसंबन्धिनामपि ।
प्राप्यते सुमहद्दुःखं विषाग्निप्रतिमं विभो ॥ ७ ॥

प्रभो ! देखो; पुत्र, धन, जाति और संबन्धियोंका नाश होनेसे कष्ट और विषाग्निके समान महादुःख भोगना पडता है ॥ ७ ॥

येन दह्यन्ति गात्राणि येन प्रज्ञा विनश्यति ।
येनाभिभूतः पुरुषो मरणं बहु मन्यते ॥ ८ ॥

जिसको सहते सहते शरीर जलने लगते और बुद्धिका नाश हो जाता है, उस असह्य दुःखसे पीडित पुरुष जीनेसे मरना अच्छा समझता है ॥ ८ ॥

तदिदं व्यसनं प्राप्तं मया भाग्यविपर्ययात् ।
तच्चैवाहं करिष्यामि अद्यैव द्विजसत्तम ॥ ९ ॥

आज प्रारब्ध उलटा होनेसे मुझे भी वैसाही भयानक दुःख प्राप्त हुआ है । ब्राह्मणश्रेष्ठ ! व्यास मुने ! मुझे निश्चय होता है, अब आज ही मैं अपना प्राण छोड दूंगा ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा तु महात्मानं पितरं ब्रह्मवित्तमम् ।
धृतराष्ट्रोऽभवन्मूढः शोकं च परमं गतः ।
अभूच्च तूष्णीं राजासौ ध्यायमानो महीपते ॥ १० ॥

महात्मा वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ अपने पिता व्यासमुनीसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र फिर अत्यन्त शोकमें डूब गये और चेतनारहित हो गये । पृथ्वीपते ! अपने पुत्रोंका ध्यान करते हुए वे चुप होकर बैठ गये ॥ १० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं पुत्रं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

राजा धृतराष्ट्रकी बात सुनकर महात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासमुनि पुत्रशोकसे त्रस्त हुए अपने पुत्रसे ऐसे वचन कहने लगे ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
श्रुतवानसि मेधावी धर्मार्थकुशलस्तथा ॥ १२ ॥

हे महाबाहु धृतराष्ट्र ! अब हम तुमसे जो कुछ कहते हैं सो सुनो । तुम वेदशास्त्रसंपन्न, बुद्धिमान् और धर्म–अर्थमें कुशल हो ॥ १२ ॥

न तेऽस्त्यविदितं किंचिद्वेदितव्यं परंतप ।
अनित्यतां हि मर्त्यानां विजानासि न संशयः ॥ १३ ॥

हे शत्रुनाशन ! जगत्में जो कोई जानने योग्य तत्त्व है, वह तुम नहीं जानते ऐसा नहीं है । तुम मर्त्य लोगोंकी अनित्यताको जानते हो, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥

अध्रुवे जीवलोके च स्थाने वाशाश्वते सति ।
जीविते मरणान्ते च कस्माच्छोचसि भारत ॥ १४ ॥

हे भारत ! यह जीव लोक अनित्य है; कोई भी स्थान अशाश्वत है और जीवनका अन्त मृत्युमें है, तब तुम इसके लिये शोक क्यों करते हो ? ॥ १४ ॥

प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र वैरस्यास्य समुद्भवः ।
पुत्रं ते कारणं कृत्वा कालयोगेन कारितः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रको कारण करके कालकी प्रेरणासे तुम्हारे देखते ही देखते यह वैर उत्पन्न होगया ॥ १५ ॥

अवश्यं भवितव्ये च कुरूणां वैशसे नृप ।
कस्माच्छोचसि तान्शूरान्गतान्परमिकां गतिम् ॥ १६ ॥

हे नृप ! कौरवोंका नाश जो अवश्य होनेवालाही था, तब परम गतिको गये उन शूर वीरोंके लिये तुम शोक क्यों करते हो ? ॥ १६ ॥

जानता च महाबाहो विदुरेण महात्मना ।
यतितं सर्वयत्नेन शमं प्रति जनेश्वर ॥ १७ ॥

हे महाबाहो ! प्रजापते ! सब बातोंको जाननेवाले महात्मा विदुर यह जानते थे, इसलिये उन्होंने सर्वप्रकारसे शान्तिके लिये बहुत यत्न भी किये ॥ १७ ॥

न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित् ।
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः ॥ १८ ॥

मेरी ऐसी बुद्धि है कि कोई भी प्राणी बहुत दिनतक यत्न करनेपर भी प्रारब्धको नहीं रोक सकता ॥ १८ ॥

देवतानां हि यत्कार्यं मया प्रत्यक्षतः श्रुतम् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि कथं स्थैर्यं भवेत्तव ॥ १९ ॥

हमने जो देवताओंका कार्य प्रत्यक्ष अपने कानोंसे सुना था सो तुमसे कहते हैं, उसके सुननेसे तुम कुछ स्थिर मनके होंगे ॥ १९ ॥

पुराहं त्वरितो यातः सभामैन्द्रीं जितक्लमः ।
अपश्यं तत्र च तदा समवेतान्दिवौकसः ।
नारदप्रमुखांश्चापि सर्वान्देवऋषींस्तथा ॥ २० ॥

पहिले मैं एकदिन बहुत शीघ्रतासे कोई थकावटके विना सावधान होकर इन्द्रकी सभामें गया, वहां जाकर उस समय सब देवताओंको इकट्ठे हुए देखा। वहां नारद आदि सब देव-ऋषि भी बैठे थे ॥ २० ॥

तत्र चापि मया दृष्टा पृथिवी पृथिवीपते ।
कार्यार्थमुपसम्प्राप्ता देवतानां समीपतः ॥ २१ ॥

पृथ्वीपते ! मैंने वहां पृथ्वीको भी देखा, पृथ्वी कुछ कामके लिये देवताओंके पास गई थी ॥ २१ ॥

उपगम्य तदा धात्री देवानाह समागतान् ।
यत्कार्यं मम युष्माभिर्ब्रह्मणः सदने तदा ।
प्रतिज्ञातं महाभागास्तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥ २२ ॥

उस समय पृथ्वीने एकत्र हुए सब देवताओंसे कहा, तुम लोगोंने ब्रह्माकी सभामें जो मेरे कामके लिये प्रतिज्ञा की थी, उसे शीघ्र सत्य करो ॥ २२ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं पृथिवीं देवसंसदि ॥ २३ ॥

पृथ्वीके ऐसे वचन सुन देवताओंकी सभामें जगत् वन्दित विष्णु हंसकर पृथ्वीसे बोले ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां यस्तु ज्येष्ठः शतस्य वै ।
दुर्योधन इति ख्यातः स ते कार्यं करिष्यति ।
तं च प्राप्य महीपालं कृतकृत्या भविष्यसि ॥ २४ ॥

हे पृथ्वी ! जो धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें बडा दुर्योधन नामसे प्रख्यात है, वह तुम्हारे कामको सिद्ध करेगा; उसे ही राजाके रूपमें पाकर तू कृतकृत्य हो जायगी ॥ २४ ॥

+

तस्यार्थे पृथिवीपालाः कुरुक्षेत्रे समागताः ।
अन्योन्यं घातयिष्यन्ति दृढैः शस्त्रैः प्रहारिणः ॥ २५ ॥

उसके लिये सब राजा कुरुक्षेत्रमें इकट्ठे होकर दृढ शस्त्रोंसे प्रहार करके एक दूसरेको मारेंगे ॥ २५ ॥

ततस्ते भविता देवि भारस्य युधि नाशनम् ।
गच्छ शीघ्रं स्वकं स्थानं लोकान्धारय शोभने ॥ २६ ॥

हे देवि ! इस प्रकार उस ही युद्धमें तुम्हारा भार नष्ट हो जायगा । शोभने ! इसलिये तुम शीघ्र अपने स्थानको जाओ और सब लोकोंको धारण करो ॥ २६ ॥

स एष ते सुतो राजँल्लोकसंहारकारणात् ।
कलेरंशः समुत्पन्नो गान्धार्या जठरे नृप ॥ २७ ॥

हे राजन् ! यह तुम्हारा पुत्र दुर्योधन जगत्का नाश करनेके लिये कलिका अंशही गान्धारीके पेटसे उत्पन्न हुआ था ॥ २७ ॥

अमर्षी चपलश्चापि क्रोधनो दुष्प्रसाधनः ।
दैवयोगात्समुत्पन्ना भ्रातरश्चास्य तादृशाः ॥ २८ ॥

वह अमर्षी, क्रोधी, चञ्चल और कूट नीतिसे काम करनेवाला था । प्रारब्धसे उसके भाई भी वैसेही उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥

शकुनिर्मातुलश्चैव कर्णश्च परमः सखा ।
समुत्पन्ना विनाशार्थं पृथिव्यां सहिता नृपाः ।
एतमर्थं महाबाहो नारदो वेद तत्त्वतः ॥ २९ ॥

उसका मामा शकुनि और परम मित्र कर्ण भी वैसे ही उत्पन्न होगये थे । ये सब राजा जगत्के नाश करनेहीको एक साथ इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे । हे महाबाहो ! यह बात नारद सत्यरूपमें जानते हैं ॥ २९ ॥

आत्मापराधात्पुत्रास्ते विनष्टाः पृथिवीपते ।
मा ताञ्शोचस्व राजेन्द्र न हि शोकेऽस्ति कारणम् ॥ ३० ॥

हे पृथ्वीनाथ ! तुम्हारे पुत्र उनके अपराधसेही नष्ट हुए हैं । राजेन्द्र ! इसलिये तुम उनका शोक मत करो, क्योंकि शोकके लिये कुछ कारण नहीं है ॥ ३० ॥

न हि ते पाण्डवाः स्वल्पमपराध्यन्ति भारत ।
पुत्रास्तव दुरात्मानो यैरियं घातिता मही ॥ ३१ ॥

हे भारत ! पाण्डवोंने तुम्हारा थोडासा भी अपराध नहीं किया है । तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंनेही इस जगत्का नाश किया ॥ ३१ ॥

नारदेन च भद्रं ते पूर्वमेव न संशयः ।
युधिष्ठिरस्य समितौ राजसूये निवेदितम् ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो । युधिष्ठिरकी सभामें राजसूय यज्ञके समय नारदने ये सब निःसंदेह पहिले ही कह दिया था ॥ ३२ ॥

पाण्डवाः कौरवाश्चैव समासाद्य परस्परम् ।
न भविष्यन्ति कौन्तेय यत्ते कृत्यं तदाचर ॥ ३३ ॥

कि कौरव और पाण्डव सब परस्पर लडके नष्ट हो जायंगे, इसलिये हे कुन्तीनंदन ! जो तुम्हे आवश्यक करना सो करलो ॥ ३३ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा तदाशोचन्त पाण्डवाः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं देवगुह्यं सनातनम् ॥ ३४ ॥

नारदके ऐसे वचन सुन पाण्डव उस ही समय बहुत चिन्तित हो गये थे । इस प्रकार हमने तुमसे देवताओंका यह सब सनातन रहस्य बताया है ॥ ३४ ॥

कथं ते शोकनाशः स्यात्प्राणेषु च दया प्रभो ।
स्नेहश्च पाण्डुपुत्रेषु ज्ञात्वा दैवकृतं विधिम् ॥ ३५ ॥

प्रभो ! इस कारण तुम्हारा शोक नष्ट होगा, तुम अपने प्राणोंपर दया कर सकोगे । यह सब प्रारब्धसेही हुआ है ऐसा समझकर तुम पाण्डु पुत्रोंपर स्नेह कर सकेंगे ॥ ३५ ॥

एष चार्थो महाबाहो पूर्वमेव मया श्रुतः ।
कथितो धर्मराजस्य राजसूये क्रतूत्तमे ॥ ३६ ॥

हे महाबाहो ! हमने ये सब समाचार पहिले ही सुने थे, और मैंने यज्ञमें श्रेष्ठ राजसूयमें यह बात युधिष्ठिरसे कही थी ॥ ३६ ॥

यतितं धर्मपुत्रेण मया गुह्ये निवेदिते ।
अविग्रहे कौरवाणां दैवं तु बलवत्तरम् ॥ ३७ ॥

उस गुप्त बातको मेरे द्वारा बता दिये जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने कौरवोंमें कलह न हो, इसलिये बहुत यत्न किया, परन्तु प्रारब्ध बडा ही बलवान् होता है ॥ ३७ ॥

अनतिक्रमणीयो हि विधी राजन्कथंचन ।
कृतान्तस्य हि भूतेन स्थावरेण त्रसेन च ॥ ३८ ॥

राजन् ! प्रारब्ध और कालके विधानको चराचर प्राणियोंमेंसे कोई भी किसी तरह भी लांघ नहीं सकता ॥ ३८ ॥

भवान्कर्मपरो यश्च बुद्धिश्रेष्ठश्च भारत ।
मुह्यते प्राणिनां ज्ञात्वा गतिं चागतिमेव च ॥ ३९ ॥

भारत ! तब तुम कर्तव्यपरायण, धर्मात्मा और बुद्धिमान हो । तुम प्राणियोंकी गति और अगतिके रहस्यको जानकर भी ऐसे शोकाकुल क्यों हो रहे हो ? ॥ ३९ ॥

त्वां तु शोकेन संतप्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः ।
ज्ञात्वा युधिष्ठिरो राजा प्राणानपि परित्यजेत् ॥ ४० ॥

तुमको बार बार शोकसे संतप्त और मोहित होते जानकर राजा युधिष्ठिर अपने प्राणोंका भी त्याग कर देंगे ॥ ४० ॥

कृपालुर्नित्यशो वीरस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
स कथं त्वयि राजेन्द्र कृपां वै न करिष्यति ॥ ४१ ॥

हे राजेन्द्र ! जो वीर राजा युधिष्ठिर सदा पशु-पक्षी आदि योनिके प्राणियों पर भी कृपा करते हैं, फिर वे तुम्हारे ऊपर कृपा कैसे नहीं करेंगे ? ॥ ४१ ॥

मम चैव नियोगेन विधेश्चाप्यनिवर्तनात् ।
पाण्डवानां च कारुण्यात्प्राणान्धारय भारत ॥ ४२ ॥

हे भारत ! मेरी आज्ञासे प्रारब्ध अनुल्लंघनीय है ऐसा समझकर और पाण्डवों पर कृपा करके तुम अपने प्राणोंको धारण करो ॥ ४२ ॥

एवं ते वर्तमानस्य लोके कीर्तिर्भविष्यति ।
धर्मश्च सुमहांस्तात तप्तं स्याच्च तपश्चिरात् ॥ ४३ ॥

हे तात ! ऐसा आचरण करनेसे जगत्में तुम्हारी बहुत कीर्ति होगी । महान् धर्म और बहुत तप करनेका फल तुम्हें प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

पुत्रशोकसमुत्पन्नं हुताशं ज्वलितं यथा ।
प्रज्ञाम्भसा महाराज निर्वापय सदा सदा ॥ ४४ ॥

महाराज ! तुम इस प्रज्वलित आगके समान जलते हुए पुत्रशोकको बुद्धिरूपी पानीसे सदाके लिये बुझा दो ॥ ४४ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासस्यामिततेजसः ।
मुहूर्तं समनुध्याय धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥ ४५ ॥

महातेजस्वी व्यासके ऐसे वचन सुन राजा धृतराष्ट्र थोडी देरतक विचार करके ऐसा बोले ॥ ४५ ॥

महता शोकजालेन प्रणुन्नोऽस्मि द्विजोत्तम ।
नात्मानमवबुध्यामि मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं महाशोकजालके बन्धनमें फस गया हूं, इसलिये मुझे अपना कुछ ज्ञान नहीं होता, मैं बार बार मूर्च्छित होता हूं ॥ ४६ ॥

इदं तु वचनं श्रुत्वा तव दैवनियोगजम् ।
धारयिष्याम्यहं प्राणान्यतिष्ये च न शोचितुम् ॥ ४७ ॥

अब आपका यह वचन सुनकर कि सब कुछ प्रारब्धके अनुसार हुआ है, मैं अपने प्राण धारण करूंगा और शोक न करनेका प्रयत्न करूंगा ॥ ४७ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः सत्यवतीसुतः ।
धृतराष्ट्रस्य राजेन्द्र तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ समाप्तं विशोकपर्व ॥ १९४ ॥

राजेन्द्र ! राजा धृतराष्ट्रके ऐसे वचन सुन सत्यवतीके पुत्र व्यास मुनि वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ विशोकपर्व समाप्त ॥ १९४ ॥

: ९ :

जनमेजय उवाच—

गते भगवति व्यासे धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

महाराज जनमेजय बोले— हे ब्राह्मणश्रेष्ठ वैशम्पायन मुने ! जब भगवान् वेदव्यास चले गये, तब राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? यह मुझे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा नरश्रेष्ठ चिरं ध्यात्वा त्वचेतनः ।
संजयं योजयेत्युक्त्वा विदुरं प्रत्यभाषत ॥ २ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे नरश्रेष्ठ राजन् जनमेजय ! विदुरके ऐसे वचन सुन राजा धृतराष्ट्र बहुत देरतक ध्यान करके चेतनरहित हो गये; फिर उन्होंने संजयको वाहन तैयार करनेकी आज्ञा देकर विदुरको ऐसा कहा ॥ २ ॥

क्षिप्रमानय गान्धारीं सर्वाश्च भरतस्त्रियः ।
वधूं कुन्तीमुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः ॥ ३ ॥

गान्धारी और भरतवंशकी सब स्त्रियोंको शीघ्र ले आओ और बधू कुन्तीके सहित जितनी दूसरी स्त्रियां वहां हैं उन सबको हमारे पास ले आओ ॥ ३ ॥

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा विदुरं धर्मवित्तमम् ।
शोकविप्रहतज्ञानो यानमेवान्वपद्यत ॥ ४ ॥

परमधर्मज्ञ विदुरको ऐसा कहकर धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्र शोकसे ज्ञानशक्ति नष्ट सी होकर रथपर जा बैठे ॥ ४ ॥

गान्धारी चैव शोकार्ता भर्तुर्वचनचोदिता ।
सह कुन्त्या यतो राजा सह स्त्रीभिरुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

अपने पतिकी आज्ञासे पुत्रोंके शोकसे व्याकुल गान्धारी कुन्ती आदि सब स्त्रियोंके सहित राजा धृतराष्ट्रके पास आयी ॥ ५ ॥

ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः
आमंत्र्यान्योन्यमीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः ॥ ६ ॥

राजाके पास पहुंचकर शोकसे अत्यंत व्याकुल हुई वे सब स्त्रियां एक दूसरीको पूछती हुई परस्पर गलेसे लग गयीं और बहुत ऊंचे स्वरसे रोने लगीं ॥ ६ ॥

ताः समाश्वासयत्क्षत्ता ताभ्यश्चार्ततरः स्वयम् ।
अश्रुकण्ठीः समारोप्य ततोऽसौ निर्ययौ पुरात् ॥ ७ ॥

परन्तु विदुर उन स्त्रियोंको समझाते समझाते आप स्वयं उनसे भी अधिक व्याकुल हो गए। आसुओंसे पुलकित कण्ठ हुई उन स्त्रियोंको वाहनमें बिठला कर आप नगरसे बाहरको ले चले ॥ ७ ॥

ततः प्रणादः सञ्जज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु ।
आकुमारं पुरं सर्वमभवच्छोककर्शितम् ॥ ८ ॥

तब कौरवोंके सब राजमहलोंमें महा हाहाकार शब्द होने लगा। बालकसे बूढे तक सारा नगर शोकसे व्याकुल हो गया ॥ ८ ॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यः पुरा देवगणैरपि ।
पृथग्जनेन दृश्यन्त तास्तदा निहतेश्वराः ॥ ९ ॥

जिन स्त्रियोंको पहले कभी देवताओंने भी नहीं देखा था, उन्हींको तब अपने स्वामियोंके मारे जानेसे साधारण मनुष्य देख रहे थे ॥ ९ ॥

प्रकीर्य केशान्सुशुभान्भूषणान्यवमुच्य च ।
एकवस्त्रधरा नार्यः परिपेतुरनाथवत् ॥ १० ॥

वे नारियां अपने सुंदर बाल खोलकर अपने गहने उतार कर एक ही वस्त्र पहिनकर अनाथके समान जा रही थीं ॥ १० ॥

श्वेतपर्वतरूपेभ्यो गृहेभ्यस्तास्त्वपाक्रमन् ।
गुहाभ्य इव शैलानां पृषत्यो हतयूथपाः ॥ ११ ॥

जैसे यूथपति मारा जानेपर पर्वतोंकी गुफाओंसे रंग-बिरंगी हरणियां बाहर निकलती हैं, ऐसे ही वे सब स्त्रियां सफेद पर्वतके शिखरके समान घरोंसे निकलीं ॥ ११ ॥

तान्युदीर्णानि नारीणां तदा वृन्दान्यनेकशः ।
शोकार्तान्यद्रवन्राजन्किशोरीणामिवाङ्गने ॥ १२ ॥

राजन् ! आंगनमें एकत्र हुई तरुण स्त्रियोंके अनेक समुदाय शोकसे व्याकुल होकर ऐसे दौडते थे, जैसे गायकी बछेडियां ॥ १२ ॥

प्रगृह्य बाहून्क्रोशन्त्यः पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄनपि ।
दर्शयन्तीव ता ह स्म युगान्ते लोकसंक्षयम् ॥ १३ ॥

वे एक दूसरीका हाथ पकडकर बेटे, भाई, पति आदिके नाम लेकर रोती थीं । उस समय ऐसा जान पडता था कि जगत्में लोकसंहारकारी प्रलय हो गया ॥ १३ ॥

विलपन्त्यो रुदन्त्यश्च धावमानास्ततस्ततः ।
शोकेनाभ्याहतज्ञाना: कर्तव्यं न प्रजज्ञिरे ॥ १४ ॥

वे शोकसे ज्ञानशून्य होकर रोती थीं, चिल्लाती थीं और इधर उधरको दौडती थीं । उस समय उन्हें यह नहीं जान पडता था कि हमें क्या करना चाहिये ॥ १४ ॥

व्रीडां जग्मुः पुरा याः स्म सखीनामपि योषितः ।
ता एकवस्त्रा निर्लज्जाः श्वश्रूणां पुरतोऽभवन् ॥ १५ ॥

जो स्त्रियां पहिले सखियोंके सामने भी लज्जित होती थीं, वे निर्लज्ज होकर एक वस्त्र पहिनकर अपनी सासुओंके आगे आयी थीं ॥ १५ ॥

परस्परं सुसूक्ष्मेषु शोकेष्वाश्वासयन्स्म याः ।
ताः शोकविह्वला राजन्नुपैक्षन्त परस्परम् ॥ १६ ॥

राजन् ! जो स्त्रियां छोटेसे छोटे दुःखमें एक दूसरोंके पास जाकर समझाती थीं, वे ही शोकसे विह्वल होकर एक दूसरीको केवल देखने ही लगीं ॥ १६ ॥

ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः ।
निर्ययौ नगराद्दीनस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ १७ ॥

उन सहस्रों रोती हुई स्त्रियोंसे घिरकर शोकसे व्याकुल हुए राजा धृतराष्ट्र शीघ्रता सहित नगरसे युद्धस्थलमें जानेके लिये निकले ॥ १७ ॥

शिल्पिनो वणिजो वैश्याः सर्वकर्मोपजीविनः ।
ते पार्थिवं पुरस्कृत्य निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ १८ ॥

शिल्प बनानेवाले व्यापारी, बनिये और सब प्रकारकी जीविकाके लोग राजाको आगे करके नगरसे बाहर पडे ॥ १८ ॥

तासां विक्रोशमानानामार्तानां कुरुसंक्षये ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दो व्यथयन्भुवनान्युत ॥ १९ ॥

उस समय कुरुकुलका नाश होनेके पश्चात् उन स्त्रियोंके व्याकुल होकर रोनेका और विलापोंका घोर शब्द उठा, उससे सब जगत् व्यथित होने लगा ॥ १९ ॥

युगान्तकाले संप्राप्ते भूतानां दह्यतामिव ।
अभावः स्यादयं प्राप्त इति भूतानि मेनिरे ॥ २० ॥

प्रलयकाल आनेपर दग्ध होते हुए प्राणियोंके समान वह शब्द गूंजता था । सब लोग समझने लगे कि यह संहारकाल प्राप्त हुआ है ॥ २० ॥

भृशमुद्विग्नमनसस्ते पौराः कुरुसंक्षये ।
प्राक्रोशन्त महाराज स्वनुरक्तास्तदा भृशम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ २१५ ॥

महाराज ! उस समय कुरुकुलका संहार होनेसे अत्यंत उद्विग्न मन हुए वे राजभक्त सब नगरवासी जोरसे रोने लगे ॥ २१ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें नववां अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ २१५ ॥

: १0 :

वैशंपायन उवाच—

क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददृशुस्तान्महारथान् ।
शारद्वतं कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव च ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! जब वे नगरसे निकलके एकही कोस पहुंचे तब उन्हें शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और कृतवर्मा ये महारथी दिखायी पडे ॥ १ ॥

ते तु दृष्ट्वैव राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
अश्रुकण्ठा विनिःश्वस्य रुदन्तमिदमब्रुवन् ॥ २ ॥

प्रज्ञाचक्षु स्वामी राजा धृतराष्ट्रको देखतेही उनका गला आसुओंसे भरा और यह कहने लगे ॥ २ ॥

पुत्रस्तव महाराज कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः सानुचरो राजञ्शक्रलोकं महीपतिः ॥ ३ ॥

हे महाराज ! आपके पृथ्वीपति पुत्र महान् दुःसाध्य कर्म करके अपने सब सहायकोंके सहित इन्द्रलोकको चले गये ॥ ३ ॥

दुर्योधनबलान्मुक्ता वयमेव त्रयो रथाः ।
सर्वमन्यत्परिक्षीणं सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! दुर्योधनकी सेनासे केवल हम ही तीन रथी वीर ही बचे हैं और आपकी दूसरी सब सेना नष्ट हो गई ॥ ४ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं कृपः शारद्वतस्तदा ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर पुत्रशोकसे व्याकुल गान्धारीसे शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य ऐसे बोले ॥ ५ ॥

अभीता युध्यमानास्ते घ्नन्तः शत्रुगणान्बहून् ।
वीरकर्माणि कुर्वाणाः पुत्रास्ते निधनं गताः ॥ ६ ॥

हे देवि ! तुम्हारे सब पुत्र निर्भय होकर युद्ध करते और बहुत शत्रुओंका नाश करके अपनी वीर कीर्तिको जगत्में स्थापन करके युद्धमें मारे गये ॥ ६ ॥

ध्रुवं संप्राप्य लोकांस्ते निर्मलाञ्शस्त्रनिर्जितान् ।
भास्वरं देहमास्थाय विहरन्त्यमरा इव ॥ ७ ॥

अपने शस्त्रोंके बलसे जीते हुए उत्तम लोकोंमें अपने तेजस्वी देह धारण करके देवताओंके समान विहार करते हैं ॥ ७ ॥

न हि कश्चिद्धि शूराणांयुध्यमानः पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण निधनं प्राप्तो न च कश्चित्कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

उन शूर वीरोंमें ऐसा कोई भी न था, जो युद्धके समय पराङ्मुख हुआ हो । सब शस्त्रोंसे मारे गये; किसीने शत्रुओंके आगे हाथ नहीं जोडे अर्थात् कोई दीन होकर नहीं मरा ॥८॥

×

एतां तां क्षत्रियस्याहुः पुराणां परमां गतिम् ।
शस्त्रेण निधनं संख्ये तान्न शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥

इसप्रकार युद्धमें शस्त्रसे जो मृत्यु होती है, उसे पुराण पुरुषोंने क्षत्रियके लिये उत्तम गति कही है; इसीलिये उनके लिये आप शोक मत करो ॥ ९ ॥

न चापि शत्रवस्तेषामृध्यन्ते राज्ञि पाण्डवाः ।
शृणु यत्कृतमस्माभिरश्वत्थामपुरोगमैः ॥ १० ॥

हे रानी ! तुम्हारे पुत्रोंके शत्रु पाण्डवोंकी भी लाभमें वृद्धि नहीं हुई । अश्वत्थामाकी सहायतासे हम लोगोंने जो कुछ किया है सो सुनो ॥ १० ॥

अधर्मेण हतं श्रुत्वा भीमसेनेन ते सुतम् ।
सुप्तं शिबिरमाविश्य पाण्डूनां कदनं कृतम् ॥ ११ ॥

जब हम लोगोंने सुना कि तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनको भीमसेनने अधर्मसे मारा, तब हम लोगोंने पाण्डवोंके सोते हुए डेरोंमें जाकर सबको मार डाला ॥ ११ ॥

पाञ्चाला निहताः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रौपदेयाश्च पातिताः ॥ १२ ॥

द्रुपदके बेटे धृष्टद्युम्न आदि सब पाञ्चाल मार डाले गये और द्रौपदीके सब पुत्र भी हमने उसी रातमें मार डाले ॥ १२ ॥

तथा विशसनं कृत्वा पुत्रशत्रुगणस्य ते ।
प्राद्रवाम रणे स्थातुं न हि शक्यामहे त्रयः ॥ १३ ॥

इस प्रकार हमने तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका नाश कर दिया । अब हम यहांसे भागे जा रहे हैं, इसलिये यहां नहीं खडे हो सकते ॥ १३ ॥

ते हि शूरा महेष्वासाः क्षिप्रमेष्यन्ति पाण्डवाः ।
अमर्षवशमापन्ना वैरं प्रतिजिहीर्षवः ॥ १४ ॥

क्योंकि महाधनुर्धर वीर पाण्डव क्रोधसे व्याप्त होकर वैरका बदला लेनेकी इच्छासे इधरही को बहुत शीघ्र आयेंगे ॥ १४ ॥

निहतानात्मजाञ्छ्रुत्वा प्रमत्तान्पुरुषर्षभाः ।
निनीषन्तः पदं शूराः क्षिप्रमेव यशस्विनि ॥ १५ ॥

यशस्विनि ! अपने प्रमत्त पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुन, पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव लोग हमारे पैरोंके चिन्ह देखते देखते शीघ्रही हमारे पीछे आयेंगे ॥ १५ ॥

पाण्डूनां किल्बिषं कृत्वा संस्थातुं नोत्सहामहे।
अनुजानीहि नो राज्ञि मा च शोके मनः कृथाः ॥ १६ ॥

रानी ! हमने पाण्डवोंका अपराध किया है, इसलिये हम यहां खडे नहीं रह सकते हैं। अब हमको जानेकी आज्ञा दो, और तुम भी मनसे कुछ शोक मत करो ॥ १६ ॥

राजंस्त्वमनुजानीहि धैर्यमातिष्ठ चोत्तमम्।
निष्ठान्तं पश्य चापि त्वं क्षत्रधर्मं च केवलम् ॥ १७ ॥

हे राजन् ! आप भी हमें जानेकी आज्ञा दीजिये और केवल उत्तम धैर्य धारण कीजिये और केवल क्षात्रधर्मसे ही देखिये कि उनकी मृत्यु कैसे निष्ठायुक्त हुई है ॥ १७ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च भारत ॥ १८ ॥

भारत ! राजाको ऐसा कहकर राजाकी प्रदक्षिणा करके कृपाचार्य, कृतवर्मा और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ॥ १८ ॥

अवेक्षमाणा राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम्।
गङ्गामनु महात्मानस्तूर्णमश्वानचोदयन् ॥ १९ ॥

महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको देखते हुए उन महात्माओंने अपने घोडोंको शीघ्र गङ्गाकी ओर हांक दिये ॥ १९ ॥

अपक्रम्य तु ते राजन्सर्व एव महारथाः।
आमन्त्र्यान्योन्यमुद्विग्नास्त्रिधा ते प्रययुस्ततः ॥ २० ॥

राजन् ! फिर वहांसे निकलकर वे सब महारथी उद्विग्न मन हो, एक दूसरेसे सम्मती ले, फिर तीनों तीन ओरको चले गये ॥ २० ॥

जगाम हास्तिनपुरं कृपः शारद्वतस्तदा।
स्वमेव राष्ट्रं हार्दिक्यो द्रौणिर्व्यासाश्रमं ययौ ॥ २१ ॥

शरद्वानपुत्र कृपाचार्य हस्तिनापुरको चले गये, हृदीकपुत्र कृतवर्मा अपने ही देशको और द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा व्यासमुनीके आश्रमको चले गये ॥ २१ ॥

एवं ते प्रययुर्वीरा वीक्षमाणाः परस्परम्।
भयार्ताः पाण्डुपुत्राणामागस्कृत्वा महात्मनाम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार ये तीनों वीर महात्मा पाण्डवोंका अपराध करके भयसे व्याकुल होकर एक दूसरेकी ओर देखते हुए वहांसे चले गये ॥ २२ ॥

समेत्य वीरा राजानं तदा त्वनुदिते रवौ ।
विप्रजग्मुर्महाराज यथेच्छकमरिंदमाः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ २३८ ॥

महाराज ! राजा धृतराष्ट्रसे मिलकर शत्रुओंका दमन करनेवाले वे तीनों वीर सूर्योदयके पहले ही अपने इच्छित स्थानको चले गये ॥ २३ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें दसवां अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ २३८ ॥

: ११ :

वैशम्पायन उवाच—

हतेषु सर्वसैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
शुश्रुवे पितरं वृद्धं निर्यातं गजसाह्वयात् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! जब सब सेना मारी जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने सुना कि हमारे बूढे पिता हस्तिनापुरसे चल दिये हैं ॥ १ ॥

सोऽभ्ययात्पुत्रशोकार्तः पुत्रशोकपरिप्लुतम् ।
शोचमानो महाराज भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ २ ॥

तब स्वयं युद्धभूमिको पुत्रशोकसे व्याकुल राजा युधिष्ठिर, पुत्रोंके शोकसे क्लिन्न राजा धृतराष्ट्रके पास अपने सब भाईयोंके साथ गये ॥ २ ॥

अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना ।
युयुधानेन च तथा तथैव च युयुत्सुना ॥ ३ ॥

उनके सङ्ग महात्मा वीर दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी चले ॥ ३ ॥

तमन्वगात्सुदुःखार्ता द्रौपदी शोककर्शिता ।
सह पाञ्चालयोषिद्भिर्यास्तत्रासन्समागताः ॥ ४ ॥

उनके पीछे वहां आयी हुई पाञ्चालदेशके क्षत्रियोंकी स्त्रियोंके सङ्ग अत्यन्त दुःखसे कष्टित और शोकसे दुबली हुई द्रौपदी भी चली ॥ ४ ॥

स गङ्गामनु वृन्दानि स्त्रीणां भरतसत्तम ।
कुररीणामिवार्तानां क्रोशन्तीनां ददर्श ह ॥ ५ ॥

भरतसत्तम ! राजा युधिष्ठिरने कुररीयोंके समान आर्तस्वरसे रोती हुई स्त्रियोंके समुदायोंको गङ्गातटपर पहुंचकर देखा ॥ ५ ॥

ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः ।
ऊर्ध्वबाहुभिरार्ताभिर्ब्रुवतीभिः प्रियाप्रिये ॥ ६ ॥

वे सब ऊपरको हाथ उठाकर, आर्तस्वरसे रोती और जोरसे पाण्डवोंके लिये प्रिय—अप्रिय बोलती थीं । उन सहस्रों स्त्रियोंने राजा युधिष्ठिरको घेर लिया ॥ ६ ॥

क नु धर्मज्ञता राज्ञः क नु साद्यानृशंसता ।
यदावधीत्पितॄन्भ्रातॄन्गुरून्पुत्रान्सखीनपि ॥ ७ ॥

उस समय वे सब स्त्रियाँ कहती थीं कि, हे महाराज युधिष्ठिर ! आपने अपने पिता, भाई, गुरु, पुत्र और मित्रोंको मार डाला; तो आपका वह दयालुत्व और धर्मज्ञता कहां चली गई ॥ ७ ॥

घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मं चापि पितामहम् ।
मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथम् ॥ ८ ॥

महाबाहो ! द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म और जयद्रथको भी मारकर आपके मनकी कैसी अवस्था हुई ? ॥ ८ ॥

किं नु राज्येन ते कार्यं पितॄन्भ्रातॄनपश्यतः ।
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत ॥ ९ ॥

हे महाराज ! अपने चाचा, भाई और महाबलवान् वीर अभिमन्यु और द्रौपदीके सभी पुत्रोंको न देखकर अब इस राज्यको लेके क्या सुख भोगियेगा ? ॥ ९ ॥

अतीत्य ता महाबाहुः क्रोशन्तीः कुररीरिव ।
ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कुररीयोंके समान रोती हुई उन स्त्रियोंको छोडकर आगेको जाकर अपने चाचा धृतराष्ट्रको प्रणाम किया ॥ १० ॥

ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्शनाः ।
न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः ॥ ११ ॥

अनन्तर सब शत्रुनाशन पाण्डवोंने धर्मके अनुसार अपना अपना नाम लेके महाराजको प्रणाम किया ॥ ११ ॥

तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः ।
अप्रीयमाणः शोकार्तः पाण्डवं परिषस्वजे ॥ १२ ॥

फिर पुत्रवधसे दुःखित हुए महाराज धृतराष्ट्रने शोकसे व्याकुल होके अपने पुत्रोंके नाश करनेवाले पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको विना प्रेम अपनी छातीसे लगाया ॥ १२ ॥

धर्मराजं परिष्वज्य सान्त्वयित्वा च भारत ।
दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद्दिधक्षुरिव पावकः ॥ १३ ॥

भारत ! फिर महाराज धर्मराज युधिष्ठिरको हृदयसे लगाकर उन्हें अपने मीठे वचनसे शान्त करके, धृतराष्ट्र भीमसेनको मारनेकी इच्छासे ढूंढने लगे; उस समय दुष्टात्मा धृतराष्ट्र प्रलय-कालमें जगत्को जलानेवाली अग्निके जैसा उन्हें जलाना चाहते थे ॥ १३ ॥

स कोपपावकस्तस्य शोकवायुसमीरितः ।
भीमसेनमयं दावं दिधक्षुरिव दृश्यते ॥ १४ ॥

उस समय शोकरूपी वायुके चलनेसे बढी हुई क्रोधमयी अग्नि भीमसेनरूपी वनको जलाना चाहती है, ऐसा उनका स्वरूप था ॥ १४ ॥

तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः ।
भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम् ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रके भीमसेनके प्रति अशुभ इच्छाको जानकर श्रीकृष्णने भीमसेनको पकडकर उनके आगेसे हटा दिया और दोनों हाथोंसे एक लोहेकी बनी भीमसेनकी मूर्ति राजाके आगे खडी कर दी ॥ १५ ॥

प्रागेव तु महाबुद्धिर्बुद्ध्वा तस्येङ्गितं हरिः ।
संविधानं महाप्राज्ञस्तत्र चक्रे जनार्दनः ॥ १६ ॥

महाबुद्धिमान् और महाज्ञानी श्रीकृष्णने पहिलेहीसे उनकी इच्छा जान ली थी, इसलिये उन्होंने यह उपाय कर रखा था ॥ १६ ॥

तं तु गृह्यैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् ।
बभञ्ज बलवान्राजा मन्यमानो वृकोदरम् ॥ १७ ॥

बलवान् राजा धृतराष्ट्रने उस लोहेकी मूर्तिको भीमसेन ही समझकर दोनों हाथोंमें दबाकर पीस दिया ॥ १७ ॥

नागायुतबलप्राणः स राजा भीममायसम् ।
भङ्क्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥ १८ ॥

दस हजार हाथियोंके समान बलवान् राजा धृतराष्ट्र जब उस भीमसेनकी लोहमयी मूर्त्तिको तोड चुके, तब उनकी छाति पीडित हो गयी और मुंहसे खून गिरने लगा ॥ १८ ॥

ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ।
प्रपुष्पिताग्रशिखरः पारिजात इव द्रुमः ॥ १९ ॥

फिर जैसे ऊपरकी शाखापर खिले हुए लाल फूलोंसे भरा पारिजातका वृक्ष पृथ्वीमें गिर जाता है, वैसे ही रुधिरमें भींगे राजा धृतराष्ट्र पृथ्वीमें गिर पडे ॥ १९ ॥

पर्यगृह्णत तं विद्वान्सूतो गावल्गणिस्तदा ।
मैवमित्यब्रवीच्चैनं शमयन्सान्त्वयन्निव ॥ २० ॥

तब महा विद्वान् सारथि गवल्गणपुत्र सञ्जयने उनको पकडा और उनको शान्त करते हुए कहने लगे– आपको ऐसा नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

स तु कोपं समुत्सृज्य गतमन्युर्महामनाः ।
हा हा भीमेति चुक्रोश भूयः शोकसमन्वितः ॥ २१ ॥

जब महामना राजा धृतराष्ट्रका क्रोध शान्त हुआ और वे शोकसे व्याकुल होगये, तब ' हा भीम हा भीम ' कहके अत्यंत रोने लगे ॥ २१ ॥

तं विदित्वा गतक्रोधं भीमसेनवधार्दितम् ।
वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

जब श्रीकृष्णने जाना, अब राजाका क्रोध शांत हो गया और वे भीमसेनके वधकी शंकासे दुःखित है, तब पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण इसप्रकार बोले– ॥ २२ ॥

मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः ।
आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया राजन्निपातिता ॥ २३ ॥

हे महाराज धृतराष्ट्र ! आप कुछ शोक मत कीजिये; आपने भीमसेनको नहीं मारा है; आपने यह लोहेकी बनी भीमसेनकी मूर्ति तोडी है ॥ २२ ॥

त्वां क्रोधवशमापन्नं विदित्वा भरतर्षभ ।
मयापकृष्टः कौन्तेयो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतः ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! हमने आपको क्रोधके वशमें जानकर मृत्युकी दाढोंमें गये हुए कुन्तीपुत्र भीमसेनको अपने हाथोंसे खींच लिया है ॥ २४ ॥

न हि ते राजशार्दूल बले तुल्योऽस्ति कश्चन ।
कः सहेत महाबाहो बाह्वोर्निग्रहणं नरः ॥ २५ ॥

हे राजशार्दूल ! महाबाहो ! जगत्में आपके समान बलवान् कोई नहीं है, आपके दोनों हाथोंके पकडको सह सके ऐसा जगत्में कौन मनुष्य है ? ॥ २५ ॥

यथान्तकमनुप्राप्य जीवन्कश्चिन्न मुच्यते ।
एवं बाह्वन्तरं प्राप्य तव जीवेन्न कश्चन ॥ २६ ॥

जैसे यमराजके पास जाकर कोई जीता नहीं बच सकता, वैसेही आपके हाथोंके बीचमें आकर कोई नहीं बच सकता ॥ २६ ॥

तस्मात्पुत्रेण या सा ते प्रतिमा कारितायसी ।
भीमस्य सेयं कौरव्य तवैवोपहृता मया ॥ २७ ॥

कुरुपुत्र ! इसीलिये हमने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनने बनाई हुई भीमसेनकी लौहेकी मूर्ति आपके आगे रख दी थी ॥ २७ ॥

पुत्रशोकाभिसंतापाद्धर्मादपहृतं मनः ।
तव राजेन्द्र तेन त्वं भीमसेनं जिघांससि ॥ २८ ॥

राजेन्द्र ! आपका मन पुत्रोंके शोकसे व्याकुल हो गया है, आपके मनमें कुछ भी धर्म नहीं रहा, इसलिये आप भीमसेनको मारना चाहते हैं ॥ २८ ॥

न च ते तत्क्षमं राजहन्यास्त्वं यद्वृकोदरम् ।
न हि पुत्रा महाराज जीवेयुस्ते कथञ्चन ॥ २९ ॥

राजन् ! आप भीमसेनको मार डालें, यह आपके योग्य नहीं है । महाराज ! आपके पुत्रोंकी अवस्था नष्ट हो चुकी थी, वे कदापि नहीं जी सकते थे ॥ २९ ॥

तस्माद्यत्कृतमस्माभिर्मन्यमानैः क्षमं प्रति ।
अनुमन्यस्व तत्सर्वं मा च शोके मनः कृथाः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ २६८ ॥

इसलिये हमने जो कुछ शान्तिके लिये किया है, उन सबको आप भी मान्य कीजिये और मनसे शोकको दूर कीजिये ॥ ३० ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ २६८ ॥

: १२ :

वैशम्पायन उवाच—

तत एनमुपातिष्ठञ्शौचार्थं परिचारकाः ।
कृतशौचं पुनश्चैनं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! इसके पश्चात् महाराज धृतराष्ट्रके पास शौच कर्म करानेके लिये बहुत सेवक आये । जब राजा शौच कर्म पूर्ण कर चुके तब फिर श्रीकृष्ण उनसे बोले ॥ १ ॥

राजन्नधीता वेदास्ते शास्त्राणि विविधानि च ।
श्रुतानि च पुराणानि राजधर्माश्च केवलाः ॥ २ ॥

हे राजन् ! आपने सब वेद और अनेक प्रकारके शास्त्र पढे हैं, अनेक पुराण और केवल राज धर्मोंको भी सुना है ॥ २ ॥

एवं विद्वान्महाप्राज्ञ नाकार्षीर्वचनं तदा ।
पाण्डवानधिकाञ्ज्ञानन्बले शौर्ये च कौरव ॥ ३ ॥

हे कौरव ! इस प्रकार विद्वान् और महाबुद्धिमान् होकर भी आपको सुयोग्य मार्गसे दूर हटना अच्छा नहीं । पाण्डवोंको अपनेसे बल और शौर्यमें अधिक जान कर भी हमारे वचनोंका नहीं ग्रहण किया ॥ ३ ॥

राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते ।
देशकालविभागं च परं श्रेयः स विन्दति ॥ ४ ॥

इसीसे यह आपत्ति पडी । जो राजा अपनी बुद्धिको स्थिर करके, स्वयं सब दोषोंको देखता है और देश–कालके विभागको जानता है, जगत्में उसीका कल्याण होता है ॥ ४ ॥

उच्यमानं च यः श्रेयो गृह्णीते नो हिताहिते ।
आपदं समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः ॥ ५ ॥

जो बार बार कहनेपर भी हित और अहितके वचनोंको ग्रहण नहीं करता; वह अन्यायके मार्गपर चलकर पीछे आपत्तिमें पडके शोक करता है ॥ ५ ॥

ततोऽन्यवृत्तमात्मानं समवेक्षस्व भारत ।
राजंस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधनवशे स्थितः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! सदा न्यायके विरुद्ध वर्तन करनेवाले अपने आपको देखिये। आपने अपने मनको अपने ताबेमें नहीं रखा, केवल दुर्योधनके वशमें पड गये॥ ६ ॥

आत्मापराधादायस्तस्तत्किं भीमं जिघांससि ।
तस्मात्संयच्छ कोपं त्वं स्वमनुस्मृत्य दुष्कृतम् ॥ ७ ॥

अपनेही अपराधसे इस आपत्तिमें पडे हैं, तब भीमसेनको क्यों मारना चाहते हैं ? आप अपने अपराधोंका स्मरण करके क्रोधका संयम कीजिये ॥ ७ ॥

यस्तु तां स्पर्धया क्षुद्रः पाञ्चालीमानयत्सभाम् ।
स हतो भीमसेनेन वैरं प्रतिचिकीर्षता ॥ ८ ॥

जिस दुष्टने द्वेषके वशमें होकर पाञ्चाल राजकुमारी द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया था, भीमसेनने उसे वैरका बदला लेनेकी इच्छासे मार डाला ॥ ८ ॥

आत्मनोऽतिक्रमं पश्य पुत्रस्य च दुरात्मनः ।
यदनागसि पाण्डूनां परित्यागः परंतप ॥ ९ ॥

हे शत्रुओंको संताप देनेवाले राजन्! आप अपने और दुष्ट पुत्रके बुरे व्यवहार कर्मका स्मरण करके देखिये, आपने अपराध रहित पाण्डवोंको निकाल दिया था ॥ ९ ॥

एवमुक्तः स कृष्णेन सर्वं सत्यं जनाधिप ।
उवाच देवकीपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १० ॥

हे राजन् ! जनमेजय ! श्रीकृष्णने जब ऐसे सब सच्चे वचन कहे तब महीपति धृतराष्ट्र देवकी पुत्र श्रीकृष्णसे बोले ॥ १० ॥

+

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
पुत्रस्नेहस्तु धर्मात्मन्धैर्यान्मां समचालयत् ॥ ११ ॥

हे महाबाहु श्रीकृष्ण ! जो तुम इस समय कहते हो, सो सब ऐसेही है । परन्तु पुत्रोंके प्रेमने मुझे धैर्यसे चलित किया था ॥ ११ ॥

दिष्ट्या तु पुरुषव्याघ्रो बलवान्सत्यविक्रमः ।
त्वद्गुप्तो नागमत्कृष्ण भीमो बाह्वन्तरं मम ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण ! प्रारब्धहींसे सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह भीमसेन आपसे रक्षित होकर मेरे हाथोंके बीचमें नहीं आये ॥ १२ ॥

इदानीं त्वहमेकाग्रो गतमन्युर्गतज्वरः ।
मध्यमं पाण्डवं वीरं स्प्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ १३ ॥

केशव ! मैं अभी शान्त हो गया हूं; और मेरा क्रोध नष्ट हुआ है । अब मुझे कुछ चिन्ता भी नहीं रही । इसलिये अब मैं मध्यम पाण्डव वीर अर्जुनको स्पर्श करना चाहता हूं ॥ १३ ॥

हतेषु पार्थिवेन्द्रेषु पुत्रेषु निहतेषु च ।
पाण्डुपुत्रेषु मे शर्म प्रीतिश्चाप्यवतिष्ठते ॥ १४ ॥

सब राजाओं और दुर्योधन आदि अपने पुत्रोंके मारे जानेपर अब मेरा प्रेम पाण्डवोंसे अधिक बढ गया है, मैं उनका कल्याण चाहता हूं ॥ १४ ॥

ततः स भीमं च धनंजयं च माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन्सुगात्रानाश्वास्य कल्याणमुवाच चैनान् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ २८३ ॥

तब रोते हुए महाराज धृतराष्ट्रने सुन्दर शरीरवाले भीमसेन, अर्जुन और माद्रीके दोनों पुत्र नरवीर नकुल–सहदेवको अपने अङ्गोंसे लगाया, और उन्हें आश्वासित करके 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसे कहा ॥ १५ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें बारहवां अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ २८३ ॥

: १३ :

वैशम्पायन उवाच—

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपुंगवाः ।
अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे गान्धारीं सहकेशवाः ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! इसके पश्चात् महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्णके सहित कुरुश्रेष्ठ पाण्डव सब भाई गान्धारीके पास गये ॥ १ ॥

ततो ज्ञात्वा हतामित्रं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता शप्तुमैच्छदनिन्दिता ॥ २ ॥

अपने शत्रुओंको मारकर धर्मराज युधिष्ठिर अपने पास आ रहे हैं ऐसे जानकर पुत्रशोकसे व्याकुल निन्दारहित गान्धारीने उन्हें शाप देनेकी इच्छा की ॥ २ ॥

तस्याः पापमभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान्प्रति ।
ऋषिः सत्यवतीपुत्रः प्रागेव समबुध्यत ॥ ३ ॥

गान्धारीके मनमें पाण्डवोंके प्रति पापमय उद्देश है यह भगवान् सत्यवती पुत्र महर्षि व्यास पहलेही जान गये थे ॥ ३ ॥

स गङ्गायामुपस्पृश्य पुण्यगन्धं पयः शुचि ।
तं देशमुपसंपेदे परमर्षिर्मनोजवः ॥ ४ ॥

अनन्तर मनके समान वेगवान् महर्षि व्यास पवित्र और सुगन्धसे भरे गङ्गाजलको स्पर्श करके शीघ्र ही चलकर उस स्थानमें आए ॥ ४ ॥

दिव्येन चक्षुषा पश्यन्मनसानुद्धतेन च ।
सर्वप्राणभृतां भावं स तत्र समबुध्यत ॥ ५ ॥

वे दिव्य ज्ञानदृष्टिसे और मनको सब प्राणियोंसे संलग्न करके उनके भावको समझते थे ॥ ५ ॥

स स्नुषामब्रवीत्काले कल्यवादी महातपाः ।
शापकालमवाक्षिप्य शमकालमुदीरयन् ॥ ६ ॥

योग्य हितकी बात कहनेवाले महातपस्वी व्यासने अपनी पुत्रवधूके पास पहुंचकर, शापका प्रसंग दूर करके और शान्तिका समय निर्माण करके ऐसे वचन कहे ॥ ६ ॥

न कोपः पाण्डवे कार्यो गान्धारि शममाप्नुहि ।
रजो निगृह्यतामेतच्छृणु चेदं वचो मम ॥ ७ ॥

हे गान्धारी ! तुम शान्त हो जाओ, पाण्डवके ऊपर तुम क्रोध मत करो । जो बात मुंहसे निकालना चाहती हो उसे रोको और हमारे वचन सुनो ॥ ७ ॥

उक्तास्यष्टादशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता ।
शिवमाशास्स्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥ ८ ॥

गत अठारह दिन विजयकी इच्छावाले तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने तुमसे कहा था कि, हे माता ! मैं शत्रुओंसे युद्ध करनेको जाता हूं, तुम हमारी विजयके लिये आशीर्वाद दो ॥ ८ ॥

सा तथा याच्यमाना त्वं काले काले जयैषिणा ।
उक्तवत्यसि गान्धारि यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥

इस प्रकार विजयकी इच्छावाले दुर्योधन दिन प्रतिदिन तुम्हारी प्रार्थना करता था, तो तुमने बार बार यही कहा था कि जिधर धर्म होगा उधर ही विजय होगी ॥ ९ ॥

न चाप्यतीतां गान्धारि वाचं ते वितथामहम् ।
स्मरामि भाषमाणायास्तथा प्रणिहिता ह्यसि ॥ १० ॥

गान्धारी ! तुमने वार्तालापमें कभी झूठा बोला है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है और तुम प्राणियोंका हित सदा चाहती है ॥ १० ॥

सा त्वं धर्मं परिस्मृत्य वाचा चोक्त्वा मनस्विनि ।
कोपं संयच्छ गान्धारि मैवं भूः सत्यवादिनि ॥ ११ ॥

हे स्थिरमति गान्धारी ! हे सत्य वचन कहनेवाली ! तुम धर्म और अपने कहे हुए उस वचनका स्मरण करो । तुम क्रोधको वशमें करो । हे सत्यवादिनि ! फिर तुम ऐसी बुद्धि नहीं करो ॥ ११ ॥

गान्धार्युवाच—

भगवन्नाभ्यसूयामि नैतानिच्छामि नश्यतः ।
पुत्रशोकेन तु बलान्मनो विह्वलतीव मे ॥ १२ ॥

गान्धारी बोली— हे भगवन् ! मैं पाण्डवोंकी निन्दा नहीं करती और न इनका नाश करना चाहती हूं, परन्तु मेरा मन पुत्रोंके शोकसे बलपूर्वक व्याकुल हो गया है ॥ १२ ॥

यथैव कुन्त्या कौन्तेया रक्षितव्यास्तथा मया ।
यथैव धृतराष्ट्रेण रक्षितव्यास्तथा मया ॥ १३ ॥

इसीसे इतना क्रोध आगया था, जैसे कुन्तीको अपने पुत्रोंकी रक्षा करनी चाहिये ऐसे ही धृतराष्ट्र और मुझको भी उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च वृत्तोऽयं कुरुसंक्षयः ॥ १४ ॥

दुर्योधन, मेरे भाई शकुनि, कर्ण और दुःशासनके अपराधसे ही यह कुरुकुलका नाश हो गया है ॥ १४ ॥

नापराध्यति बीभत्सुर्न च पार्थो वृकोदरः ।
नकुलः सहदेवो वा नैव जातु युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥

इसमें तो अर्जुन, कुन्तीपुत्र भीमसेन, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिरका कुछ भी अपराध तथा दोप नहीं है ॥ १५ ॥

युध्यमाना हि कौरव्याः कृन्तमानाः परस्परम् ।
निहताः सहिताश्चान्यैस्तत्र नास्त्यप्रियं मम ॥ १६ ॥

सब कौरव वीर परस्पर लडकर मार काट करके, अन्य लोगोंके साथ मारे गये हैं, इससे मुझे कुछ अप्रिय नहीं लगता ॥ १६ ॥

यत्तु कर्माकरोद्भीमो वासुदेवस्य पश्यतः ।
दुर्योधनं समाहूय गदायुद्धे महामनाः ॥ १७ ॥

परन्तु महात्मा भीमसेनने दुर्योधनको गदायुद्धमें बुलाकर श्रीकृष्णके देखते जो वर्तन किया ॥ १७ ॥

शिक्षयाऽभ्यधिकं ज्ञात्वा चरन्तं बहुधा रणे ।
अधो नाभ्यां प्रहृतवांस्तन्मे कोपमवर्धयत् ॥ १८ ॥

वह अनेक प्रकारसे युद्ध करते घुम रहा था और शिक्षामें अपनेसे अधिक उसे जानकर उसकी नाभीके नीचे गदा मारी, इसहीको स्मरण करके मुझे बहुत क्रोध आता है ॥ १८ ॥

कथं नु धर्मं धर्मज्ञैः समुद्दिष्टं महात्मभिः ।
त्यजेयुराहवे शूराः प्राणहेतोः कथंचन ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ३०२ ॥

और यह भी विचार आता है, कि धर्म जाननेवाले महात्माओंने जिस धर्म–नियमको कहा है, उसे शूरवीर युद्धमें केवल प्राणके संरक्षणके लिये कैसे छोड देते हैं ? ॥ १९ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ३०२ ॥

: १४ :

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भीमसेनोऽथ भीतवत् ।
गान्धारीं प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं तदा ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् ! जनमेजय ! गान्धारीके ऐसे वचन सुनकर डरते हुए भीमसेनने विनयपूर्वक उनसे उत्तर देते हुए कहा ॥ १ ॥

अधर्मो यदि वा धर्मस्त्रासात्तत्र मया कृतः ।
आत्मानं त्रातुकामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥

मैंने यह कर्म चाहे धर्मसे किया, चाहे अधर्मसे किया, केवल दुर्योधनके डरसे अपनी रक्षा करनेके लिये ऐसा किया है; सो तुम मेरे अपराधको क्षमा करो ॥ २ ॥

न हि युद्धेन पुत्रस्ते धर्मेण स महाबलः ।
शक्यः केनचिदुद्यन्तुमतो विषममाचरम् ॥ ३ ॥

आपके महाबलवान् पुत्रको धर्मसे युद्ध करके मारनेका साहस नहीं कोई कर सकता था, इस ही लिये यह अधर्म मैंने किया ॥ ३ ॥

सैन्यस्यैकोऽवशिष्टोऽयं गदायुद्धे च वीर्यवान् ।
मां हत्वा न हरेद्राज्यमिति चैतत्कृतं मया ॥ ४ ॥

अपनी सब सेनामेंसे केवल बलवान् पराक्रमी दुर्योधनही बच गये थे, गदायुद्धमें मुझे मारकर फिर राज्यका हरण न कर ले, इसलिये मैंने यह अधर्म किया ॥ ४ ॥

राजपुत्रीं च पाञ्चालीमेकवस्त्रां रजस्वलाम् ।
भवत्या विदितं सर्वमुक्तवान्यत्सुतस्तव ॥ ५ ॥

राजपुत्री एक वस्त्र धारण की हुई रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलाकर आपके पुत्रने जो कुछ वचन कहा था, सो सब तुम जानती हो ॥ ५ ॥

सुयोधनमसंगृह्य न शक्या भूः ससागरा ।
केवला भोक्तुमस्माभिरतश्चैतत्कृतं मया ॥ ६ ॥

दुर्योधनको नष्ट किये विना हम समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकते थे, इसलिये मैंने यह अधर्म किया ॥ ६ ॥

तच्चाप्यप्रियमस्माकं पुत्रस्ते समुपाचरत् ।
द्रौपद्या यत्सभामध्ये सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ ७ ॥

आपके पुत्रने सभाके बीचमें द्रौपदीको अपनी बांयीं जांघ दिखलाई, यह तो उसने हमारा अत्यंत अप्रिय किया था ॥ ७ ॥

तत्रैव वध्यः सोऽस्माकं दुराचारोऽम्ब ते सुतः ।
धर्मराजाज्ञया चैव स्थिताः स्म समये तदा ॥ ८ ॥

हे माता ! आपके उस दुष्ट पुत्रको हमें उस ही समय मार डालना चाहिये था, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके वशमें होकर समयके अनुसार कुछ न कर सके ॥ ८ ॥

वैरमुद्धुक्षितं राज्ञि पुत्रेण तव तन्महत् ।
क्लेशिताश्च वने नित्यं तत एतत्कृतं मया ॥ ९ ॥

हे रानी ! इस घोर वैरकी आगको तुम्हारे पुत्रहीने बढाया; देखो हम लोगोंको वनमें भेजकर सदा क्लेश पहुंचाये; इसलिये मैंने यह किया ॥ ९ ॥

वैरस्यास्य गतः पारं हत्वा दुर्योधनं रणे ।
राज्यं युधिष्ठिरः प्राप्तो वयं च गतमन्यवः ॥ १० ॥

दुर्योधनको युद्धभूमिमें मार कर हमने इस वैरको समाप्त किया । युधिष्ठिरको राज्य मिला और हम क्रोध त्यागकर शान्त हुए ॥ १० ॥

गान्धार्युवाच—

न तस्यैष वधस्तात यत्प्रशंससि मे सुतम् ।

कृतवांश्चापि तत्सर्वं यदिदं भाषसे मयि ॥ ११ ॥

गान्धारी बोली—हे प्यारे भीमसेन! तुम जो हमारे पुत्रकी इतनी प्रशंसा करते हो, इसलिये उसका यह वध नहीं हुआ; और मुझे तुम जो कहते हो वह सर्व दुर्योधनने किया ही है ॥ ११ ॥

हताश्वे नकुले यत्तद्वृषसेनेन भारत ।

अपिबः शोणितं संख्ये दुःशासनशरीरजम् ॥ १२ ॥

भारत! जिस समय वृषसेनने नकुलके घोडे मार डाले थे, तब तुमने युद्धमें दुःशासनके शरीरसे निकालकर रुधिर पिया ॥ १२ ॥

सद्भिर्विगर्हितं घोरमनार्यजनसेवितम् ।

क्रूरं कर्माकरोः कस्मात्तदयुक्तं वृकोदर ॥ १३ ॥

सज्जनोंसे निन्दित और दुष्ट अनार्योंके करने योग्य वह घोर क्रूर कर्म है। वृकोदर! तुमने वही क्रूर अयोग्य कर्म किया है ॥ १३ ॥

भीमसेन उवाच—

अन्यस्यापि न पातव्यं रुधिरं किं पुनः स्वकम् ।

यथैवात्मा तथा भ्राता विशेषो नास्ति कश्चन ॥ १४ ॥

भीमसेन बोले—जगत्‌में किसीने दूसरे मनुष्यका रुधिर नहीं पीना चाहिये और अपने रुधिरकी कथा ही तो क्या है? अपने शरीरमें और भाईके शरीरमें कुछ भेद नहीं होता ॥ १५ ॥

रुधिरं न व्यतिक्रामद्दन्तोष्ठं मेऽम्ब मा शुचः ।

वैवस्वतस्तु तद्वेद हस्तौ मे रुधिरोक्षितौ ॥ १५ ॥

हे माता! दुःशासनका रुधिर मेरे दातों और ओठोंसे भीतर नहीं गया था, तुम इसका कुछ शोक मत करो। केवल मेरे हाथ ही रुधिरसे भीगे थे; इस सत्यको केवल यमराज ही जानते हैं ॥ १५ ॥

हताश्वं नकुलं दृष्ट्वा वृषसेनेन संयुगे ।

भ्रातॄणां संप्रहृष्टानां त्रासः संजनितो मया ॥ १६ ॥

जिस समय युद्धमें वृषसेनके बाणोंसे नकुलके घोडे मारे गये देख तुम्हारे पुत्र बहुत प्रसन्न हुए, तब मैंने उनको डरानेके लिये ही यह कर्म किया था ॥ १६ ॥

केशपक्षपरामर्शे द्रौपद्या द्यूतकारिते ।

क्रोधाद्यदब्रुवं चाहं तच्च मे हृदि वर्तते ॥ १७ ॥

जूवा खेलनेके समय दुःशासनने द्रौपदीके बाल पकडकर खींचे थे और मैंने क्रोधसे भरकर प्रतिज्ञा कर दी थी, वही बात मेरे हृदयमें बनी रही ॥ १७ ॥

क्षत्रधर्माच्च्युतो राज्ञि भवेयं शाश्वतीः समाः ।
प्रतिज्ञां तामनिस्तीर्य ततस्तत्कृतवानहम् ॥ १८ ॥

रानी ! मैं उस प्रतिज्ञाको बिना पूर्ण किये रहता तो सदाके लिये क्षत्रियोंके धर्मसे नष्ट हो जाता, इसलिये मैंने यह कर्म किया ॥ १८ ॥

न मामर्हसि गान्धारि दोषेण परिशङ्कितुम् ।
अनिगृह्य पुरा पुत्रानस्मास्वनपकारिषु ॥ १९ ॥

हे गान्धारी ! तुमने पहिले अपने पुत्रोंको विनापराध हमपर अत्याचार करते देखकर भी नहीं रोका; अब आपको मुझमें दोषकी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ १९ ॥

गान्धार्युवाच—

वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान्निघ्नंस्त्वमपराजितः ।
कस्मान्न शेषयः किंचिद्येनाल्पमपराधितम् ॥ २० ॥

गान्धारी बोली— हे भीम ! तुम अपराजित वीर हो । तुमने बूढे राजाके सौ पुत्रोंको मार डाला, जिसने तुम्हारा कम अपराध किया था, उस एकको भी क्यो नहीं जीवित छोडा ? ॥ २० ॥

संतानमावयोस्तात वृद्धयोर्हृतराज्ययोः ।
कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता ॥ २१ ॥

तात ! हम दोनों बूढे हुए, हमारा राज्य भी छिन गया है । हम दो अन्धोंके लिए एक लाठीके समान एक सन्तान भी तुमने क्यों नहीं जीवित छोडी ? ॥ २१ ॥

शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि ।
न मे दुःखं भवेदेतद्यदि त्वं धर्ममाचरः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ३२५ ॥

तात ! तुम मेरे पुत्रोंके यमराज बने । यदि तुम धर्मका आचरण करते और मेरा एक पुत्र भी बाकी रह जाता तो इतना दुःख न होता ॥ २२ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्तः ॥ १४ ॥ ३२३ ॥

१५

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु गान्धारी युधिष्ठिरमपृच्छत ।
क्व स राजेति सक्रोधा पुत्रपौत्रवधार्दिता ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— भीमको ऐसा कहकर फिर बेटे और पोतोंके वधसे व्याकुल गान्धारीने क्रोधमें भरकर पूंछा— वह राजा युधिष्ठिर कहां है ? ॥ १ ॥

तामभ्यगच्छद्राजेन्द्रो वेपमानः कृताञ्जलिः ।
युधिष्ठिर इदं चैनां मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

तब महाराज युधिष्ठिर डरसे कांपते हुए हाथ जोडकर उनके पास गये और उनको इस प्रकार मीठे वचन बोले ॥ २ ॥

पुत्रहन्ता नृशंसोऽहं तव देवि युधिष्ठिरः ।
शापार्हः पृथिवीनाशे हेतुभूतः शपस्व माम् ॥ ३ ॥

हे माता ! तुम्हारे पुत्रोंको मारनेवाला सब जगत्के नाश करनेका मूल कारण क्रूरकर्मा युधिष्ठिर मैं ही हूं, निश्चय ही मैं तुम्हारा अपराधी हूं, इसलिये मुझे शाप दो ॥ ३ ॥

न हि मे जीवितेनार्थो न राज्येन धनेन वा ।
तादृशान्सुहृदो हत्वा मूढस्यास्य सुहृद्द्रुहः ॥ ४ ॥

मुझे ऐसे मित्रोंका वध करके राज्य, धन और जीनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, मैं बडा मूर्ख और मित्रोंका द्रोही हूं ॥ ४ ॥

तमेवंवादिनं भीतं संनिकर्षगतं तदा ।
नोवाच किंचिद्गान्धारी निःश्वासपरमा भृशम् ॥ ५ ॥

अपने पास आये हुए राजा युधिष्ठिरको डरे देख और उनके ऐसे वचन सुन, गान्धारीने कुछ न कहा, केवल जोरसे श्वास लेने लगी ॥ ५ ॥

तस्यावनतदेहस्य पादयोर्निपतिष्यतः ।
युधिष्ठिरस्य नृपतेर्धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी
अङ्गुल्यग्राणि ददृशे देवी पट्टान्तरेण सा ॥ ६ ॥

महाराज युधिष्ठिर शरीरको झुकाकर उनके पैरोंपर गिर पडे, तब धर्म जाननेवाली दूरदर्शिनी गान्धारीने अपने कपडोंके भीतरसे उनके पैरोंकी अंगुलियोंके अग्रभाग देखे ॥ ६ ॥

ततः स कुनखीभूतो दर्शनीयनखो नृपः ।
तं दृष्ट्वा चार्जुनोऽगच्छद्वासुदेवस्य पृष्ठतः ॥ ७ ॥

उसी समय सुंदर और दर्शनीय नखवाले राजाके नख काले पड गये । महाराजाकी यह दशा देखके अर्जुन श्रीकृष्णके पीछे जाकर छिप गये ॥ ७ ॥

एवं संचेष्टमानांस्तानितश्चेतश्च भारत ।
गान्धारी विगतक्रोधा सान्त्वयामास मातृवत् ॥ ८ ॥

भारत ! पाण्डवोंको इसप्रकार इधर उधर छिपते देख गान्धारीका क्रोध शान्त हुआ । फिर उनको माताके समान समझाने लगी ॥ ८ ॥

×

तथा ते समनुज्ञाता मातरं वीरमातरम् ।
अभ्यगच्छन्त सहिताः पृथां पृथुलवक्षसः ॥ ९ ॥

फिर गान्धारीकी आज्ञा लेकर ये चौडी छातीवाले सब मिलकर वीर माता कुन्तीके पास गये ॥ ९ ॥

चिरस्य दृष्ट्वा पुत्रान्सा पुत्राधिभिरभिप्लुता ।
बाष्पमाहारयद्देवी वस्त्रेणावृत्य वै मुखम् ॥ १० ॥

बहुत कालके बाद पुत्रोंको देखकर उनके कष्टोंका स्मरण करके कुन्ती व्याकुल हो गयी और आंचलसे मुंह ढककर आंसू बहाने लगी ॥ १० ॥

ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तदा पृथा
अपश्यदेतान्शस्त्रौघैर्बहुधा परिविक्षतान् ॥ ११ ॥

पुत्रोंसहित आंसू बहाकर बार बार उनके शरीरोंको जो अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे कटे हुए थे देखने लगी ॥ ११ ॥

सा तानेकैकशः पुत्रान्संस्पृशन्ती पुनः पुनः ।
अन्वशोचत दुःखार्ता द्रौपदीं च हतात्मजाम् ।
रुदतीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां भुवि ॥ १२ ॥

फिर एकेक पुत्रोंके शरीरोंको बार बार स्पर्श करके, जिसके पुत्र मारे गये थे उस द्रौपदीके लिये दुःखित कुन्ती शोक करने लगी । फिर भूमिमें पडी और रोती हुई द्रौपदीको देखा ॥ १२ ॥

द्रौपद्युवाच—

आर्ये पौत्राः क्व ते सर्वे सौभद्रसहिता गताः ।
न त्वां तेऽद्याभिगच्छन्ति चिरदृष्टां तपस्विनीम् ।
किं नु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम ॥ १३ ॥

द्रौपदी बोली— हे माता ! अभिमन्युके सहित तुम्हारे सब पोते कहां चले गये ? तपस्विनी— तुमको बहुत दिनके पीछे यहां आई हुई देखकर भी वे तुम्हारे पास अभी तक क्यों नहीं आते ? बिना पुत्रोंके मैं इस राज्यको लेकर क्या करूंगी ? ॥ १३ ॥

वैशंपायन उवाच—

तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना ।
उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोककर्शिताम् ॥ १४ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— शोकसे व्याकुल हो रोती हुई द्रौपदीको उठाकर बडे बडे नेत्रवाली कुन्ती समझाने लगी ॥ १४ ॥

तथैव सहिता चापि पुत्रैरनुगता पृथा ।
अभ्यगच्छत गान्धारीमार्तामार्ततरा स्वयम् ॥ १५ ॥

फिर द्रौपदीके सहित स्वयं अत्यंत दुःखित हुई कुन्ती, शोकसे व्याकुल हुई गान्धारीके पास गई; उसके पुत्र उसके पीछे गये ॥ १५ ॥

तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीम् ।
मैवं पुत्रीति शोकार्ता पश्य मामपि दुःखिताम् ॥ १६ ॥

यशस्विनी कुन्तीको द्रौपदीके सहित देख गान्धारी बोली, बेटी ! तुम इसप्रकार कुछ शोक मत करो । देखो, मैं भी कैसे शोकमें पडी हुई हूं ॥ १६ ॥

मन्ये लोकविनाशोऽयं कालपर्यायचोदितः ।
अवश्यभावी संप्राप्तः स्वभावाल्लोमहर्षणः ॥ १७ ॥

मैं मानती हूं कालसे प्रेरित होकर यह सब जगत्का विनाश हुआ है, जो स्वभावसे ही रोमांचकारी है । यह अवश्य होनेवाला था, सो प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

इदं तत्समनुप्राप्तं विदुरस्य वचो महत् ।
असिद्धानुनये कृष्णे यदुवाच महामतिः ॥ १८ ॥

शान्ति स्थापन करानेके प्रयत्नमें श्रीकृष्णकी योजना सफल नहीं हुई, उस समय बुद्धिमान् विदुरने जैसे महत्वकी बात कही थीं, सो सब वैसे ही प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥

तस्मिन्नपरिहार्येऽर्थे व्यतीते च विशेषतः ।
मा शुचो न हि शोच्यास्ते संग्रामे निधनं गताः ॥ १९ ॥

यह विनाश अवश्य होनेवालाही था, विशेष करके यह सब समाप्त हो गया है, तब शोक मत करो । वे सब युद्धमें मारे गये, उनका शोक करना अब वृथा है ॥ १९ ॥

यथैव त्वं तथैवाहं को वा माश्वासयिष्यति ।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ ३४४ ॥

जैसे शोकसे तुम पडी हो वैसे ही मैं भी पडी हूं । तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है और अब तुम्हें- हमें समझाने और कौन आयेगा ? मेरे ही अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका नाश हुआ है ॥ २० ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ॥ ३४४ ॥

: १६ :

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु गान्धारी कुरूणामाविकर्तनम् ।
अपश्यत्तत्र तिष्ठन्ती सर्वं दिव्येन चक्षुषा ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजा जनमेजय ! ऐसा कहके गान्धारी चुप हो गई, फिर उसने वहीं बैठे बैठे अपनी दिव्य दृष्टिसे कौरवोंके उस विनाशकारी युद्धभूमिको देखा ॥१॥

पतिव्रता महाभागा समानव्रतचारिणी ।
उग्रेण तपसा युक्ता सततं सत्यवादिनी ॥ २ ॥

सदा सत्य बोलनेवाली, पतिव्रता, समान व्रत पालन करनेवाली, महाभाग्यवती उग्र तपस्विनी गान्धारी थी ॥ २ ॥

वरदानेन कृष्णस्य महर्षेः पुण्यकर्मणः ।
दिव्यज्ञानबलोपेता विविधं पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥

धर्मात्मा महामुनि व्यासके वरदानसे दिव्य ज्ञानबलसे युक्त थी, इसलिये उस युद्धभूमिको देखकर वह अनेक प्रकारसे शोक करने लगी ॥ ३ ॥

ददर्श सा बुद्धिमती दूरादपि यथान्तिके ।
रणाजिरं नृवीराणामद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४ ॥

बुद्धिमती गान्धारीने उस नर वीरोंके अद्भुत और रोमांचकारी युद्धभूमिको दूरसे इस प्रकार देखा जैसे कोई निकटसे देखता है ॥ ४ ॥

अस्थिकेशपरिस्तीर्णं शोणितौघपरिप्लुतम् ।
शरीरैर्बहुसाहस्रैर्विनिकीर्णं समन्ततः ॥ ५ ॥

उस युद्धभूमिमें हड्डी, बाल, चर्बी, रुधिर और हजारों मृत शरीर चारों ओर भरे हुए थे ॥ ५ ॥

गजाश्वरथयोधानामावृतं रुधिराविलैः ।
शरीरैरशिरस्कैश्च विदेहैश्च शिरोगणैः ॥ ६ ॥

उस समय उस युद्धभूमिमें मरे हुए हाथीसवार, घुडसवार और रथी योद्धाओंके रुधिरसे भरे हुए मलिन बिना सिरके असंख्य शरीर दिखाई देते थे; बिना शरीरके अनेक मस्तक पडे थे ॥ ६ ॥

गजाश्वनरवीराणां निःसत्त्वैरभिसंवृतम् ।
सृगालबडकाकोलकङ्ककाकनिषेवितम् ॥ ७ ॥

वह युद्ध भूमि हाथी, घोडे और वीर मनुष्यों सत्त्वहीन शब्दसे भर गई थी; चारों ओर सियार, बगुले, काकोल, कङ्क और कौए वहां दीखते थे ॥ ७ ॥

रक्षसां पुरुषादानां मोदनं कुररकुलम् ।
अशिवाभिः शिवाभिश्च नादितं गृध्रसेवितम् ॥ ८ ॥
मनुष्योंका मांस खानेवाले राक्षस, कुररी, भयानक सियारी और गिद्ध सब ओरसे आकर उस युद्धभूमिको देखकर प्रसन्न होने लगे ॥ ८ ॥

ततो व्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ९ ॥
तब भगवान व्यासकी आज्ञासे महाराज धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि सब पाण्डुपुत्र ॥ ९ ॥

वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुं च पार्थिवम् ।
कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति ॥ १० ॥
श्रीकृष्ण और जिनके बंधुबांधव मारे गये हैं उन महाराज धृतराष्ट्रको आगे करके कुरुकुलकी स्त्रियोंको सङ्ग लेकर युद्धभूमिमें गये ॥ १० ॥

समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः ।
अपश्यन्त हतांस्तत्र पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्पतीन् ॥ ११ ॥
कुरुक्षेत्रमें जाकर पतिरहित स्त्रियोंने मारे गये हुए अपने अपने पति, पिता, पुत्र और भाईयोंको देखा ॥ ११ ॥

क्रव्यादैर्भक्ष्यमाणान्वै गोमायुबडवायसैः ।
भूतैः पिशाचै रक्षोभिर्विविधैश्च निशाचरैः ॥ १२ ॥
और देखा कि वहां उनके शरीरोंके मांसको कौवे, सियार, गिद्ध, भूत, पिशाच, राक्षस और अनेक प्रकारके निशाचर खा रहे हैं ॥ १२ ॥

रुद्राक्रीडनिभं दृष्ट्वा तदा विशसनं स्त्रियः ।
महार्हेभ्योऽथ यानेभ्यो विक्रोशन्त्यो निपेतिरे ॥ १३ ॥
उस समय उस युद्धभूमिको उन स्त्रियोंने महाकालके अखाडेके समान देखा, फिर बहुत मूल्यवाले अपने रथोंसे रोती हुई वे नीचे गिर पडीं ॥ १३ ॥

अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्ता भरतस्त्रियः ।
शरीरेष्वस्खलन्नन्या न्यपतंश्चापरा भुवि ॥ १४ ॥
कुरुकुलकी स्त्रियोंने वैसे अद्भुत रणक्षेत्रको कभी नहीं देखा था, उसे देखकर कुछ दुःखसे व्याकुल होकर शवोंपर गिर पडीं; दूसरी अपनेको पृथ्वीमें लोटने लगीं ॥ १४ ॥

श्रान्तानां चाप्यनाथानां नासीत्काचन चेतना ।
पाञ्चालकुरुयोषाणां कृपणं तदभून्महत् ॥ १५ ॥
थकी और नाथरहित हुई पांचाल और कौरवोंकी स्त्रियोंको वहां सुध नहीं रही । उनकी करुणामय स्थिति होगई थी ॥ १५ ॥

दुःखोपहतचित्ताभिः समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वायोधनमत्युग्रं धर्मज्ञा सुबलात्मजा ॥ १६ ॥

दुःखसे व्याकुल चित्त हुई स्त्रियोंके शब्दसे वह अत्यंत भयंकर युद्ध भूमि सब ओरसे पूरित हो गई । यह देखकर धर्म जाननेवाली सुबल पुत्री गान्धारी ॥ १६ ॥

ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरुणां वैशसं दृष्ट्वा दुःखाद्वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

कौरवोंके विनाशको देखकर कमलनयन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको बुलाकर दुःखसे ऐसे वचन बोली ॥ १७ ॥

पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष स्नुषा मे निहतेश्वराः ।
प्रकीर्णकेशाः क्रोशन्तीः कुररीरिव माधव ॥ १८ ॥

हे कमल नेत्र कृष्ण ! हे माधव ! देखो, हमारे बेटोंकी स्त्रियां विधवा होकर बाल खोले कुररीके समान रो रही हैं ॥ १८ ॥

अमूस्त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भरतर्षभान् ।
पृथगेवाभ्यधावन्त पुत्रान्भ्रातॄन्पितॄन्पतीन् ॥ १९ ॥

ये अपने अपने भरतश्रेष्ठ पतियोंके गुण स्मरण करके उनकी लाशोंके पास जाती हैं; ये अपने अपने पति, भाई, पुत्र और पिताके ओर पृथक् पृथक् दौडती हैं ॥ १९ ॥

वीरसूभिर्महाबाहो हतपुत्राभिरावृतम् ।
क्वचिच्च वीरपत्नीभिर्हतवीराभिराकुलम् ॥ २० ॥

यह युद्धभूमि अनेक वीर प्रसु माता और अनेक वीरोंकी दुःखित स्त्रियां जिनके अपने अपने पुत्र और पति मारे गये हैं, उनसे भरी हुई है ॥ २० ॥

शोभितं पुरुषव्याघ्रैर्भीष्मकर्णाभिमन्युभिः ।
द्रोणद्रुपदशल्यैश्च ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २१ ॥

ये देखो, पुरुषसिंह भीष्म, कर्ण, अभिमन्यु, द्रोणाचार्य, महाराज द्रुपद और महाराज शल्य आदि वीर, जो जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी थे, उनसे यह युद्धभूमि शोभित है ॥ २१ ॥

काञ्चनैः कवचैर्निष्कैर्मणिभिश्च महात्मनाम् ।
अङ्गदैर्हस्तकेयूरैः स्रग्भिश्च समलंकृतम् ॥ २२ ॥

महात्मा वीरोंके सोनेके कवच, निष्क, अङ्गद, केयूर और मणि, मालाएं रणभूमिको विभूषित करती हैं ॥ २२ ॥

वीरबाहुविसृष्टाभिः शक्तिभिः परिघैरपि ।
खड्गैश्च विमलैस्तीक्ष्णैः सशरैश्च शरासनैः ॥ २३ ॥

वीरोंके हाथसे छोडी गई शक्तियां, परिघ, विमल खड्ग और अनेक प्रकारके तीक्ष्ण बाणवाले धनुष पडे हुए हैं ॥ २३ ॥

क्रव्यादसंघैर्मुदितैस्तिष्ठद्भिः सहितैः क्वचित् ।
क्वचिदाक्रीडमानैश्च शयानैरपरैः क्वचित् ॥ २४ ॥

कहीं मांस खानेवाले प्राणियोंके समुदाय प्रसन्न होकर एकसाथ खडे हैं, कहीं खेल रहे हैं और कहीं दूसरे जीव सुखसे सो रहे हैं ॥ २४ ॥

एतदेवंविधं वीर संपश्यायोधनं विभो ।
पश्यमाना च दह्यामि शोकेनाहं जनार्दन ॥ २५ ॥

हे वीर ! हे भगवन् ! हे जनार्दन ! इसप्रकार इन सबसे भरे हुए युद्धस्थलको देखो । इसे देखकर मेरा हृदय शोकसे जला जाता है ॥ २५ ॥

पञ्चालानां कुरूणां च विनाशं मधुसूदन ।
पाञ्चानामिव भूतानां नाहं वधमचिन्तयम् ॥ २६ ॥

मधुसूदन ! इस पाञ्चाल और कुरुकुलके वीरोंके नाशसे हमें ऐसा जान पडता है, कि पांचों भूतोंकाही नाश हो गया ॥ २६ ॥

तान्सुपर्णाश्च गृध्राश्च निष्कर्षन्त्यसृगुक्षितान् ।
निगृह्य कवचेषूग्रा भक्षयन्ति सहस्रशः ॥ २७ ॥

देखो, इन वीरोंके रुधिरमें भीगे शरीरोंको गरुड और गिद आदि पक्षी इधर उधर खींच रहे हैं, सहस्रों भयंकर गिद्ध उनके शरीर खींच लिये जाते हैं और खाते हैं ॥ २७ ॥

जयद्रथस्य कर्णस्य तथैव द्रोणभीष्मयोः ।
अभिमन्योर्विनाशं च कश्चिन्तयितुमर्हति ॥ २८ ॥

युद्धमें जयद्रथ, कर्ण, द्रोणाचार्य, भीष्म और अभिमन्यु आदि वीरोंका नाश होगा, यह कौन सोच सकता था ? ॥ २८ ॥

अवध्यकल्पान्निहतान्दृष्ट्वाहं मधुसूदन ।
गृध्रकङ्कबडश्येनश्वसृगालादनीकृतान् ॥ २९ ॥

मधुसूदन ! जिनको कोई नहीं मार सकता था, आज उनको चैतन्यरहित ऐसे मैं देख रही हूं । गिद्ध, कंक, बड, बाज, कुत्ते और सियार उन्हें खा रहे हैं ॥ २९ ॥

अमर्षवशमापन्नान्दुर्योधनवशे स्थितान् ।
पश्येमान्पुरुषव्याघ्रान्संशान्तान्पावकानिव ॥ ३० ॥

देखो, ये सब वीर क्रोधके वशमें होकर दुर्योधनके आज्ञामें रहकर युद्धमें मारे गये, ये पुरुषसिंह वीर इस समय बुझी हुई अग्निके समान शान्त हो गये हैं ॥ ३० ॥

शयनान्युचिताः सर्वे मृदूनि विमलानि च ।
विपन्नास्तेऽद्य वसुधां विवृतामधिशेरते ॥ ३१ ॥

जो पहिले कोमल विमल योग्य बिछौनोंपर सोते थे, वे मरकर आज केवल पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ३१ ॥

बन्दिभिः सततं काले स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ।
शिवानामशिवा घोराः शृण्वन्ति विविधा गिराः ॥ ३२ ॥

पहिले जो सदा भाटोंके मुखसे स्तुति सुनकर प्रसन्न होते थे, वे आज भयानक सियारियोंके अनेक प्रकारके अमङ्गलसूचक शब्द सुन रहे हैं ॥ ३२ ॥

ये पुरा शेरते वीराः शयनेषु यशस्विनः ।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गास्तेऽद्य पांसुषु शेरते ॥ ३३ ॥

जो पहिले यशस्वी वीर शरीरमें चन्दन और अगरु लगाकर सुखदायि पलङ्गपर सोते थे, वे ही आज धूलमें लोटते पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ३३ ॥

तेषामाभरणान्येते गृध्रगोमायुवायसाः ।
आक्षिपन्त्यशिवा घोरा विनदन्तः पुनः पुनः ॥ ३४ ॥

उनके भूषणोंको घोर शब्द करते गीध, गीदड, कौवे और भयानक सियार इधर उधर खींच कर फेंक रहे हैं ॥ ३४ ॥

चापानि विशिखान्पीतान्निस्त्रिंशान्विमला गदाः
युद्धाभिमानिनः प्रीता जीवन्त इव बिभ्रति ॥ ३५ ॥

ये युद्धाभिमानी वीर अब तक भी धनुष, तीक्ष्ण बाण, तेजवान् खड्ग और निर्मल गदा इस प्रकार ले रहे हैं, जैसे जीते हुए प्रसन्न होकर लिये रहते थे ॥ ३५ ॥

सुरूपवर्णा बहवः क्रव्यादैरवघट्टिताः ।
ऋषभप्रतिरूपाक्षाः शेरते हरितस्रजः । ॥ ३६ ॥

सुन्दर रूप और वर्णवाले, बलिष्ठ बैलोंके समान आंखवाले और हरे रंगकी मालाएं पहने हुए अनेक योद्धा सोते रहे हैं और मांस खानेवाले जन्तु इन्हें खा रहे हैं ॥ ३६ ॥

अपरे पुनरालिङ्ग्य गदाः परिघबाहवः ।
शेरतेऽभिमुखाः शूरा दयिता इव योषितः ॥ ३७ ॥

कोई परिघके समान सुन्दर हाथवाले वीर गदाको छातीसे लगाये युद्धकी ओर मुख किये इस प्रकार सोते हैं, जैसे अपनी प्यारी स्त्रीके सङ्ग सोते थे ॥ ३७ ॥

बिभ्रतः कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च ।
न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥ ३८ ॥

जनार्दन ! किसी वीरको चमकदार कवच, और विमल शस्त्र धारण किये देख और उन्हें जीता समझकर कोई मांसखानेवाले जन्तु उनके पास नहीं जाते है ॥ ३८ ॥

क्रव्यादैः कृष्यमाणानामपरेषां महात्मनाम् ।
शातकौम्भ्यः स्रजश्चित्रा विप्रकीर्णाः समन्ततः ॥ ३९ ॥

किसी किसी महात्मा वीरोंको मांसभक्षी जन्तु खींच रहे हैं और उनकी सोनेकी विचित्र मालाएं इधर उधर फैंकी जाती हैं ॥ ३९ ॥

एते गोमायवो भीमा निहतानां यशस्विनाम् ।
कण्ठान्तरगतान्हारानाक्षिपन्ति सहस्रशः ॥ ४० ॥

ये देखो, ये हजारों भयानक सियार मारे गये यशस्वी वीरोंके गलेसे हार निकालकर इधर उधर खींचे फिरते हैं ॥ ४० ॥

सर्वेष्वपररात्रेषु याननन्दन्त बन्दिनः ।
स्तुतिभिश्च परार्ध्याभिरुपचारैश्च शिक्षिताः ॥ ४१ ॥

पहिले समयमें रात्रिके पिछले पहरमें शिक्षित भाट अपने मुखोंसे स्तुति और उपचार सुनाकर जिन्हें आनन्दित करते थे ॥ ४१ ॥

तानिमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमाङ्गनाः ।
कृपणं वृष्णिशार्दूल दुःखशोकार्दिता भृशम् ॥ ४२ ॥

वृष्णिशार्दूल ! उन्हींके पास सुन्दर स्त्रियां आज शोक और दुःखसे अत्यंत व्याकुल होकर रो रही हैं ॥ ४२ ॥

रक्तोत्पलवनानीव विभान्ति रुचिराणि वै ।
मुखानि परमस्त्रीणां परिशुष्काणि केशव ॥ ४३ ॥

हे केशव ! इन सुन्दर स्त्रियोंके सूखते हुए कोमल मुख इस समय लाल कमलोंके समान शोभित दीखते हैं ॥ ४३ ॥

रुदितोपरता ह्येता ध्यायन्त्यः संपरिप्लुताः ।
कुरुस्त्रियोऽभिगच्छन्ति तेन तेनैव दुःखिताः ॥ ४४ ॥

ये कुरुकुलकी स्त्रियां रोना बन्द करके अपने लोगोंका ध्यान करती हुई दुःखित होकर, फिर उन्हींसे ही मिल रही हैं ॥ ४४ ॥

+

एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च ।
रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोषिताम् ॥ ४५ ॥

कौरवोंकी स्त्रियोंके मुख क्रोध और रोनेसे सूर्य और सोनेके तथा तांबेके समान लाल हो गये हैं ॥ ४५ ॥

आसामपरिपूर्णार्थं निशम्य परिदेवितम् ।
इतरेतरसंक्रन्दान्न विजानन्ति योषितः ॥ ४६ ॥

एक दूसरीकी रोनेकी आवाजमें मिलनेके कारण इनकी व्याकुलता सुनकर भी अन्य स्त्रियां भी इसे पूरी तरहसे समझ नहीं पाती हैं ॥ ४६ ॥

एता दीर्घमिवोच्छ्वस्य विक्रुश्य च विलप्य च ।
विस्पन्दमाना दुःखेन वीरा जहति जीवितम् ॥ ४७ ॥

ये वीर स्त्रियां बहुत देर तक रोकर ऊंचे सांस लेकर और दुःखसे व्याकुल होकर बेचैन हुई अपने प्राणोंका त्याग करना चाहती हैं ॥ ४७ ॥

बह्वयो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विलपन्ति च ।
पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मृदुपाणयः ॥ ४८ ॥

अनेक स्त्रियां अपने पतियोंके शरीरोंको देखकर रोती हैं विलाप करती हैं । कोई कोमल हाथोंवाली स्त्रियां अपने हाथोंसे सिर पीट रही हैं ॥ ४८ ॥

शिरोभिः पतितैर्हस्तैः सर्वाङ्गैर्यूथशः कृतैः ।
इतरेतरसंपृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥ ४९ ॥

इस समय यह युद्धभूमि कटकर गिरे हुए सिर, हाथ और शरीरोंसे—जो एकके ऊपर ऊपर पड़े हैं— ढकी हुई दीखती है ॥ ४९ ॥

विशिरस्कानथो कायान्दृष्ट्वा घोराभिनन्दिनः ।
मुह्यन्त्यनुचिता नार्यो विदेहानि शिरांसि च ॥ ५० ॥

ये देखो, ये अनुगामिनी स्त्रियां शरीररहित सिर और सिररहित भयंकर शरीरोंको देखकर मूर्च्छित हो रहीं हैं ॥ ५० ॥

शिरः कायेन संधाय प्रेक्षमाणा विचेतसः ।
अपश्यन्त्यो परं तत्र नेदमस्येति दुःखिताः ॥ ५१ ॥

कहीं कोई मूर्च्छितसी हुई स्त्रियां एक सिरको शरीरमें लगाकर देखती हैं और दुःखसे व्याकुल होकर कहती हैं कि यह सिर इनका नहीं है ॥ ५१ ॥

बाहूरुचरणानन्यान्विशिखोन्मथितान्पृथक् ।
संदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्छन्त्येताः पुनः पुनः ॥ ५२ ॥

कोई बाणोंसे कटे हुवे हाथ, जांघ और पैर मिलाकर दुःखसे व्याकुल होकर बार बार मूर्छित हो रहीं हैं ॥ ५२ ॥

उत्कृत्तशिरसश्चान्यान्विजग्धान्मृगपक्षिभिः ।
दृष्ट्वा काश्चिन्न जानन्ति भर्तॄन्भरतयोषितः ॥ ५३ ॥

कितने शरीरोंके सिर कटकर अदृश्य हो गये हैं, कितने मांसभक्षी पशु और पक्षियोंने खाये हैं, उनको देखकर भी भरतकुलोंकी स्त्रियां अपने पतियोंको नहीं पहचानती ॥ ५३ ॥

पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मधुसूदन ।
प्रेक्ष्य भ्रातॄन्पितॄन्पुत्रान्पतींश्च निहतान्परैः ॥ ५४ ॥

हे मधुसूदन ! दूसरी स्त्रियां शत्रुओंके हाथसे मारे गये भाई, पिता, पुत्र और पतियोंको पृथ्वीमें पडा देख अपने हाथोंसे सिर पीट रही हैं ॥ ५४ ॥

बाहुभिश्च सखड्गैश्च शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
अगम्यकल्पा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ ५५ ॥

इस समय यह पृथिवी रुधिर और मांसके कीचडसे भरी, खड्गके सहित कटे हुवे हाथ और कुण्डल सहित शिरोंसे ऐसी पूर्ण हो गई है कि चलने फिरने योग्य नहीं रही ॥ ५५ ॥

न दुःखेषूचिताः पूर्वं दुःखं गाहन्त्यनिन्दिताः ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैरुपकीर्णां वसुंधराम् ॥ ५६ ॥

हे यदुकुलश्रेष्ठ ! ये निन्दारहित स्त्रियां पहिले ऐसे दुःख भोगने योग्य नहीं थी, परन्तु आज दुःखके समुद्रमें पडी हैं; यह भूमि इनके भाई, पिता और पुत्रोंसे ढंक गयी है ॥ ५६ ॥

यूथानीव किशोरीणां सुकेशीनां जनार्दन ।
स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकशः ॥ ५७ ॥

जनार्दन ! इस समय महाराज धृतराष्ट्रके बेटोंकी थोडी अवस्थावाली और सुन्दर बालोंवाली स्त्रियोंके अनेक झुंड बछेडियोंके समुदायके समान दिखायी देते हैं ॥ ५७ ॥

अतो दुःखतरं किं नु केशव प्रतिभाति मे ।
यदिमाः कुर्वते सर्वा रूपमुच्चावचं स्त्रियः ॥ ५८ ॥

केशव ! मेरे लिये इससे अधिक दुःख और क्या होगा ? ये सब युवतियां यहां आकर अनेक प्रकारके विलाप कर रही हैं ॥ ५८ ॥

नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु ।
या पश्यामि हतान्पुत्रान्पौत्रान्भ्रातॄंश्च केशव ।
एवमार्ता विलपती ददर्श निहतं सुतम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ४०३ ॥

माधव ! केशव ! इससे निश्चय होता है कि मैंने पहिले जन्मोंमें महान् अपराध किया है। इसलिये ही आज अपने पुत्र, पौत्र और भाईयोंको मारा गया देख रही हूं। इस प्रकार आर्त विलाप करती हुई गान्धारीने मारे गये अपने पुत्र दुर्योधनको देखा ॥ ५९ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ४०३ ॥

: १७ :

वैशंपायन उवाच—

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा गान्धारी शोककर्शिता ।
सहसा न्यपतद्भूमौ छिन्नेव कदली वने ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– हे राजन् जनमेजय ! दुर्योधनको मारा हुआ देखकर गान्धारी शोकसे व्याकुल होकर इस प्रकार पृथ्वीमें सहसा गिर पडी जैसे वनमें कटे हुए केलेका वृक्ष गिर पडता है ॥ १ ॥

सा तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां विक्रुश्य च पुनः पुनः
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य शयानं रुधिरोक्षितम् ॥ २ ॥

फिर थोडे समयमें चैतन्य होकर रुधिरसे भींगे हुए दुर्योधनको सोया देख बारंबार पुकारकर रोने लगी ॥ २ ॥

परिष्वज्य च गान्धारी कृपणं पर्यदेवयत् ।
हा हा पुत्रेति शोकार्ता विललापाकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥

उसे आलिंगन करके शोकसे व्याकुल होकर हा पुत्र, हा पुत्र कहकर रोने लगी । इस समय गान्धारीकी सब इन्द्रियां व्याकुल हो गयी थीं ॥ ३ ॥

सुगूढजत्रु विपुलं हारनिष्कनिषेवितम् ।
वारिणा नेत्रजेनोरः सिञ्चन्ती शोकतापिता ।
समीपस्थं हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

दुर्योधनके गलेकी बडी हड्डी मांससे छिपी हुई थी । हार, निष्क आदि भूषणोंसे युक्त पुत्रके हृदयको आसुओंसे भिगोती हुई गान्धारी शोकसे व्याकुल हो गयी थी । फिर पास खडे हुए श्रीकृष्णसे ऐसे वचन बोली ॥ ४ ॥

उपस्थितेऽस्मिन्संग्रामे ज्ञातीनां संक्षये विभो ।
मामयं प्राह वार्ष्णेय प्राञ्जलिर्नृपसत्तमः ।
अस्मिञ्ज्ञातिसमुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतु मे ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! प्रभो ! जब यह क्षत्रियोंका नाश करनेवाला युद्ध होनेवाला था, तब सब राजाओंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने हाथ जोडकर मुझसे कहा था, हे माता ! अब इस बन्धु–बान्धवोंके घोर युद्धमें तुम हमारे विजयके लिये आशीर्वाद दो ॥ ५ ॥

इत्युक्ते जानती सर्वमहं स्वं व्यसनागमम् ।
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ६ ॥

पुरुषसिंह ! उसके ऐसा बोलनेपर मैंने इस आनेवाली आपत्तिको पहिले ही जान लिया था; तब मैंने कहा कि, जहां धर्म है वहां ही विजय होगी ॥ ६ ॥

यथा न युध्यमानस्त्वं न संप्रमुह्यसि पुत्रक ।
ध्रुवं शस्त्रजिताँल्लोकान्प्राप्तास्यमरवद्विभो ॥ ७ ॥

प्रभो ! पुत्र ! तुम युद्ध करते समय मोहित होकर कुछ भूल नहीं करोगे तो शस्त्रोंसे जीते हुए लोकोंको देवताओंके समान प्राप्त करोगे ॥ ७ ॥

इत्येवमब्रुवं पूर्वं नैनं शोचामि वै प्रभो ।
धृतराष्ट्रं तु शोचामि कृपणं हतबान्धवम् ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! मैंने इससे पहिलेही यह कह दिया था, इसलिये इसका मुझे कुछ शोक नहीं है; परन्तु बन्धु–बान्धवरहित दीन राजा धृतराष्ट्रके लिये शोक करती हूं ॥ ८ ॥

अमर्षणं युधां श्रेष्ठं कृतास्त्रं युद्धदुर्मदम् ।
शयानं वीरशयने पश्य माधव मे सुतम् ॥ ९ ॥

हे माधव ! ये देखो, महा क्रोधी, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, सब शस्त्र विद्या जाननेवाले और युद्धमत्त मेरे पुत्र दुर्योधन आज वीरशय्या पर सोते हैं ॥ ९ ॥

योऽयं मूर्धावसिक्तानामग्रे याति परंतपः ।
सोऽयं पांसुषु शेतेऽद्य पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १० ॥

देखो समयकी गति कैसी कठिन है कि जो शत्रुनाशक दुर्योधन पहिले मूर्धाभिषित राजाओंके आगे चलते थे वे ही आज धूलमें लिपटे हुए पृथ्वीमें पडे हैं ॥ १० ॥

ध्रुवं दुर्योधनो वीरो गतिं नसुलभां गतः ।
तथा ह्यभिमुखः शेते शयने वीरसेविते ॥ ११ ॥

हमें यह निश्चिय होता है कि वीर दुर्योधन जो सुलभ नहीं है उस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है; क्योंकि यह वीरसेवित शय्यापर युद्धहीकी ओर मुख करके सो रहा है ॥ ११ ॥

यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति महीक्षितः ।
महीतलस्थं निहतं गृध्रास्तं पर्युपासते ॥ १२ ॥

जिसके पास पहिले राजा लोग बैठते थे और उसको आनन्दित करते थे; आज उसही मरकर पृथ्वीमें पडे हुए दुर्योधनके पास गिद्ध बैठे हैं ॥ १२ ॥

यं पुरा व्यजनैरग्र्यैरुपवीजन्ति योषितः ।
तमद्य पक्षव्यजनैरुपवीजन्ति पक्षिणः ॥ १३ ॥

पहिले समयमें स्त्रियां उत्तम पङ्खोंसे उसको हवा करती थीं, आज उसहीको पक्षी अपनी पांखोंसे हवा कर रहे हैं ॥ १३ ॥

एष शेते महाबाहुर्बलवान्सत्यविक्रमः ।
सिंहेनेव द्विपः संख्ये भीमसेनेन पातितः ॥ १४ ॥

यह महाबलवान् सत्य पराक्रमी महाबाहू दुर्योधन युद्धमें भीमसेनसे मारा जाकर ऐसे सो रहा है, जैसे सिंह हाथीको मार डालता है ॥ १४ ॥

पश्य दुर्योधनं कृष्ण शयानं रुधिरोक्षितम् ।
निहतं भीमसेनेन गदामुद्यम्य भारत ॥ १५ ॥

हे कृष्ण ! ये देखो, वीर दुर्योधन भीमसेनके हाथसे मरकर गदा लिये रुधिरमें भींगे पृथ्वीमें सोते हैं ॥ १५ ॥

अक्षौहिणीर्महाबाहुर्दश चैकां च केशव ।
अनयद्यः पुरा संख्ये सोऽनयान्निधनं गतः ॥ १६ ॥

केशव ! पहिले जिस महाबाहु वीरने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका नेतृत्व किया था, वही अनीतिके बर्तनसे युद्धमें मारे गये ॥ १६ ॥

एष दुर्योधनः शेते महेष्वासो महारथः ।
शार्दूल इव सिंहेन भीमसेनेन पातितः ॥ १७ ॥

महाधनुषधारी महारथी दुर्योधन भीमसेनके हाथोंसे मारा जाकर पृथ्वीमें सो रहा है, जैसे सिंहसे मारा हुआ शार्दूल ॥ १७ ॥

विदुरं ह्यवमन्यैष पितरं चैव मन्दभाक् ।
बालो वृद्धावमानेन मन्दो मृत्युवशं गतः ॥ १८ ॥

इस मूर्ख और दुर्भागी बालकने विदुर, अपने पिता धृतराष्ट्र और श्रेष्ठ वृद्धोंका निरादर किया था, इससे यह मारा गया ॥ १८ ॥

निःसपत्ना मही यस्य त्रयोदश समाः स्थिता ।
स शेते निहतो भूमौ पुत्रो मे पृथिवीपतिः ॥ १९ ॥

जिसके वशमें शत्रुरहित पृथ्वी तेरह वर्षों तक रही थी, वही मेरा पुत्र पृथ्वीपति दुर्योधन आज मारा जाकर पृथ्वीमें पडा है ॥ १९ ॥

अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्तराष्ट्रानुशासनात् ।
पूर्णां हस्तिगवाश्वस्य वार्ष्णेय न तु तच्चिरम् ॥ २० ॥

हे कृष्ण ! वार्ष्णेय ! थोडे ही दिन हुए कि हाथी, घोडे और गौओंसे भरी इस पृथ्वीको मैंने राजा दुर्योधनकी आज्ञामें चलती देखा था, परंतु वह चिरकाल नहीं रहा ॥ २० ॥

तामेवाद्य महाबाहो पश्याम्यन्यानुशासनात् ।
हीनां हस्तिगवाश्वेन किं नु जीवामि माधव ॥ २१ ॥

महाबाहु माधव ! वही आज हाथी, घोडे और गौओंसे हीन होकर दूसरेकी आज्ञामें गयी है । अब हमें जीनेसे क्या सुख है ? ॥ २१ ॥

इदं कृच्छ्रतरं पश्य पुत्रस्यापि वधान्मम ।
यदिमाः पर्युपासन्ते हतान्शूरान्रणे स्त्रियः ॥ २२ ॥

देखो, मेरे पुत्रके वधसे भी अधिक दुःखप्रद यह है कि ये स्त्रियां युद्धमें मारे गये अपने बीर पतियोंके पास बैठी रो रहीं हैं ॥ २२ ॥

प्रकीर्णकेशां सुश्रोणीं दुर्योधनभुजाङ्कगाम् ।
रुक्मवेदीनिभां पश्य कृष्ण लक्ष्मणमातरम् ॥ २३ ॥

हे कृष्ण ! ये देखो, उत्तम बाल और पतली कमरवाली वेदीके समान तेजस्विनी लक्ष्मणकी माता दुर्योधनकी भुजाओंमें केश खोलकर रो रही है ॥ २३ ॥

नूनमेषा पुरा बाला जीवमाने महाभुजे ।
भुजावाश्रित्य रमते सुभुजस्य मनस्विनी ॥ २४ ॥

जिस समय राजा जीवित थे, तब निश्चयसे ही यह मनस्विनी सुन्दरी बाला आकर्षक बाहुवाले अपने पतिकी भुजाओंका आश्रय लेकर इसी तरह रममाण होती होगी ॥ २४ ॥

कथं तु शतधा नेदं हृदयं मम दीर्यते ।
पश्यन्त्या निहतं पुत्रं पुत्रेण सहितं रणे ॥ २५ ॥

मैं अपने बेटेको उसके पुत्रके साथ मारा हुवा देखती हूं, तो भी इस मेरे हृदयके सैकडों टुकडे क्यों नहीं होते ? ॥ २५ ॥

पुत्रं रुधिरसंसिक्तमुपजिघ्रत्यनिन्दिता ।
दुर्योधनं तु वामोरूः पाणिना परिमार्जति ॥ २६ ॥

ये देखो, सुंदर जांघोवाली अनिन्दित लक्ष्मणकी माता रुधिरसे भीगे हुए अपने पुत्रका माथा सूंघती है और दुर्योधनको हाथसे पोंछती है ॥ २६ ॥

किं नु शोचति भर्तारं पुत्रं चैषा मनस्विनी ।
तथा ह्यवस्थिता भाति पुत्रं चाप्यभिवीक्ष्य सा ॥ २७ ॥

यह मनस्विनी पुत्रके लिये या पतिके लिये —किसके लिये शोक करती है ? ऐसी विलक्षण अवस्था उसकी दिखती है । पुत्रको देखकर वह ॥ २७ ॥

स्वशिरः पञ्चशाखाभ्यामभिहत्यायतेक्षणा ।
पतत्युरसि वीरस्य कुरुराजस्य माधव ॥ २८ ॥

माधव ! बडे नेत्रवाली रानी अपने दोनों हाथोंसे सिर पीटती है और अपने वीर पति कुरुराज दुर्योधनकी छातीपर गिर पडी है ॥ २८ ॥

पुण्डरीकनिभा भाति पुण्डरीकान्तरप्रभा ।
मुखं विमृज्य पुत्रस्य भर्तुश्चैव तपस्विनी ॥ २९ ॥

कमलपुष्पके समान प्रभाववाली तपस्विनी कमलके समान प्रफुल्लित शोभित होती है । कभी अपने पुत्रका मुख पोंछती है तो कभी पतिका ॥ २९ ॥

यदि चाप्यागमाः सन्ति यदि वा श्रुतयस्तथा ।
ध्रुवं लोकानवाप्तोऽयं नृपो बाहुबलार्जितान् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ४३३ ॥

यदि वेद और श्रुति सब सत्य है, तो राजा दुर्योधन अवश्यही अपने बाहु बलसे प्राप्त पुण्य लोकोंमें गया है ॥ ३० ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ४३३ ॥

ः १८ ः

गान्धार्युवाच—

पश्य माधव पुत्रान्मे शतसंख्याञ्जितक्लमान् ।
गदया भीमसेनेन भूयिष्ठं निहतान्रणे ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे माधव ! ये देखो, युद्धभूमिमें भीमसेनने अपनी गदासे मारे हुवे, परिश्रमको जीत चुके हुए मेरे सौ बेटे पृथ्वीमें पडे हैं ॥ १ ॥

इदं दुःखतरं मेऽद्य यदिमा मुक्तमूर्धजाः ।
हतपुत्रा रणे बालाः परिधावन्ति मे स्नुषाः ॥ २ ॥

सबसे अधिक दुःख मुझे आज इसका हो रहा है कि मेरी बालिका स्नुषाएं— जिनके पुत्र मारे गये हैं— रणभूमिमें बाल खोले इधर उधर दौड रही हैं ॥ २ ॥

प्रासादतलचारिण्यश्चरणैर्भूषणान्वितैः ।
आपन्ना यत्स्पृशन्तीमा रुधिरार्द्रां वसुंधराम् ॥ ३ ॥

जो पहिले पैरोंमें भूषण पहिन कर प्रासादोंके छत पर टहलती थीं, सो आज विपत्तियोंसे दुःखित होकर इस रुधिरसे भीगी पृथ्वीका स्पर्श कर रही हैं ॥ ३ ॥

गृध्रानुत्सारयन्त्यश्च गोमायून्वायसांस्तथा ।
शोकेनार्ता विघूर्णन्त्यो मत्ता इव चरन्त्युत ॥ ४ ॥

ये सब बडे कष्टसे गिद्ध, सियार और कौओंको हटाती हैं और शोकसे व्याकुल होकर पागलोंके समान इधर उधर घूम रही हैं ॥ ४ ॥

एषान्या त्वनवद्याङ्गी करसंमितमध्यमा ।
घोरं तद्वैशसं दृष्ट्वा निपतत्यतिदुःखिता ॥ ५ ॥

ये देखो, दूसरी पतली कमरवाली सुन्दर शरीरवाली स्त्रियां इस घोर युद्धभूमिको देखकर अत्यंत दुःखसे व्याकुल होकर पृथ्वीमें पडी हैं ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा मे पार्थिवसुतामेतां लक्ष्मणमातरम् ।
राजपुत्रीं महाबाहो मनो न व्युपशाम्यति ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! एक राजाकी बेटी लक्ष्मणकी माता, इस राजपुत्रीको देखकर मेरा मन शांत नहीं होता ॥ ६ ॥

भ्रातॄंश्चान्याः पतींश्चान्याः पुत्रांश्च निहतान्भुवि ।
दृष्ट्वा परिपतन्त्येताः प्रगृह्य सुभुजा भुजान् ॥ ७ ॥

कोई अपने भाईयोंको, कोई पतियोंको और कोई पुत्रोंको युद्धमें मारे गये देख, वे सुंदर भुजावाली स्त्रियां उनकी भुजाओंको पकड लेती और गिर पडती हैं ॥ ७ ॥

मध्यमानां तु नारीणां वृद्धानां चापराजित ।
आक्रन्दं हतबन्धूनां दारुणे वैशसे शृणु ॥ ८ ॥

हे अपराजित कृष्ण ! इस भयंकर युद्धमें जिनके बन्धु मारे गये हैं, उन मध्यम और वृद्ध स्त्रियोंका यह विलाप सुनो ॥ ८ ॥

रथनीडानि देहांश्च हतानां गजवाजिनाम् ।
आश्रिताः श्रममोहार्ताः स्थिताः पश्य महाबल ॥ ९ ॥

हे महाबली कृष्ण ! कहीं कोई स्त्रियां थकाव और मोहसे व्याकुल होकर दूर हुए रथके जुए या मारे गये हाथी और घोडोंके शरीरोंका आश्रय लेकर खडी हैं ॥ ९ ॥

अन्या चापहृतं कायाचारुकुण्डलमुन्नसम् ।
स्वस्य बन्धोः शिरः कृष्ण गृहीत्वा पश्य तिष्ठति ॥ १० ॥

हे कृष्ण ! कोई स्त्री अपने बन्धुका कटा हुआ सुंदर कुण्डलोंसे शोभित और ऊंची नासिकावाले सिरको हाथमें लेकर खडी है ॥ १० ॥

×

पूर्वजातिकृतं पापं मन्ये नाल्पमिवानघ ।
एताभिरनवद्याभिर्मया चैवाल्पमेधया ॥ ११ ॥

अनघ ! हमें यह निश्चय होता है कि अल्पबुद्धिवाली मैंने और इन अनिंद्य सब स्त्रियोंने पहिले जन्ममें कोई महा पाप किया था ॥ ११ ॥

तदिदं धर्मराजेन यातितं नो जनार्दन ।
न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय कर्मणोः शुभपापयोः ॥ १२ ॥

इसीसे धर्मराजने हमें विपत्तिमें डाला है । हे जनार्दन कृष्ण ! पहिले किये हुए पुण्य और पापका अवश्य ही फल होता है, नाश नहीं होता ॥ १२ ॥

प्रत्यग्रवयसः पश्य दर्शनीयकुचोदराः ।
कुलेषु जाता ह्रीमत्यः कृष्णपक्ष्माक्षिमूर्धजाः ॥ १३ ॥

ये देखो, इन स्त्रियोंकी उत्तम अवस्था है । इनके वक्षःस्थल और उदर दर्शनीय हैं । ये बडे बडे कुलमें उत्पन्न हुई लज्जावती हैं । माधव ! इनकी आंखोंकी बरौनियां और सिरके बाल काले हैं ॥ १३ ॥

हंसगद्गदभाषिण्यो दुःखशोकप्रमोहिताः ।
सारस्य इव वाशन्त्यः पतिताः पश्य माधव ॥ १४ ॥

हंसके समान रुद्धकण्ठ बोलोंवाली ये स्त्रियां शोक और दुःखसे व्याकुल सारसियोंके समान रोती हुई भूमिपर गिर पडी हैं ॥ १४ ॥

फुल्लपद्मप्रकाशानि पुण्डरीकाक्ष योषिताम् ।
अनवद्यानि वक्त्राणि तपत्यसुखरश्मिवान् ॥ १५ ॥

हे कृष्ण ! ये देखो, फूले कमलके समान शोभित इन स्त्रियोंके सुन्दर मुखोंको सूर्य अपनी अप्रिय किरणोंसे तपा रहा है ॥ १५ ॥

ईर्षूणां मम पुत्राणां वासुदेवावरोधनम् ।
मत्तमताङ्गदर्पाणां पश्यन्त्यद्य पृथग्जनाः ॥ १६ ॥

हे कृष्ण ! महा अभिमानी मतवाले हाथियोंके समान बलवान द्वेषी मेरे बेटोंकी इन स्त्रियोंको आज सामान्य जन देख रहे हैं ॥ १६ ॥

शतचन्द्राणि चर्माणि ध्वजांश्चादित्यसंनिभान् ।
रौक्माणि चैव वर्माणि निष्कानपि च काञ्चनान् ॥ १७ ॥

सौ चन्द्राकार युक्त ढालें, सूर्यके समान ध्वजाएं, सोनेके कवच, सोनेके निष्क ॥ १७ ॥

शीर्षत्राणानि चैतानि पुत्राणां मे महीतले ।
पश्य दीप्तानि गोविन्द पावकान्सुहुतानिव ॥ १८ ॥

और शिरस्त्राण– ये सब मेरे पुत्रोंके हैं और ये देदीप्यमान होकर पृथ्वीमें इस प्रकार पडे हैं जैसे जलती हुई अग्नि ॥ १८ ॥

एष दुःशासनः शेते शूरेणामित्रघातिना ।
पीतशोणितसर्वाङ्गो भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

हे कृष्ण ! शत्रुनाशन शूर वीर भीमसेनके हाथसे मर कर यह दुःशासन यहां सो रहा है । भीमसेनने इसके सब शरीरका रुधिर पी लिया ॥ १९ ॥

गदया वीरघातिन्या पश्य माधव मे सुतम् ।
द्यूतक्लेशाननुस्मृत्य द्रौपद्या चोदितेन च ॥ २० ॥

माधव ! देखो, द्यूत खेलनेके समय दिये हुए क्लेशोंका स्मरण करके द्रौपदीसे प्रेरणा दिये हुए वीरोंका नाश करनेवाले भीमने इसको गदासे मारा है ॥ २० ॥

उक्ता ह्यनेन पाञ्चाली सभायां द्यूतनिर्जिता ।
प्रियं चिकीर्षता भ्रातुः कर्णस्य च जनार्दन ॥ २१ ॥

हे जनार्दन ! इसने अपने भाई और कर्णको प्रसन्न करनेकी इच्छासे जुवेमें जीती हुई द्रौपदीसे कहा था ॥ २१ ॥

सहैव सहदेवेन नकुलेनार्जुनेन च ।
दासभार्यासि पाञ्चालि क्षिप्रं प्रविश नो गृहान् ॥ २२ ॥

हे पाञ्चालि ! तू नकुल, सहदेव और अर्जुनके सहित हमारी दासी हो गई । अब शीघ्र हमारे घरोंमें प्रवेश कर ॥ २२ ॥

ततोऽहमब्रुवं कृष्ण तदा दुर्योधनं नृपम् ।
मृत्युपाशपरिक्षिप्तं शकुनिं पुत्र वर्जय ॥ २३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैंने उस ही समय राजा दुर्योधनसे कहा था कि, हे पुत्र ! इस मृत्यु कि फांसमें पडे हुवे अपने मामा शकुनीका त्याग कर ॥ २३ ॥

निबोधैनं सुदुर्बुद्धिं मातुलं कलहप्रियम् ।
क्षिप्रमेनं परित्यज्य पुत्र शाम्यस्व पाण्डवैः ॥ २४ ॥

पुत्र ! तुम दुर्बुद्धिवाले कलहप्रिय मामाको समझो और शीघ्रही इसको छोडकर पाण्डवोंसे सन्धि कर ले ॥ २४ ॥

न बुध्यसे त्वं दुर्बुद्धे भीमसेनममर्षणम् ।
वाङ्नाराचैस्तुदंस्तीक्ष्णैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ २५ ॥

अरे दुर्बुद्धे ! तू क्रोधी भीमसेनको नहीं जानता, जैसे कोई मसाल जलाकर हाथीको क्रोधित करता है ऐसे ही तू अपने वचन रूपी तेज बाणोंसे भीमसेनको क्रोध दिलाता है ॥ २५ ॥

तानेष रभसः क्रूरो वाक्शल्यानवधारयन् ।
उत्ससर्ज विषं तेषु सर्पो गोवृषभेष्विव ॥ २६ ॥

उन वाक्बाणोंका स्मरण करके क्रोधी क्रूर भीमसेनने मेरे पुत्रोंपर इसी प्रकार क्रोधरूपी विष छोडा है जैसे विषैला सांप अपने विषसे गाय बैलोंका नाश करता है ॥ २६ ॥

एष दुःशासनः शेते विक्षिप्य विपुलौ भुजौ ।
निहतो भीमसेनेन सिंहेनेव महर्षभः ॥ २७ ॥

भीमसेनने मारा हुआ यह दुःशासन अपने दोनों बडे बडे हाथ फैलाये इस प्रकार पृथ्वीमें पडा है जैसे सिंहसे मारा हुआ बडा बैल ॥ २७ ॥

अत्यर्थमकरोद्रौद्रं भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
दुःशासनस्य यत्क्रुद्धोऽपिबच्छोणितमाहवे ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ४६१ ॥

महा क्रोधी भीमसेनने युद्धमें क्रोधित होकर यह महा घोर कर्म किया है, जो दुःशासनका रुधिर पिया ॥ २८ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ४६१ ॥

: १९ :

गान्धार्युवाच—

एष माधव पुत्रो मे विकर्णः प्राज्ञसंमतः ।
भूमौ विनिहतः शेते भीमेन शतधा कृतः ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे माधव ! यह मेरा पुत्र महापण्डित विकर्ण भीमसेनसे सौ सौ टुकडे करके मारा जाकर पृथ्वीमें पडा है ॥ १ ॥

गजमध्यगतः शेते विकर्णो मधुसूदन ।
नीलमेघपरिक्षिप्तः शरदीव दिवाकरः ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! ये हाथियोंके झुण्डमें सोते हुए विकर्ण ऐसे शोभित हो रहे हैं, जैसे शरदकालके काले मेघोंके बीचमें दिवाकर ॥ २ ॥

अस्य चापग्रहेणैष पाणिः कृतकिणो महान् ।
कथंचिच्छिद्यते गृध्रैरत्तुकामैस्तलत्रवान् ॥ ३ ॥

इसके मोटे हाथमें सतत धनुष पकडनेके कारण घट्टा पडा है। इसलिये इसका मांस खानेकी इच्छावाले गिद्ध कष्टसेही काट रहे हैं ॥ ३ ॥

अस्य भार्यामिषप्रेप्सून्गृध्रानेतांस्तपस्विनी ।
वारयत्यनिशं बाला न च शक्नोति माधव ॥ ४ ॥

हे माधव ! इसकी तपस्विनी बालिका पत्नी इन मांस खानेवाले गिद्धोंको बहुत कष्टसे सर्वदा हटाती है, परन्तु हटा नहीं सकती ॥ ४ ॥

युवा वृन्दारकः शूरो विकर्णः पुरुषर्षभ ।
सुखोचितः सुखार्हश्च शेते पांसुषु माधव ॥ ५ ॥

पुरुषश्रेष्ठ माधव ! विकर्ण तरुण, मनोहर, शूर, सुखोंसे युक्त और सुखभोगनेके योग्य था, सो आज धूलमें लपटा हुआ पृथ्वीमें पडा है ॥ ५ ॥

कर्णिनालीकनाराचैर्भिन्नमर्माणमाहवे ।
अद्यापि न जहात्येनं लक्ष्मीर्भरतसत्तमम् ॥ ६ ॥

इसके सब मर्मस्थान युद्धमें कर्णी, नालीक और नाराच बाणोंसे कट गये हैं, तो भी इस भरतश्रेष्ठका तेज नष्ट नहीं हुआ ॥ ६ ॥

एष संग्रामशूरेण प्रतिज्ञां पालयिष्यता ।
दुर्मुखोऽभिमुखः शेते हतोऽरिगणहा रणे ॥ ७ ॥

हे कृष्ण ! यह शत्रुनाशन दुर्मुख युद्धकी ओर मुख किये प्रतिज्ञापालक युद्धवीर भीमसेनके हाथसे मारा जाकर सो रहा है ॥ ७ ॥

तस्यैतद्वदनं कृष्ण श्वापदैरर्धभक्षितम् ।
विभात्यभ्यधिकं तात सप्तम्यामिव चन्द्रमाः ॥ ८ ॥

तात श्रीकृष्ण ! इसका यह मुख हिंसक पशु आधा खा गये हैं, तो भी वह ऐसा शोभित होता है, जैसे सप्तमीका चन्द्रमा ॥ ८ ॥

शूरस्य हि रणे कृष्ण यस्याननमथेदृशम् ।
स कथं निहतोऽमित्रैः पांसून्ग्रसति मे सुतः ॥ ९ ॥

कृष्ण ! देखो, इस संग्राम वीरका मुख कैसा दीखता है ? तो भी न जाने यह मेरा पुत्र शत्रुओंके हाथसे मरकर धूलमें क्यों पडा है ? ॥ ९ ॥

यस्याहवमुखे सौम्य स्थाता नैवोपपद्यते ।
स कथं दुर्मुखोऽमित्रैर्हतो विबुधलोकजित् ॥ १० ॥

जिस वीरके आगे युद्धमें कोई भी खडा न हो सकता था, जो अपने बलसे स्वर्गको भी जीत सकता था, वह दुर्मुख शत्रुओंके हाथसे कैसे मारा गया ? ॥ १० ॥

चित्रसेनं हतं भूमौ शयानं मधुसूदन ।
धार्तराष्ट्रमिमं पश्य प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ११ ॥

हे मधुसूदन ! जगत्में वीर जिस धनुषधारीकी उपमा देते थे, वह धृतराष्ट्रका बेटा चित्रसेन आज मारा जाकर पृथ्वीमें सोता है ॥ ११ ॥

तं चित्रमाल्याभरणं युवत्यः शोककर्शिताः ।
क्रव्यादसंघैः सहिता रुदन्त्यः पर्युपासते ॥ १२ ॥

उस विचित्र मालाधारी और आभूषण धारण करनेवालेके पास मांस खानेवाले जन्तुओंके सहित, शोकसे व्याकुल हो रोती युवतियां बैठी हैं ॥ १२ ॥

स्त्रीणां रुदितनिर्घोषः श्वापदानां च गर्जितम् ।
चित्ररूपमिदं कृष्ण विचित्रं प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥

सुन्दर स्त्रियोंके रोनेसे और मांस खानेवाले जन्तुओंकी गर्जनासे यह अद्भुत युद्धभूमि इस समय मुझे विचित्र दीखती है ॥ १३ ॥

युवा वृन्दारको नित्यं प्रवरस्त्रीनिषेवितः ।
विविंशतिरसौ शेते ध्वस्तः पांसुषु माधव ॥ १४ ॥

हे माधव ! जिसकी सुन्दर स्त्रियां नित्य सेवा करती थीं, वह देव समान तरुण विविंशति नष्ट होकर धूलमें सोता है ॥ १४ ॥

शरसंकृत्तवर्माणं वीरं विशसने हतम् ।
परिवार्यासते गृध्राः परिविंशा विविंशतिम् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, बाणोंसे कवच कटा हुआ, युद्धमें मारा गया यह वीर विविंशति गिद्धोंसे घिरा हुआ है ॥ १५ ॥

प्रविश्य समरे वीरः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
आविश्य शयने शेते पुनः सत्पुरुषोचितम् ॥ १६ ॥

युद्धमें पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर जो शूरवीर लडता था, वही आज महात्माके योग्य शय्यापर सोता है ॥ १६ ॥

स्मितोपपन्नं सुनसं सुभ्रु ताराधिपोपमम् ।
अतीव शुभ्रं वदनं पश्य कृष्ण विविंशतेः ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, विविंशतिका हंसता हुआ मनोहर नाक और सुन्दर भौंहेंवाला मुख अत्यन्त तेजस्वी चन्द्रमाके समान दीख रहा है ॥ १७ ॥

यं स्म तं पर्युपासन्ते वसुं वासवयोषितः ।
क्रीडन्तमिव गन्धर्वं देवकन्याः सहस्रशः ॥ १८ ॥

इसकी सेवामें सुन्दर स्त्रियां रहती थीं, जैसे क्रीडा करते हुए गन्धर्वके साथ देवताओंकी सहस्रों कन्याएं तथा कुबेरके साथ इन्द्रकी अप्सराएं ॥ १८ ॥

हन्तारं वीरसेनानां शूरं समितिशोभनम् ।
निबर्हणममित्राणां दुःसहं विषहेत कः ॥ १९ ॥

शत्रुओंकी शूर सेनाके नाश करनेवाले युद्धमें प्रकाशित महावीर दुःसहका वेग कौन सह सकता था ? ॥ १९ ॥

दुःसहस्यैतदाभाति शरीरं संवृतं शरैः ।
गिरिरात्मरुहैः फुल्लैः कर्णिकारैरिवावृतः ॥ २० ॥

दुःसहका लगे हुए बाणोंसे भरा हुआ शरीर ऐसा दीखता है, जैसे फूले हुए कचनारके वृक्षोंसे पर्वत ॥ २० ॥

शातकौम्भ्या स्रजा भाति कवचेन च भास्वता ।
अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दुःसहः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ४८२ ॥

दुःसह प्राणहीन होते हुए भी सोनेकी माला और चमकते हुए कवचसे इसकी शोभा ऐसी दीखती है, जैसे जलती हुई अग्निके सहित सफेद पर्वतकी ॥ २१ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ४८२ ॥

: २० :

गान्धार्युवाच—

अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च माधव ।
पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम् ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे माधव ! जिसको जगत्में बल और तेजमें अपने पितासे और आपसे डेढ गुना कहते थे, जो मत्त सिंहके समान गर्वित था ॥ १ ॥

यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम् ।
स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशं गतः ॥ २ ॥

उस अकेलेने मेरे पुत्र दुर्योधनके भयानक चक्रव्यूहको तोड दिया था, वही अभिमन्यु शत्रुओंके लिये मृत्यु होकर स्वयं भी मृत्यु वश हुआ ॥ २ ॥

तस्योपलक्षये कृष्ण कार्ष्णेरमिततेजसः ।
अभिमन्योर्हतस्यापि प्रभा नैवोपशाम्यति ॥ ३ ॥

हे कृष्ण ! उस महातेजस्वी अर्जुनपुत्र अभिमन्युका तेज मारे जानेपर भी अभीतक शान्त नहीं हुआ है, यह मैं देखती हूं ॥ ३ ॥

एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः ।
आर्ता बाला पतिं वीरं शोच्या शोचत्यनिन्दिता ॥ ४ ॥

यह राजा विराटकी पुत्री और गाण्डीवधारी अर्जुनकी स्नुषा निन्दारहित उत्तरा अपने बालक पतिको मरा हुआ देख रो रही है ॥ ४ ॥

तमेषा हि समासाद्य भार्या भर्तारमन्तिके ।
विराटदुहिता कृष्ण पाणिना परिमार्जति ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! विराट राजाकी कन्या और अभिमन्युकी पत्नी उत्तरा पतिके पास जाकर उसके शरीरपर हाथ फेर रही है ॥ ५ ॥

तस्य वक्त्रमुपाघ्राय सौभद्रस्य यशस्विनी ।
विबुद्धकमलाकारं कम्बुवृत्तशिरोधरम् ॥ ६ ॥

फूले हुए कमलके समान मुखवाले और शंखके समान गलेवाले सुभद्रा पुत्रको यशस्विनी और ॥ ६ ॥

काम्यरूपवती चैषा परिष्वजति भामिनी ।
लज्जमाना पुरेवैनं माध्वीकमदमूर्छिता ॥ ७ ॥

कमनीय रूपवती सुन्दरी उत्तरा सूंघकर उसे आलिंगन दे रही है। पहिले ये लज्जामें भरकर और महुवेके मद्यसे मतवाली होकर उनके पास जाती होगी ॥ ७ ॥

तस्य क्षतजसंदिग्धं जातरूपपरिष्कृतम् ।
विमुच्य कवचं कृष्ण शरीरमभिवीक्षते ॥ ८ ॥

कृष्ण ! आज उसका रुधिरमें भीगा सोनेका कवच उतारकर वह उसके शरीरको देख रही है ॥ ८ ॥

अवेक्षमाणा तं बाला कृष्ण त्वामभिभाषते ।
अयं ते पुण्डरीकाक्ष सदृशाक्षो निपातितः ॥ ९ ॥

उसको देखकर वह बाला तुमसे कहती है, कि, हे कमलनयन कृष्ण ! तुम्हारे समान इनके आंख ही थे; आज इनको मारा गया है ॥ ९ ॥

बले वीर्ये च सदृशस्तेजसा चैव तेऽनघ ।
रूपेण च तवात्यर्थं शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥

अनघ ! बल, वीर्य, तेज और रूपमें पूर्णरूपसे आपके समान थे; वेही आज मारे जाकर पृथ्वीमें सो रहे हैं ॥ १० ॥

अत्यन्तसुकुमारस्य राङ्कवाजिनशायिनः ।
कच्चिदद्य शरीरं ते भूमौ न परितप्यते ॥ ११ ॥

फिर पतिसे कहती है कि तुम अत्यन्त सुकुमार थे, सदा कोमल हरिनके चमडेसे बने हुए बिछौनेपर सोते थे, आज पृथ्वीमें क्यों पडे हो ? क्या आपके शरीरको कुछ दुःख नहीं होता ? ॥ ११ ॥

मातङ्गभुजवर्ष्माणौ ज्याक्षेपकठिनत्वचौ ।
काञ्चनाङ्गदिनौ शेषे निक्षिप्य विपुलौ भुजौ ॥ १२ ॥

आज ये बडे बडे सोनेके बाजूबन्दयुक्त, धनुष खींचनेसे ठेंठयुक्त, हाथीकी सूंडके समान विशाल हाथोंको फैलाकर आए पृथ्वीमें सो रहे हैं ॥ १२ ॥

व्यायम्य बहुधा नूनं सुखसुप्तः श्रमादिव ।
एवं विलपतीमार्तां न हि मामभिभाषसे ॥ १३ ॥

निश्चयही बहुत श्रम करके थक जानेसे आप सुखसे सो रहे हैं; मैं अत्यंत दुःखित होकर रो रही हूं तो भी आप मुझसे बोलते नहीं ॥ १३ ॥

आर्यामार्य सुभद्रां त्वमिमांश्च त्रिदशोपमान् ।
पितॄन्मां चैव दुःखार्तां विहाय क्व गमिष्यसि ॥ १४ ॥

आर्य ! तुम माता सुभद्रा, देवताओंके समान पितरों और दुःखसे व्याकुल मुझे छोडकर कहां जाते हो ? ॥ १४ ॥

तस्य शोणितसंदिग्धान्केशानुन्नाम्य पाणिना ।
उत्संगे वक्त्रमाधाय जीवन्तमिव पृच्छति ।
स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ॥ १५ ॥

हे कृष्ण ! ये देखो, अभिमन्युके मुखको अपनी गोदमें रखकर, उसके रुधिरसे भीगे हुए बालोंको हाथसे उठाकर उत्तरा ऐसे पूछ रही है, मानो वह जी रहा है । तुम गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुनके बेटे और साक्षात् श्रीकृष्णके भानजे थे ॥ १५ ॥

+

कथं त्वां रणमध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः ।
धिगस्तु क्रूरकर्तॄंस्तान्कृपकर्णजयद्रथान् ॥ १६ ॥

संग्रामके मध्यमें स्थित आपको इन महारथियोंने कैसे मार डाला ? क्रूर कर्म करनेवाले कृपाचार्य, कर्ण और जयद्रथको धिक्कार है ॥ १६ ॥

द्रोणद्रौणायनी चोभौ यैरसि व्यसनीकृतः ।
रथर्षभाणां सर्वेषां कथमासीत्तदा मनः ॥ १७ ॥

द्रोणाचार्य और उनके पुत्र अश्वत्थामाको धिक्कार है, जिन्होंने आपको तलवारसे संकटमें डाला । उस समय उन सब महारथियोंका मन कैसा हो गया था ? ॥ १७ ॥

बालं त्वां परिवार्यैकं मम दुःखाय जघ्नुषाम् ।
कथं नु पाण्डवानां च पाञ्चालानां च पश्यताम् ।
त्वं वीर निधनं प्राप्तो नाथवान्सन्ननाथवत् ॥ १८ ॥

उन सबने अकेले बालक तुमको मिलकर मुझे दुःख देनेके लिये मारा है । वीर ! पाञ्चाल और पाण्डवोंके देखते देखते तुम सनाथ होनेपर भी अनाथके समान कैसे मारे गये ? ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा बहुभिराक्रन्दे निहतं त्वामनाथवत् ।
वीरः पुरुषशार्दूलः कथं जीवति पाण्डवः ॥ १९ ॥

तुमको युद्धमें अनाथके समान अनेक रथियोंने मारा हुआ देख, तुम्हारे पिता पुरुषसिंह वीर पाण्डव अर्जुन कैसे जीते हैं ? ॥ १९ ॥

न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणां वा पराभवः ।
प्रीतिं दास्यति पार्थानां त्वामृते पुष्करेक्षण ॥ २० ॥

हे कमलनेत्र ! विपुल राज्यलाभ अथवा शत्रुओंका पराभव तुम्हारे विना पाण्डवोंको प्रसन्न नहीं करेगा ॥ २० ॥

तव शस्त्रजिताल्लोँकान्धर्मेण च दमेन च ।
क्षिप्रमन्वागमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय ॥ २१ ॥

आपने शस्त्रोंसे जीते हुए लोकोंमें मैं भी धर्म और दमसे शीघ्रही आऊंगी; आप वहां मेरा रक्षण कीजिये ॥ २१ ॥

दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले भवति केनचित् ।
यदहं त्वां रणे दृष्ट्वा हतं जीवामि दुर्भगा ॥ २२ ॥

किसीका मरना मृत्युकाल प्राप्त हुए विना कठिन है; मैं बडी अभागिनी हूं जो तुम्हें युद्धमें मारा हुवा देखकर भी जीती हूं ॥ २२ ॥

कामिदानीं नरव्याघ्र श्लक्ष्णया स्मितया गिरा ।
पितृलोके समेत्यान्यां मामिवामन्त्रयिष्यसि ॥ २३ ॥

हे पुरुषसिंह ! अब पितृलोकमें जाकर हंसकर मीठी वाणीसे मेरे समान किस दूसरी स्त्रीको बुलाओगे ? ॥ २३ ॥

नूनमप्सरसां स्वर्गे मनांसि प्रमथिष्यसि ।
परमेण च रूपेण गिरा च स्मितपूर्वया ॥ २४ ॥

निश्चय ही स्वर्गमें जाकर अपने सुंदर रूप और भोली और मीठी वाणीसे अप्सराओंके मनको वशमें करोगे ॥ २४ ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानप्सरोभिः समेयिवान् ।
सौभद्र विहरन्काले स्मरेथाः सुकृतानि मे ॥ २५ ॥

हे सुभद्रापुत्र ! तुम अपने पुण्यसे महात्माओंके स्वर्गको गये, जब वहां अप्सराओंके सङ्ग विहार करोगे, तब मेरे अच्छे कर्मोंका भी स्मरण करना ॥ २५ ॥

एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह ।
षण्मासान्सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥ २६ ॥

वीर ! इस जगत्में केवल छः ही महीनेतक मेरा और तुम्हारा संग रहा है; सातवें महीनेमें ही तुम मारे गये ॥ २६ ॥

इत्युक्तवचनामेतामपकर्षन्ति दुःखिताम् ।
उत्तरां मोघसंकल्पां मत्स्यराजकुलस्त्रियः ॥ २७ ॥

ऐसे वचन कहकर दुःखित और जिसके संकल्प नष्ट हुए है— ऐसी उत्तराको ये मत्स्यराज विराटके कुलकी स्त्रियां पकड कर ले जारही हैं ॥ २७ ॥

उत्तरामपकृष्यैनामार्तामार्ततराः स्वयम् ।
विराटं निहतं दृष्ट्वा क्रोशन्ति विलपन्ति च ॥ २८ ॥

शोकसे व्याकुल उत्तराको पकडकर अत्यंत दुःखित हुई वे स्त्रियां राजा विराटको मारा गया देख शोक करने और चिल्लाने लगी हैं ॥ २८ ॥

द्रोणास्त्रशरसंकृत्तं शयानं रुधिरोक्षितम् ।
विराटं वितुदन्त्येते गृध्रगोमायुवायसाः ॥ २९ ॥

द्रोणाचार्यके बाणोंसे छिन्नभिन्न हो पृथ्वीमें रुधिरमें भीगे पडे हुए राजा विराटको ये सियार, कौवे और गिद्ध नोच रहे हैं ॥ २९ ॥

वितुद्यमानं विहगैर्विराटमसितेक्षणाः ।
न शक्नुवन्ति विवशा निवर्तयितुमातुराः ॥ ३० ॥

काजलयुक्त काले आंखोंवाली राजा विराटकी स्त्रियां उनको पक्षियोंसे नोचे जाते देख दुःखित—विवश होकर उन्हें हटा नहीं सकती ॥ ३० ॥

आसामातपतप्तानामायासेन च योषिताम् ।
श्रमेण च विवर्णानां रूपाणां विगतं वपुः ॥ ३१ ॥

ये सब रानियां आयास और परिश्रमसे तथा धूपमें तपकर फीके रंगके शरीरोंकी हो गई हैं ॥ ३१ ॥

उत्तरं चाभिमन्युं च काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
शिशूनेतान्हतान्पश्य लक्ष्मणं च सुदर्शनम् ।
आयोधनशिरोमध्ये शयानं पश्य माधव ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ५१४ ॥

हे माधव ! ये उत्तर, अभिमन्यु, काम्बोजदेशीय सुदक्षिण और सुदर्शन लक्ष्मण आदि बालक थे; इनको देखो । युद्धके अगले भागपर सोये लक्ष्मणको देखो ॥ ३२ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ५१४ ॥

: २१ :

गान्धार्युवाच—

एष वैकर्तनः शेते महेष्वासो महारथः ।
ज्वलितानलवत्संख्ये संशान्तः पार्थतेजसा ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे श्रीकृष्ण ! विकर्तन पुत्र महा धनुषधारी महारथी कर्ण जलती हुई अग्निके समान कुन्तीपुत्र अर्जुनके ही बाणरूपी तेजसे शान्त होकर युद्धभूमिमें सो रहा है ॥ १ ॥

पश्य वैकर्तनं कर्णं निहत्यातिरथान्बहून् ।
शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि ॥ २ ॥

इसने अनेक महारथियोंको युद्धमें मारा था, वह आज स्वयं रुधिरमें भीगकर पृथ्वीपर सोता पडा है ॥ २ ॥

अमर्षी दीर्घरोषश्च महेष्वासो महारथः ।
रणे विनिहतः शेते शूरो गाण्डीवधन्वना ॥ ३ ॥

महा क्रोधी, दीर्घद्वेषी, महा धनुषधारी, महारथी वीर कर्ण गाण्डीव धारी अर्जुनके हाथसे मारा जाकर रणभूमिपर सो रहा है ॥ ३ ॥

यं स्म पाण्डवसंत्रासान्मम पुत्रा महारथाः ।
प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम् ॥ ४ ॥

अर्जुनके भयसे जिस कर्णके आश्रयसे उसको आगे करके हमारे महारथी पुत्रोंने पाण्डवोंकी सेनासे इस प्रकार युद्ध किया था, जैसे हाथियोंका झुण्ड अपने यूथपतिको आगे करके लडता है ॥ ४ ॥

शार्दूलमिव सिंहेन समरे सव्यसाचिना ।
मातङ्गमिव मत्तेन मातङ्गेन निपातितम् ॥ ५ ॥

उस ही कर्णको सव्यसाची अर्जुनने युद्धमें इस प्रकार मार डाला, जैसे सिंह शार्दूलको; अथवा मतवाला हाथी हाथीको ॥ ५ ॥

समेताः पुरुषव्याघ्र निहतं शूरमाहवे ।
प्रकीर्णमूर्धजाः पत्न्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ६ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! युद्धभूमिमें मारे गये इस शूरवीरके पास इसकी पत्नियां सिरके बाल खोले हुई रो रही है ॥ ६ ॥

उद्विग्नः सततं यस्माद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्रयोदश समा निद्रां चिन्तयन्नाध्यगच्छत ॥ ७ ॥

जिस कर्णके भयसे सदा धर्मराज युधिष्ठिर घबराते रहते थे, जिसके डरसे वे चिन्ता करते हुए तेरह बर्ष सुखसे नहीं सोये थे ॥ ७ ॥

अनाधृष्यः परैर्युद्धे शत्रुभिर्मघवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान्हिमवानिव च स्थिरः ॥ ८ ॥

जिसको युद्धमें इन्द्रके समान कोई शत्रु नहीं जीत सकता था, जो जलती हुई प्रलय कालकी अग्निके समान तेजस्वी और हिमाचल पर्वतके समान स्थिर था ॥ ८ ॥

स भूत्वा शरणं वीरो धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
भूमौ विनिहतः शेते वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ ९ ॥

वह बीर कर्ण धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनको शरण देकर आज मारा जा कर, इस प्रकार पृथ्वीमें पडा है; जैसे बायुसे टूटा हुआ वृक्ष ॥ ९ ॥

पश्य कर्णस्य पत्नीं त्वं वृषसेनस्य मातरम् ।
लालप्यमानां करुणं रुदतीं पतितां भुवि ॥ १० ॥

ये देखो, वृषसेनकी माता, कर्णकी पत्नी पृथ्वीमें पडी हुई करुण विलाप कर रो रही है ॥ १० ॥

आचार्यशापोऽनुगतो ध्रुवं त्वां यदग्रसच्चक्रमियं धरा ते ।
ततः शरेणापहृतं शिरस्ते धनंजयेनाहवे शत्रुमध्ये ॥ ११ ॥

और कहती है– निश्चय ही तुम्हारे गुरुने जो शाप दिया था वह तुम्हारे बारेमें सत्य हो गया; इसहीसे पृथ्वीने तुम्हारे रथका पहिया पकड लिया, उसही समय वीर अर्जुनने शत्रुओंके बीच युद्धमें तुम्हारा शिर काट लिया ॥ ११ ॥

अहो धिगेषा पतिता विसंज्ञा समीक्ष्य जाम्बूनदबद्धनिष्कम् ।
कर्णं महाबाहुमदीनसत्त्वं सुषेणमाता रुदती भृशार्ता ॥ १२ ॥

यह सुषेणकी माता महाबाहु महावीर, सोनेका कवच पहिने कर्णको इस अवस्थामें पडा देख अत्यन्त दुःखित हो रोती हुई मूर्च्छा खाकर गिर पडी है ॥ १२ ॥

अल्पावशेषो हि कृतो महात्मा शरीरभक्षैः परिभक्षयद्भिः ।
द्रष्टुं न संप्रीतिकरः शशीव कृष्णस्य पक्षस्य चतुर्दशाहे ॥ १३ ॥

मनुष्यका मांस खानेवाले जंतुओंने महात्मा कर्णका शरीर थोडा ही छोडा है, इस समय यह ऐसा भयानक दीखता है, जैसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका चन्द्रमा हमें प्रसन्न नहीं करता ॥ १३ ॥

सावर्तमाना पतिता पृथिव्यामुत्थाय दीना पुनरेव चैषा ।
कर्णस्य वक्त्रं परिजिघ्रमाणा रोरूयते पुत्रवधाभितप्ता ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ५२८ ॥

यह दीन उसकी पत्नी भूमिपर गिरकर उठी, फिर उठकर गिर पडी और कर्णका मुख सूंघकर अपने पुत्रके वधके शोकसे व्याकुल होकर रो रही है ॥ १४ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ५२८ ॥

२२

गान्धार्युवाच—

आवन्त्यं भीमसेनेन भक्षयन्ति निपातितम् ।
गृध्रगोमायवः शूरं बहुबन्धुमबन्धुवत् ॥ १ ॥

गान्धारी बोली– हे श्रीकृष्ण ! ये देखो, अवन्ती नगरीके शूर राजाको भीमसेनने मार डाला; जगत्में इनके अनेक बन्धु–बांधव थे, परन्तु इस समय बन्धु रहित मनुष्यके समान इनको गीध और सियार खा रहे हैं ॥ १ ॥

तं पश्य कदनं कृत्वा शत्रूणां मधुसूदन ।
शयानं वीरशयने रुधिरेण समुक्षितम् ॥ २ ॥

मधुसूदन ! देखो, इस वीरने अनेक शत्रुओंको युद्धमें मारा था, सो आज रुधिरमें भीगकर वीर शय्यापर सोता है ॥ २ ॥

तं सृगालाश्च कङ्काश्च क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः ।
तेन तेन विकर्षन्ति पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३ ॥

आज उन्हें ही सियार, कौवे और अनेक प्रकारके मांस खानेवाले पक्षी इधर उधर खींचे फिरते हैं । देखो, समय बडा कठोर है ॥ ३ ॥

शयानं वीरशयने वीरमाक्रन्दसारिणम् ।
आवन्त्यमभितो नार्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ४ ॥

युद्धमें पराक्रम करनेवाले शूर अवन्ती राजाको वीरशय्या पर सोता हुआ देख आज इसकी स्त्रियां इसे चारों ओरसे घेरकर बैठी रो रही हैं ॥ ४ ॥

प्रातिपीयं महेष्वासं हतं भल्लेन बाह्लिकम् ।
प्रसुप्तमिव शार्दुलं पश्य कृष्ण मनस्विनम् ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! ये देखो, प्रतीपपुत्र महा धनुषधारी यशस्वी बाह्लिक भल्लसे मारे जाकर सोते हुए सिंहके समान पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ५ ॥

अतीव मुखवर्णोऽस्य निहतस्यापि शोभते ।
सोमस्येवाभिपूर्णस्य पौर्णमास्यां समुद्यतः ॥ ६ ॥

मारे जानेपर भी इनका मुख ऐसा सुन्दर दीखता है जैसे पूर्णमासीका पूर्ण चन्द्रमा ॥ ६ ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां परिरक्षता ।
पाकशासनिना संख्ये वार्द्धक्षत्रिर्निपातितः ॥ ७ ॥

हे श्रीकृष्ण ! पुत्रके शोकसे व्याकुल प्रतिज्ञा पालक इन्द्रपुत्र अर्जुनने युद्धमें वृद्धक्षत्रपुत्र जयद्रथ मारा है ॥ ७ ॥

एकादश चमूर्जित्वा रक्ष्यमाणं महात्मना ।
सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम् ॥ ८ ॥

जयद्रथ पूर्णतया रक्षित था, तथापि अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेकी इच्छावाले महात्मा अर्जुनने ग्यारह अक्षौहिणी सेनापर विजय करके इसे मार डाला, इसे देखो ॥ ८ ॥

सिन्धुसौवीरभर्तारं दर्पपूर्णं मनस्विनम् ।
भक्षयन्ति शिवा गृध्रा जनार्दनजयद्रथम् ॥ ९ ॥

जनार्दन ! स्थिरमति महाअभिमानी जयद्रथ सिंधू और सौवीर देशके स्वामी थे, आज उन्हें ही सियार और गिद्ध खा रहे हैं ॥ ९ ॥

संरक्ष्यमाणं भार्याभिरनुरक्ताभिरच्युत ।
भषन्तो व्यपकर्षन्ति गहनं निम्नमन्तिकात् ॥ १० ॥

अच्युत ! यद्यपि इनकी भक्त पत्नियां उनकी रक्षा कर रहीं हैं, तो भी भयानक गिद्ध और सियार उनके पाससे उन्हें खींच कर गहरे गड्ढेकी ओर ले जा रहे हैं ॥ १० ॥

तमेताः पर्युपासन्ते रक्षमाणा महाभुजम् ।
सिन्धुसौवीरगान्धारकाम्बोजयवनस्त्रियः ॥ ११ ॥

परन्तु सिन्धु, सौवीर, गान्धार, काम्बोज और यवन देशकी स्त्रियां उनके पास बैठकर रक्षा कर रहीं हैं॥ ११ ॥

यदा कृष्णामुपादाय प्राद्रवत्केकयैः सह ।
तदैव वध्यः पाण्डूनां जनार्दन जयद्रथः ॥ १२ ॥

जनार्दन ! जिस समय कैकेयदेशके क्षत्रियोंके समेत द्रौपदीको जयद्रथ ले भागे थे, उसी समय पाण्डव उन्हें मार डालते ॥ १२ ॥

दुःशलां मानयद्भिस्तु यदा मुक्तो जयद्रथः ।
कथमद्य न तां कृष्ण मानयन्ति स्म ते पुनः ॥ १३ ॥

परन्तु उस समय उन्होंने दुःशलाका मान रखनेके लिये जयद्रथको जिवीत छोडा था। श्रीकृष्ण, परन्तु आज उन पाण्डवोंने फिर उसका मान क्यों नहीं रखा ? ॥ १३ ॥

सैषा मम सुता बाला विलपन्ती सुदुःखिता ।
प्रमापयति चात्मानमाक्रोशति च पाण्डवान् ॥ १४ ॥

आज वही हमारी बालिका पुत्री दुःशला दुःखित होकर रो रही है; और पाण्डवोंको गाली देती है, अपने आपको दोष दे रही है ॥ १४ ॥

किं नु दुःखतरं कृष्ण परं मम भविष्यति ।
यत्सुता विधवा बाला स्नुषाश्च निहतेश्वराः ॥ १५ ॥

हे कृष्ण ! इससे अधिक मेरे लिये और क्या दुःख होगा कि जो मेरी बालिका पुत्री विधवा हो गयी और बेटोंकी बहू अनाथा हो गयीं ॥ १५ ॥

अहो धिग्दुःशलां पश्य वीतशोकभयामिव ।
शिरो भर्तुरनासाद्य धावमानामितस्ततः ॥ १६ ॥

धिक्कार है ! ये देखो, दुःशला अपने पतिका सिर न पाकर शोक और भयसे रहित मनुष्यके समान चारों ओर दौडती है ॥ १६ ॥

वारयामास यः सर्वान्पाण्डवान्पुत्रगृद्धिनः ।
स हत्वा विपुलाः सेनाः स्वयं मृत्युवशं गतः ॥ १७ ॥

अकेले जयद्रथने अपने पुत्र अभिमन्युकी रक्षा करनेकी इच्छावाले सब पाण्डवोंको रोक दिया था, जिसने पाण्डवोंकी बहुत सेनाका नाश कर दिया था, वही जयद्रथ आज स्वयं मर गया है ॥ २७ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं वीरं परमदुर्जयम् ।
परिवार्य रुदन्त्येताः स्त्रियश्चन्द्रोपमाननाः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ ५४६ ॥

उस मतवाले हाथीके समान महा योद्धा वीरके चारों ओर चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्रियां रो रही हैं ॥ १८ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें बाइसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ॥ ५४६ ॥

: २३ :

गान्धार्युवाच—
एष शल्यो हतः शेते साक्षान्नकुलमातुलः ।
धर्मज्ञेन सता तात धर्मराजेन संयुगे ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे तात ! ये साक्षात नकुलके मामा शल्य धर्म जाननेवाले युधिष्ठिरके हाथसे मारे जाकर पृथ्वीमें पडे हैं ॥ २ ॥

यस्त्वया स्पर्धते नित्यं सर्वत्र पुरुषर्षभ ।
स एष निहतः शेते मद्रराजो महारथः ॥ २ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! ये मद्र देशके महारथी राजा शल्य सदा तुम्हारे साथ स्पर्धा करते थे, वे ही मारे जाकर यहां सो रहे हैं ॥ २ ॥

येन संगृह्णता तात रथमाधिरथेर्युधि ।
जयार्थं पाण्डुपुत्राणां तथा तेजोवधः कृतः ॥ ३ ॥

इन्होंने ही सूतपुत्र कर्णका रथ हांकते समय पाण्डवोंकी विजयके लिये उसके तेजका नाश किया था ॥ ३ ॥

अहो धिक्पश्य शल्यस्य पूर्णचन्द्रसुदर्शनम् ।
मुखं पद्मपलाशाक्षं वडैरादष्टमव्रणम् ॥ ४ ॥

अहो ! धिक्कार है ! देखो, आज उसही शल्यके पूरे चन्द्रमाके समान सुन्दर और कमलके समान नेत्रयुक्त व्रणरहित मुखको कौवे खा रहे हैं ॥ ४ ॥

एषा चामीकराभस्य तप्तकाञ्चनसप्रभा ।
आस्याद्विनिःसृता जिह्वा भक्ष्यते कृष्ण पक्षिभिः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! सुवर्णके समान तेजस्वी, शल्यके मुखसे जो तपाये हुए सोनेके समान जीभ बाहर निकल आई है, उसे पक्षी खा रहे हैं ॥ ५ ॥

×

युधिष्ठिरेण निहतं शल्यं समितिशोभनम् ।
रुदन्त्यः पर्युपासन्ते मद्रराजकुलस्त्रियः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिरके हाथसे मारे गये हुए युद्धमें शोभायमान होनेवाले मद्रराज शल्यके चारों ओर बैठी हुई कुलीन स्त्रियां रो रही हैं ॥ ६ ॥

एताः सुसूक्ष्मवसना मद्रराजं नरर्षभम् ।
क्रोशन्त्यभिसमासाद्य क्षत्रिया क्षत्रियर्षभम् ॥ ७ ॥

ये उत्तम क्षत्रिय कुलोंमें उत्पन्न हुई पतला कपडा पहिननेवाली स्त्रियां पुरुषसिंह क्षत्रिय श्रेष्ठ मद्रराज शल्यके पास आकर रो रही हैं ॥ ७ ॥

शल्यं निपातितं नार्यः परिवार्याभितः स्थिताः ।
वासिता गृष्टयः पङ्के परिमग्नमिवर्षभम् ॥ ८ ॥

संग्राममें पडे हुए राजा शल्यके चारों ओरसे घेरकर बैठी स्त्रियां इस प्रकार दीखाई देती हैं, जैसे कीचडमें फसे गजराजके चारों ओर खडी उसी समयकी ब्याई हाथिनियां ॥ ८ ॥

शल्यं शरणदं शूरं पश्यैनं रथसत्तमम् ।
शयानं वीरशयने शरैर्विशकलीकृतम् ॥ ९ ॥

ये ही रथीश्रेष्ठ शूर शल्य शरण आयेको शरण देते थे, वही वीर शल्य बाणोंसे छिन्नभिन्न हो वीर शय्यापर पडे हैं ॥ ९ ॥

एष शैलालयो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
गजाङ्कुशधरः श्रेष्ठः शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥

हे कृष्ण ! ये पर्वत वासी, महा प्रतापवान् श्रेष्ठ राजा भगदत्त हाथीका अंकुश हाथमें लिये हुए मारे जाकर पृथ्वीमें सो रहे हैं ॥ १० ॥

यस्य रुक्ममयी माला शिरस्येषा विराजते ।
श्वापदैर्भक्ष्यमाणस्य शोभयन्तीव मूर्धजान् ॥ ११ ॥

जिसके सिर पर ये सोनेकी माला विराजमान होकर बालोंकी शोभा बढाती है, उसे ये मांस खानेवाले जीव खा रहे हैं ॥ ११ ॥

एतेन किल पार्थस्य युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
लोमहर्षणमत्युग्रं शक्रस्य बलिना यथा ॥ १२ ॥

भगदत्तके सङ्ग कुन्तीपुत्र अर्जुनका घोर और रोंये खडे करनेवाला युद्ध हुआ था । इन दोनोंका ऐसा युद्ध हुआ था, जैसे बलिके सङ्ग इन्द्रका ॥ १२ ॥

योधयित्वा महाबाहुरेष पार्थं धनंजयम् ।
संशयं गमयित्वा च कुन्तीपुत्रेण पातितः ॥ १३ ॥

इस महाबाहुने युद्धके समय कुन्तीपुत्र धनंजयके हृदयमें सन्देह निर्माण कर दिया था; परंतु अन्तमें भगदत्त अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ १३ ॥

यस्य नास्ति समो लोके शौर्ये वीर्ये च कश्चन ।
स एष निहतः शेते भीष्मो भीष्मकृदाहवे ॥ १४ ॥

जगत्में जिनके समान तेजस्वी बलवान् और वीर्यवान् कोई नहीं है, वे भी युद्धमें भयजनक कर्म करनेवाले भीष्म इस समय मारे पडे हैं ॥ १४ ॥

पश्य शांतनवं कृष्ण शयानं सूर्यवर्चसम् ।
युगान्त इव कालेन पातितं सूर्यमम्बरात् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! ये सूर्यके समान महातेजस्वी शान्तनुपुत्र इस समय ऐसे सो रहे हैं, जैसे प्रलय-कालमें कालसे प्रेरित हो आकाशसे गिराये हुए सूर्य ॥ १५ ॥

एष तप्त्वा रणे शत्रूञ्शस्त्रतापेन वीर्यवान् ।
नरसूर्योऽस्तमभ्येति सूर्योऽस्तमिव केशव ॥ १६ ॥

केशव ! अपने शस्त्रोंके प्रतापसे युद्धमें शत्रुओंको तपाकर अब ये वीर्यवान् मानवसूर्य अस्त होना चाहते हैं जैसे सूर्य अस्त होता है ॥ १६ ॥

शरतल्पगतं वीरं धर्मे देवापिना समम् ।
शयानं वीरशयने पश्य शूरनिषेविते ॥ १७ ॥

जो धर्ममें देवापिके समान हैं उन भीष्मको वीरोचित शूरसेवित बाणशय्यापर सोते हुए देखो ॥ १७ ॥

कर्णिनालीकनाराचैरास्तीर्य शयनोत्तमम् ।
आविश्य शेते भगवान्स्कन्दः शरवणं यथा ॥ १८ ॥

कर्णी, नालीक, नाराच आदि बाणोंकी उत्तम शय्यापर सोते हुए भीष्मकी शोभा इस समय ऐसी दीखती है, जैसे सरकण्डोंके समूहपर सोते हुए भगवान् कार्त्तिकेयकी ॥ १८ ॥

अतूलपूर्णं गाङ्गेयस्त्रिभिर्बाणैः समन्वितम् ।
उपधायोपधानाग्र्यं दत्तं गाण्डीवधन्वना ॥ १९ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके दिये तीन बाणोंसे निर्मित उत्तम तकियेको गंगानंदन भीष्मने स्वीकार किया है ॥ १९ ॥

पालयानः पितुः शास्त्रमूर्ध्वरेता महायशाः ।
एष शांतनवः शेते माधवाप्रतिमो युधि ॥ २० ॥

माधव ! अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले निष्ठावान् ब्रह्मचारी महायशस्वी युद्धमें अतुलनीय शान्तनुपुत्र भीष्म यहाँ सोते हैं ॥ २० ॥

धर्मात्मा तात धर्मज्ञः पारंपर्येण निर्णये ।
अमर्त्य इव मर्त्यः सन्नेष प्राणानधारयत् ॥ २१ ॥

तात ! ये धर्मात्मा सब विद्या जाननेवाले, सब विषयोंका निर्णय करनेवाले भीष्म मनुष्य होते हुए भी देवताओंके समान हैं; अभीतक इन्होंने अपने प्राण धारण कर रक्खे हैं ॥ २१ ॥

नास्ति युद्धे कृती कश्चिन्न विद्वान्न पराक्रमी ।
यत्र शांतनवो भीष्मः शेतेऽद्य निहतः परैः ॥ २२ ॥

युद्धमें कोई कुशल, विद्वान् और पराक्रमी नहीं होता, क्योंकि शान्तनुपुत्र भीष्म शत्रुओंसे मारे जाकर आज सो रहे हैं ॥ २२ ॥

स्वयमेतेन शूरेण पृच्छ्यमानेन पाण्डवैः ।
धर्मज्ञेनाहवे मृत्युराख्यातः सत्यवादिना ॥ २३ ॥

जब पाण्डवोंने इनको पूछा था कि आपकी मृत्यु कैसे होगी, तब सत्यवादी धर्मजाननेवाले शूरवीरने अपनी मृत्यु पहिले ही बता दी थी ॥ २३ ॥

प्रनष्टः कुरुवंशश्च पुनर्येन समुद्धृतः ।
स गतः कुरुभिः सार्धं महाबुद्धिः पराभवम् ॥ २४ ॥

उन्होंहीने नष्ट हुए कुरुवंशका फिर उद्धार किया था, वेही महाबुद्धिमान् भीष्म कौरवोंके साथ पराभूत हुए ॥ २४ ॥

धर्मेषु कुरवः कं नु परिप्रक्ष्यन्ति माधव ।
गते देवव्रते स्वर्गं देवकल्पे नरर्षभे ॥ २५ ॥

हे माधव ! जब देवताओंके समान नरश्रेष्ठ भीष्म ही स्वर्गको चले गये, तब कौरवलोग धर्म विषयक प्रश्न किसको करेंगे ? ॥ २५ ॥

अर्जुनस्य विनेतारमाचार्यं सात्यकेस्तथा ।
तं पश्य पतितं द्रोणं कुरूणां गुरुसत्तमम् ॥ २६ ॥

देखो, अर्जुनके आदर्श, सात्यकिके आचार्य और कौरवोंके श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य मर पडे हैं ॥ २६ ॥

अस्त्रं चतुर्विधं वेद यथैव त्रिदशेश्वरः ।
भार्गवो वा महावीर्यस्तथा द्रोणोऽपि माधव ॥ २७ ॥

महाबलवान् परशुराम और देवराज इन्द्रके समान चारों प्रकारकी शस्त्रविद्याको द्रोणाचार्य जानते थे ॥ २७ ॥

यस्य प्रसादाद्बीभत्सुः पाण्डवः कर्म दुष्करम् ।
चकार स हतः शेते नैनमस्त्राण्यपालयन् ॥ २८ ॥

इन्हींके प्रसादसे पाण्डुपुत्र अर्जुनने ऐसे दुष्कर कर्म किये थे, वेही द्रोणाचार्य आज मरे पडे हैं, शस्त्रोंने भी उनकी रक्षा नहीं की ॥ २८ ॥

यं पुरोधाय कुरव आह्वयन्ति स्म पाण्डवान् ।
सोऽयं शस्त्रभृतां श्रेष्ठो द्रोणः शस्त्रैः पृथक्कृतः ॥ २९ ॥

इन्हींके आश्रयसे कौरव लोग पाण्डवोंको युद्ध करनेके लिये ललकारते थे, वेही शस्त्र जानने-वालोंमे श्रेष्ठ द्रोणाचार्य आज शस्त्रोंसे कटे हुए पृथ्वीमें पडे हैं ॥ २९ ॥

यस्य निर्दहतः सेनां गतिरग्नेरिवाभवत् ।
स भूमौ निहतः शेते शान्तार्चिरिव पावकः ॥ ३० ॥

जिन्होंने अग्निके समान तेज गति धारण करके पाण्डवोंकी सेनाको भस्म किया था, वेही द्रोणाचार्य आज बुझी हुई जलती अग्निके समान मरे हुए पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ३० ॥

धनुर्मुष्टिरशीर्णश्च हस्तावापश्च माधव ।
द्रोणस्य निहतस्यापि दृश्यते जीवितो यथा ॥ ३१ ॥

माधव ! मारे जानेपर भी उनके धनुषकी मूठी नहीं खुली और करहंत्थी भी नहीं छुटी, ये अभी भी जीते हुएके समान दीखते हैं ॥ ३१ ॥

वेदा यस्माच्च चत्वारः सर्वास्त्राणि च केशव ।
अनपेतानि वै शूराद्यथैवादौ प्रजापतेः ॥ ३२ ॥

केशव ! पहिलेसे ही जैसे ब्रह्मासे वेद कभी पृथक् नहीं हुए, वैसे ही शूर द्रोणाचार्यसे चारों वेद और सब अस्त्र दूर नहीं हुए ॥ ३२ ॥

वन्दनार्हाविमौ तस्य बन्दिभिर्वन्दितौ शुभौ ।
गोमायवो विकर्षन्ति पादौ शिष्यशतार्चितौ ॥ ३३ ॥

जिन द्रोणाचार्यके वन्दीजनोंसे बन्दित चरणोंकी सैकडों शिष्य पूजा करते थे, उन्हीं प्रणाम करने योग्य सुन्दर चरणोंको सियार खींचते फिरते हैं ॥ ३३ ॥

द्रोणं द्रुपदपुत्रेण निहतं मधुसूदन ।
कृपी कृपणमन्वास्ते दुःखोपहतचेतना ॥ ३४ ॥

मधुसूदन ! द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये द्रोणाचार्यके पास दुःखसे मूर्च्छितसी हुई उनकी पत्नी कृपी दीन होकर बैठी है ॥ ३४ ॥

तां पश्य रुदतीमार्तां मुक्तकेशीमधोमुखीम् ।
हतं पतिमुपासन्तीं द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ॥ ३५ ॥

देखो, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अपने मारे गये पति द्रोणाचार्यके पास बाल खोले नीचे मुख किये रोती हुई कृपी बैठी है ॥ ३५ ॥

बाणैर्भिन्नतनुत्राणं धृष्टद्युम्नेन केशव ।
उपास्ते वै मृधे द्रोणं जटिला ब्रह्मचारिणी ॥ ३६ ॥

केशव ! धृष्टद्युम्नने बाणोंसे उनका कवच छिन्नभिन्न कर दिया है, अब जटाधारिणी ब्रह्मचारिणी कृपी उन्हींके पास बैठी है ॥ ३६ ॥

प्रेतकृत्ये च यतते कृपी कृपणमातुरा ।
हतस्य समरे भर्तुः सुकुमारी यशस्विनी ॥ ३७ ॥

दुःखसे दीन, विह्वल हुई सुकुमारी, यशस्विनी कृपी युद्धमें मारे गये अपने पतिका प्रेत कर्म करनेका प्रयत्न करती है ॥ ३७ ॥

अग्नीनाहृत्य विधिवच्चितां प्रज्वाल्य सर्वशः ।
द्रोणमाधाय गायन्ति त्रीणि सामानि सामगाः ॥ ३८ ॥

विधिपूर्वक अग्निको लाकर चिताको सब ओरसे प्रज्वलित करके द्रोणाचार्यके शरीरको उसपर रखकर त्रिविध सामका गान सामगान करनेवाले ब्राह्मण कर रहे हैं ॥ ३८ ॥

किरन्ति च चितामेते जटिला ब्रह्मचारिणः ।
धनुर्भिः शक्तिभिश्चैव रथनीडैश्च माधव ॥ ३९ ॥

माधव ! ये जटाधारी ब्रह्मचारी धनुष, शक्ति और रथोंके पहियोंसे अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे चिता बना रहे हैं ॥ ३९ ॥

शस्त्रैश्च विविधैरन्यैर्धक्ष्यन्ते भूरितेजसम् ।
त एते द्रोणमाधाय शंसन्ति च रुदन्ति च ॥ ४० ॥

अब ये महातेजस्वी द्रोणाचार्यको चितापर रखकर जला रहे हैं। ये वेदमन्त्र पढते रो रहे हैं और अपने गुरुकी प्रशंसा कर रहे हैं ॥ ४० ॥

सामभिस्त्रिभिरन्तःस्थैरनुशंसन्ति चापरे ।
अग्नावग्निमिवाधाय द्रोणं हुत्वा हुताशने ॥ ४१ ॥

कुछ दूसरे ब्राह्मण अन्त समयका त्रिविध सामगान करते हैं; चिताकी अग्निमें द्रोणरूपी अग्निको रखकर उनकी आहुति दी है ॥ ४१ ॥

गच्छन्त्यभिमुखा गङ्गां द्रोणशिष्या द्विजातयः ।
अपसव्यां चितिं कृत्वा पुरस्कृत्य कृपीं तदा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ५८८ ॥

अब ये द्रोणाचार्यके द्विजाति शिष्य चिताकी प्रदक्षिणा करके और कृपीको आगे करके गङ्गाकी ओर स्नानको जाते हैं ॥ ४२ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ ५८८ ॥

: २४ :

गान्धार्युवाच—

सोमदत्तसुतं पश्य युयुधानेन पातितम् ।
वितुद्यमानं विहगैर्बहुभिर्माधवान्तिके ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे माधव ! देखो, ये सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा सात्यकिके हाथसे मारे हुए पडे हैं । अनेक प्रकारके पक्षी इनका मांस खा रहे हैं ॥ १ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तः सोमदत्तो जनार्दन ।
युयुधानं महेष्वासं गर्हयन्निव दृश्यते ॥ २ ॥

जनार्दन ! ये देखो पुत्रके शोकसे व्याकुल सोमदत्त महाधनुषधारी सात्यकिकी निन्दा कर रहे हैं, ऐसे दिखाई देता है ॥ २ ॥

असौ तु भूरिश्रवसो माता शोकपरिप्लुता ।
आश्वासयति भर्तारं सोमदत्तमनिन्दिता ॥ ३ ॥

भूरिश्रवाकी शोकसे व्याकुल हुई अनिन्दिता माता अपने पति सोमदत्तको बहुत समझा रही है, कहती है ॥ ३ ॥

दिष्ट्या नेदं महाराज दारुणं भरतक्षयम् ।
कुरुसंक्रन्दनं घोरं युगान्तमनुपश्यसि ॥ ४ ॥

हे महाराज ! प्रारब्धहीसे आपको भारतियोंका यह दारुण नाश, जो भयानक प्रलयके समान कुरुकुलका महान् विनाश है, वह आप देख नहीं सके ॥ ४ ॥

दिष्ट्या यूपध्वजं वीरं पुत्रं भूरिसहस्रदम् ।
अनेकक्रतुयज्वानं निहतं नाद्य पश्यसि ॥ ५ ॥

अपने प्रारब्धहीसे आज यूप चिन्ह ध्वजावाले, सहस्रों सोनेकी मुद्राओंकी बहुत दक्षिणा देनेवाले और अनेक यज्ञ करनेवाले अपने वीर पुत्र भूरिश्रवाकी मृत्यु न देखी ॥ ५ ॥

दिष्ट्या स्नुषाणामाक्रन्दे घोरं विलपितं बहु ।
न श्रृणोषि महाराज सारसीनामिवार्णवे ॥ ६ ॥

महाराज ! अपने प्रारब्धहीसे समुद्रके तटपर चीत्कार करनेवाली सारसियोंके समान यहां रोती हुई अपने बहुओंके घोर विलाप नहीं सुनते हैं ॥ ६ ॥

एकवस्त्रानुसंवीताः प्रकीर्णासितमूर्धजाः ।
स्नुषास्ते परिधावन्ति हतापत्या हतेश्वराः ॥ ७ ॥

ये आपके बेटेकी पत्नियां एक साडी पहिने, काले काले बाल खोले, इधर उधर रोती दौड रही हैं; इनके पुत्र और पति मारे गये हैं ॥ ७ ॥

श्वापदैर्भक्ष्यमाणं त्वमहो दिष्ट्या न पश्यसि ।
छिन्नबाहुं नरव्याघ्रमर्जुनेन निपातितम् ॥ ८ ॥

अपने प्रारब्धहीसे हिंस्र पशुओंसे खाये जाते हुए अर्जुनने जिसका एक हाथ काटा था उस मनुष्यसिंह भूरिश्रवाको नहीं देखते ॥ ८ ॥

शलं विनिहतं संख्ये भूरिश्रवसमेव च ।
स्नुषाश्च विधवाः सर्वा दिष्ट्या नाद्येह पश्यसि ॥ ९ ॥

आप युद्धमें भूरिश्रवाके समानही मारे गये शलको भी नहीं देखते हैं; दैववशात्ही इन सब विधवा हुई पुत्रवधुओंको यहां आज नहीं देख रहे हैं ॥ ९ ॥

दिष्ट्या तत्काञ्चनं छत्रं यूपकेतोर्महात्मनः ।
विनिकीर्णं रथोपस्थे सौमदत्तेर्न पश्यसि ॥ १० ॥

बडे भाग्यसेही आपके पुत्र यूपचिह्नाङ्कित ध्वजावाले महात्मा भूरिश्रवाके रथसे खंडित हो गिरे हुए उसके सोनेके छत्रको नहीं देखा है ॥ १० ॥

अमूस्तु भूरिश्रवसो भार्याः सात्यकिना हतम् ।
परिवार्यानुशोचन्ति भर्तारमसितेक्षणाः ॥ ११ ॥

ये कज्जलयुक्त सुन्दर नेत्रवाली भूरिश्रवाकी पत्नियां सात्यकिसे मारे गये अपने पतिको चारों ओरसे घेरकर बैठी शोक कर रही हैं ॥ ११ ॥

एता विलप्य बहुलं भर्तृशोकेन कर्शिताः ।
पतन्त्यभिमुखा भूमौ कृपणं बत केशव ॥ १२ ॥

केशव ! पतिके शोकसे व्याकुल दीन स्वरसे बहुत रोती हुई ये स्त्रियां पतिके सामने दुःखित हो गिरती हैं ॥ १२ ॥

बीभत्सुरतिबीभत्सं कर्मेदमकरोत्कथम् ।
प्रमत्तस्य यदच्छैत्सीद्बाहुं शूरस्य यज्वनः ॥ १३ ॥
और कहती हैं कि अर्जुनने यह अत्यंत भयंकर कुकर्म कैसे किया ? जो यज्ञ करनेवाले प्रमत्त शूरवीर आपका हाथ छलसे काट लिया ॥ १३ ॥

ततः पापतरं कर्म कृतवानपि सात्यकिः ।
यस्मात्प्रायोपविष्टस्य प्राहार्षीत्संशितात्मनः ॥ १४ ॥
इनसे भी अधिक पाप कर्म सात्यकिने किया है, जो उन्होंने आमरण उपवासके लिये बैठे आप साधुपुरुषके ऊपर खड्ग चलाया ॥ १४ ॥

एको द्वाभ्यां हतः शेषे त्वमधर्मेण धार्मिकः ।
इति यूपध्वजस्यैताः स्त्रियः क्रोशन्ति माधव ॥ १५ ॥
आप जैसे धार्मिक अकेलेको अधर्मसे दो मनुष्योंने मिलकर मारा है और आप यहां सो रहे हैं । माधव ! इस प्रकार यूपध्वज भूरिश्रवाकी ये स्त्रियां सात्यकिको दोष दे रही हैं ॥ १५ ॥

भार्या यूपध्वजस्यैषा करसंमितमध्यमा ।
कृत्वोत्सङ्गे भुजं भर्तुः कृपणं पर्यदेवयत् ॥ १६ ॥
ये यूपध्वज भूरिश्रवाकी पतली कमरवाली पटरानी अपने पतिका कटा हुआ हाथ गोदमें लेकर दीनतासे रो रही है ॥ १६ ॥

अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः ।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः ॥ १७ ॥
जो हमारी मेखलाको खींच लेता, पुष्ट स्तनोंका मर्दन करता, नाभि, ऊरु और जघन प्रदेशको स्पर्श करता और नीवीका बन्धन हटा दिया करता था, वही यह हाथ है ॥ १७ ॥

वासुदेवस्य सांनिध्ये पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
युध्यतः समरेऽन्येन प्रमत्तस्य निपातितः ॥ १८ ॥
आपका हाथ महान् कर्म करनेवाले वीर अर्जुनने श्रीकृष्णके देखते देखते पास रहकर दूसरेके सङ्ग युद्ध करते हुए विना कहे युद्धमें काट दिया ॥ १८ ॥

किं नु वक्ष्यसि संसत्सु कथासु च जनार्दन ।
अर्जुनस्य महत्कर्म स्वयं वा स किरीटवान् ॥ १९ ॥
जनार्दन ! अब आप सत्पुरुषोंकी सभाओंमें बोलते समय अर्जुनके इस महान् कर्मका वर्णन कैसे करेंगे ? अथवा किरीटधारी अर्जुन भी स्वयं इस पाप कर्मकी निर्मलता कैसी करेंगे ॥ १९ ॥

इत्येवं गर्हयित्वैषा तूष्णीमास्ते वराङ्गना ।
तामेतामनुशोचन्ति सपत्न्यः स्वामिव स्नुषाम् ॥ २० ॥

इसी प्रकार अर्जुनको दोष देकर यह सुंदर स्त्री चुप हो गयी है। जैसे सास अपनी बहूके लिये शोक करती हैं वैसेही इसकी सौतें इसके लिये करती हैं ॥ २० ॥

गान्धारराजः शकुनिर्बलवान्सत्यविक्रमः ।
निहतः सहदेवेन भागिनेयेन मातुलः ॥ २१ ॥

ये गान्धार राजा बलवान् महापराक्रमी शकुनि मामा अपने भानजे सहदेवके हाथसे मारे हुए पडे हैं ॥ २१ ॥

यः पुरा हेमदण्डाभ्यां व्यजनाभ्यां स्म वीज्यते ।
स एष पक्षिभिः पक्षैः शयान उपवीज्यते ॥ २२ ॥

पहिले सोनेके डण्डेवाले पङ्खासे जिसको हवा की जाती थी, आज भूमिपर सोते हुए उसको ही पक्षी अपनी पांखोंसे हवा कर रहे हैं ॥ २२ ॥

यः स्म रूपाणि कुरुते शतशोऽथ सहस्रशः ।
तस्य मायाविनो माया दग्धाः पाण्डवतेजसा ॥ २३ ॥

जो अपनी मायासे सैकडों सहस्रों रूप बनाता था, उस छलीकी सब मायाएं पाण्डुपुत्र सहदेवके तेजसे भस्म हो गईं ॥ २३ ॥

मायया निकृतिप्रज्ञो जितवान्यो युधिष्ठिरम् ।
सभायां विपुलं राज्यं स पुनर्जीवितं जितः ॥ २४ ॥

जो छली विद्यामें प्रवीण, जिसने द्यूत सभामें मायासे युधिष्ठिरको जीता था और उनका सब राज्य हर लिया था, वही शकुनि आज अपना जीवन हार गये है ॥ २४ ॥

शकुन्ताः शकुनिं कृष्ण समन्तात्पर्युपासते ।
कितवं मम पुत्राणां विनाशायोपशिक्षितम् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण ! जिसने मेरे पुत्रोंका नाश करनेहीके लिये द्यूतविद्या सीखी थी उस ही शकुनिको आज चारों ओरसे पक्षी खा रहे हैं ॥ २५ ॥

एतेनैतन्महद्वैरं प्रसक्तं पाण्डवैः सह ।
वधाय मम पुत्राणामात्मनः सगणस्य च ॥ २६ ॥

इसहीने मेरे पुत्र और अपने बान्धवोंके वधके लिये पाण्डवोंसे महान् वैर निर्माण किया था ॥२६॥

यथैव मम पुत्राणां लोकाः शस्त्रजिताः प्रभो ।
एवमस्यापि दुर्बुद्धेर्लोकाः शस्त्रेण वै जिताः ॥ २७ ॥

प्रभो ! जैसे मेरे पुत्रोंको शस्त्रोंसे जीते हुए स्वर्गलोक मिला है, ऐसे ही इस दुर्बुद्धि शकुनिको भी प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥

कथं च नायं तत्रापि पुत्रान्मे भ्रातृभिः सह ।
विरोधयेदृजुप्रज्ञानन्नृजुर्मधुसूदन ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ६१६ ॥

मधुसूदन ! वहां भी यह सरल बुद्धिवाले मेरे पुत्रोंमें परस्पर विरोध निर्माण नहीं करे ॥ २८ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें चोवीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ ६१६ ॥

: २५ :

गान्धार्युवाच—

काम्बोजं पश्य दुर्धर्षं काम्बोजास्तरणोचितम् ।
शयानमृषभस्कन्धं हतं पांसुषु माधव ॥ १ ॥

गान्धारी बोली— हे माधव ! ये देखो, काम्बोजकी दुशालेकी शय्यापर सोने योग्य, बैलके समान कन्धे वाला दुर्धर्ष महापराक्रमी काम्बोज देशका राजा मरके धूलमें सोता है ॥ १ ॥

यस्य क्षतजसंदिग्धौ बाहू चन्दनरूषितौ ।
अवेक्ष्य कृपणं भार्या विलपत्यतिदुःखिता ॥ २ ॥

जिसके चन्दन चर्चित हाथोंको रुधिरमें भीजे हुए देख उसकी पत्नी अत्यन्त दुःखित होकर करुणता पूर्ण रो रही है ॥ २ ॥

इमौ तौ परिघप्रख्यौ बाहू शुभतलाङ्गुली ।
ययोर्विवरमापन्नां न रतिर्मां पुराजहत् ॥ ३ ॥

वह ऐसा कह रही है कि जो सुन्दर उजली हथेली और अंगुलीवाले परिघके समान दृढ आपके यही हाथ हैं, जिनसे आप मुझे गोदमें लेते थे और उनके संगमें मैं विहार करती थी, उसने पहिले कभी मुझे नहीं छोडा ॥ ३ ॥

कां गतिं नु गमिष्यामि त्वया हीना जनेश्वर ।
दूरबन्धुरनाथेव अतीव मधुरस्वरा ॥ ४ ॥

हे प्रजानाथ ! अब मैं आपके विना किधर जाऊंगी ? अपने जीवन बन्धुके दूर जानेसे अनाथ हुई यह मधुर स्वरसे अत्यंत रो रही है ॥ ४ ॥

आतपे क्लाम्यमानानां विविधानामिव स्रजाम् ।
क्लान्तानामपि नारीणां न श्रीर्जहाति वै तनुम् ॥ ५ ॥

अनेक प्रकारकी फूल मालाएं धूपसे मुरझाती हैं, उसीके समान ये स्त्रियां धूपसे तपी हैं, तो भी इनके शरीरोंकी शोभा इनको नहीं छोड रही है ॥ ५ ॥

शयनामभितः शूरं कालिङ्गं मधुसूदन ।
पश्य दीप्ताङ्गदयुगप्रतिबद्धमहाभुजम् ॥ ६ ॥

हे मधुसूदन ! ये देखो, सब प्रकार समान सोनेके चमकीले बाजूबन्द दोनों विशाल हाथोंमें बांधे हुए कलिङ्गदेशका वीर राजा पास ही पडा है ॥ ६ ॥

मागधानामधिपतिं जयत्सेनं जनार्दन ।
परिवार्य प्ररुदिता मागध्यः पश्य योषितः ॥ ७ ॥

हे जनार्दन ! ये जयत्सेन नामक मगधदेशके राजाकी मागधी पत्नियां अपने पतिके चारों ओर खडी हुई व्याकुल होकर रो रहीं है ॥ ७ ॥

आसामायतनेत्राणां सुस्वराणां जनार्दन ।
मनःश्रुतिहरो नादो मनो मोहयतीव मे ॥ ८ ॥

हे कृष्ण ! इन बडी बडी आंखोंवाली मधुर स्वरवाली स्त्रियोंकी मन तथा कानोंको दुःख देनेवाली आवाज मुझे मूर्च्छित भी करती है ॥ ८ ॥

प्रकीर्णसर्वाभरणा रुदन्त्यः शोककर्शिताः ।
स्वास्तीर्णशयनोपेता मागध्यः शेरते भुवि ॥ ९ ॥

जो मगधदेशकी रानियां उत्तम सेजपर सोने योग्य थी, वे आज शोकसे व्याकुल होकर सब आभूषण फेंककर भूमिमें लोट रहीं हैं ॥ ९ ॥

कोसलानामधिपतिं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
भर्तारं परिवार्यैताः पृथक्प्ररुदिताः स्त्रियः ॥ १० ॥

जो कौशलदेशके स्वामी राजपुत्र बृहद्बलकी रानियां भी अपने पतिको चारों ओरसे घेरकर पृथक् पृथक् रो रहीं हैं ॥ १० ॥

अस्य गात्रगतान्बाणान्कार्ष्णिबाहुबलार्पितान् ।
उद्धरन्त्यसुखाविष्टा मूर्छमानाः पुनः पुनः ॥ ११ ॥

और दुःखसे व्याकुल होकर अभिमन्युके बाहुबलसे छूटे हुए और राजाके अंगोंमें धंसे हुए बाणोंको इनके शरीरसे निकालती हैं और मूर्च्छा खाकर गिरती हैं ॥ ११ ॥

आसां सर्वानवद्यानामातपेन परिश्रमात् ।
प्रम्लाननलिनाभानि भान्ति वक्त्राणि माधव ॥ १२ ॥

माधव ! इन सर्वांग सुन्दरी स्त्रियोंके मुख घाम और परिश्रमसे व्याकुल होकर ऐसे हो गये हैं, जैसे मुरझाये हुए कमल ॥ १२ ॥

द्रोणेन निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
द्रोणेनाभिमुखाः सर्वे भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १३ ॥

हे कृष्ण ! ये देखो, सुन्दर बाजूबन्दोंसे युक्त सब पांचों शूरवीर भाई केकयदेशके राजपुत्र समरमें आगे होकर युद्ध करते समय द्रोणाचार्यके हाथसे मारे जाकर सो रहे हैं ॥ १३ ॥

तप्तकाञ्चनवर्माणस्ताम्रध्वजरथस्रजः ।
भासयन्ति महीं भासा ज्वलिता इव पावकाः ॥ १४ ॥

ये तपे हुए सोनेके कवच पहिने, लाल ध्वजा और मालासे युक्त रथवाले वीर अपने तेजसे पृथ्वीको जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित करते हैं ॥ १४ ॥

द्रोणेन द्रुपदं संख्ये पश्य माधव पातितम् ।
महाद्विपमिवारण्ये सिंहेन महता हतम् ॥ १५ ॥

हे माधव ! देखो, जैसे वनमें बडे सिंहसे मरकर मतवाला हाथी गिरता है, ऐसे ही द्रोणाचार्यने युद्धमें मार गिराये हुए महाराज द्रुपद पृथ्वीमें पडे हैं ॥ १५ ॥

पाञ्चालराज्ञो विपुलं पुण्डरीकाक्ष पाण्डुरम् ।
आतपत्रं समाभाति शरदीव दिवाकरः ॥ १६ ॥

कमलनयन ! पाञ्चालराज द्रुपदका निर्मल सफेद छत्र ऐसा शोभायमान दीखता है, जैसे शरद कालमें चन्द्रमा ॥ १६ ॥

एतास्तु द्रुपदं वृद्धं स्नुषा भार्याश्च दुःखिताः ।
दग्ध्वा गच्छन्ति पाञ्चाल्यं राजानमपसव्यतः ॥ १७ ॥

बूढे राजा द्रुपदकी दुखी रानियां और बेटोंकी बहू राजाको जलाकर और उनकी प्रदक्षिणा करके लौटी जाती हैं ॥ १७ ॥

धृष्टकेतुं महेष्वासं चेदिपुंगवमङ्गनाः ।
द्रोणेन निहतं शूरं हरन्ति हृतचेतसः ॥ १८ ॥

द्रोणाचार्यने मारे हुए महाधनुर्धारी शूर चेदिराजा धृष्टकेतुकी रानियां मूर्छितसी होकर जलानेके लिये उन्हें ले जा रही हैं ॥ १८ ॥

द्रोणास्त्रमभिहत्यैष विमर्दे मधुसूदन ।
महेष्वासो हतः शेते नद्या हृत इव द्रुमः ॥ १९ ॥

मधुसूदन ! इसही महाधनुषधारीने युद्धमें द्रोणाचार्यके अस्त्रोंका नाश किया था, अन्तमें जैसे नदीके प्रवाहसे वृक्ष टूट जाता है, वैसेही मारा जाकर सो रहा है ॥ १९ ॥

एष चेदिपतिः शूरो धृष्टकेतुर्महारथः ।
शेते विनिहतः संख्ये हत्वा शत्रून्सहस्रशः ॥ २० ॥

इस ही शूर महारथी चेदिराज धृष्टकेतुने युद्धमें सहस्रों शत्रुओंको मारा था, वह ही स्वयं मारा जाकर पृथ्वीमें सो रहा है ॥ २० ॥

वितुद्यमानं विहगैस्तं भार्याः प्रत्युपस्थिताः ।
चेदिराजं हृषीकेश हतं सबलबान्धवम् ॥ २१ ॥

हृषीकेश ! चेदिराज सेना और बान्धवोंसे मारा गया है, उसको पक्षी काट रहे हैं और उसकी स्त्रियां उसके पास बैठी हैं ॥ २१ ॥

दाशार्हीपुत्रजं वीरं शयानं सत्यविक्रमम् ।
आरोप्याङ्के रुदन्त्येताश्चेदिराजवराङ्गनाः ॥ २२ ॥

हे कृष्ण ! ये दशार्ह कन्याके पुत्र शिशुपालका यह सत्यविक्रमी वीर बेटा पृथ्वीमें सो गया है, इसे गोदमें लेकर चेदिराजकी ये सुंदरी रानियां रो रही हैं ॥ २२ ॥

अस्य पुत्रं हृषीकेश सुवक्त्रं चारुकुण्डलम् ।
द्रोणेन समरे पश्य निकृत्तं बहुधा शरैः ॥ २३ ॥

देखो, मनोहर कुण्डल और सुन्दर मुखवाला धृष्टकेतुका पुत्र युद्धमें द्रोणाचार्यके बाणोंसे कटा हुआ पृथ्वीमें पडा हुआ है ॥ २३ ॥

पितरं नूनमाजिस्थं युध्यमानं परैः सह ।
नाजहात्पृष्ठतो वीरमद्यापि मधुसूदन ॥ २४ ॥

मधुसूदन ! रणभूमिमें शत्रुओंके साथ लडनेवाले अपने पिताका साथ इसने छोडा नहीं था, आज युद्धके समाप्त होनेपर भी वह उनको नहीं छोड रहा है ॥ २४ ॥

एवं ममापि पुत्रस्य पुत्रः पितरमन्वगात् ।
दुर्योधनं महाबाहो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ २५ ॥

हे महाबाहो ! ऐसे ही मेरे पुत्रके पुत्र शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला लक्ष्मण भी अपने दुर्योधन पिताके पीछे चला गया ॥ २५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधव ।
हिमान्ते पुष्पितौ शालौ मरुता गलिताविव ॥ २६ ॥

हे माधव ! देखो, अवन्ति देशके निवासी विन्द और अनुविन्द दोनों इस प्रकार पृथ्वीमें पडे हैं, जैसे वसंत ऋतुमें वायुसे टूटे खिले शालके वृक्ष ॥ २६ ॥

काञ्चनाङ्गदवर्माणौ बाणखड्गधनुर्धरौ ।
ऋषभप्रतिरूपाक्षौ शयानौ विमलस्रजौ ॥ २७ ॥

सोनेके बाजूबन्द और कवच पहिने, बाण, खड्ग और धनुष धारण किये, निर्मल माला पहिने हुए बैलके समान आंख और रूपवाले ये दोनों सो रहे हैं ॥ २७ ॥

अवध्याः पाण्डवाः कृष्ण सर्वं एव त्वया सह ।
ये मुक्ता द्रोणभीष्माभ्यां कर्णाद्वैकर्तनात्कृपात् ॥ २८ ॥

हे कृष्ण ! युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये सब पाण्डव और तुमको कोई जगत्में नहीं मार सकता; जो द्रोणाचार्य, भीष्म, वैकर्तन कर्ण, कृपाचार्य ॥ २८ ॥

दुर्योधनाद्द्रोणसुतात्सैन्धवाच्च महारथात् ।
सोमदत्ताद्विकर्णाच्च शूराच्च कृतवर्मणः ।
ये हन्युः शस्त्रवेगेन देवानपि नरर्षभाः ॥ २९ ॥

दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सिन्धुराज जयद्रथ, सोमदत्त, विकर्ण और वीर कृतवर्मांके हाथसे तुम सब जीवित बच गये । ये नरश्रेष्ठ अपने शस्त्रोंके वेगसे देवताओंको भी मार सकते थे ॥ २९ ॥

त इमे निहताः संख्ये पश्य कालस्य पर्ययम् ।
नातिभारोऽस्ति दैवस्य ध्रुवं माधव कश्चन ।
यदिमे निहताः शूराः क्षत्रियैः क्षत्रियर्षभाः ॥ ३० ॥

वे ही युद्धमें आज मरकर पृथ्वीमें पडे हैं । देखो, समयकी गति बडी कठिन है । माधव ! निश्चयही दैवके लिये कोई अधिक कठिन नहीं है; कारण उसने क्षत्रियोंसे ही इन शूर क्षत्रियश्रेष्ठोंको मार डाला है ॥ ३० ॥

तदैव निहताः कृष्ण मम पुत्रास्तरस्विनः ।
यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः ॥ ३१ ॥

हे कृष्ण ! जिस समय तुम सन्धि करानेको आये थे और विना काम सिद्ध हुये फिर दुःखित हुए लौट गये थे, तब ही मेरे वेगवान् पुत्रोंका नाश हो चुका था ॥ ३१ ॥

शंतनोश्चैव पुत्रेण प्राज्ञेन विदुरेण च ।
तदैवोक्तास्मि मा स्नेहं कुरुष्वात्मसुतेष्विति ॥ ३२ ॥

उसी दिन शान्तनुपुत्र भीष्म और बुद्धिमान विदुरने मुझसे कहा था, कि " अब तुम अपने पुत्रोंसे प्रेम मत करो " ॥ ३२ ॥

तयोर्न दर्शनं तात मिथ्या भवितुमर्हति ।
अचिरेणैव मे पुत्रा भस्मीभूता जनार्दन ॥ ३३ ॥

तात ! जनार्दन ! उनकी ज्ञान दृष्टि झूठी नहीं हो सकती थी; इसलिये थोडे ही दिनोंमें मेरे सब पुत्र युद्धमें भस्म हो गये ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्युक्त्वा न्यपतद् भूमौ गान्धारी शोककर्शिता ।
दुःखोपहतविज्ञाना धैर्यमुत्सृज्य भारत ॥ ३४ ॥

श्री वैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! ऐसा कहकर गान्धारी शोकसे व्याकुल होकर धीरजको छोड कर पृथ्वीमें गिर पडी । दुःखसे उनकी ज्ञानशक्ति नष्ट हो गई ॥३४॥

ततः कोपपरीताङ्गी पुत्रशोकपरिप्लुता ।
जगाम शौरिं दोषेण गान्धारी व्यथितेन्द्रिया ॥ ३५ ॥

फिर पुत्रोंके शोकसे व्याकुल गलित इंद्रियां होकर उठी और क्रोध उनके सब शरीरमें व्याप्त हुआ । फिर श्रीकृष्णको दोष लगाने लगी ॥ ३५ ॥

गान्धार्युवाच—

पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च द्रुग्धाः कृष्ण परस्परम् ।
उपेक्षिता विनश्यन्तस्त्वया कस्माज्जनार्दन ॥ ३६ ॥

गान्धारी बोली— हे कृष्ण ! जनार्दन ! जब पाण्डव और धृतराष्ट्र पुत्र दोनों परस्पर लडके नष्ट होते थे, तब तुमने नष्ट होते उन्हें मना क्यों नहीं किया ? ॥ ३६ ॥

शक्तेन बहुभृत्येन विपुले तिष्ठता बले ।
उभयत्र समर्थेन श्रुतवाक्येन चैव ह ॥ ३७ ॥

तुम शक्तिशाली, बहुत सेवकोंसे युक्त, महान बलवान दोनोंको अपनी बात मनवा लेनेमें समर्थ और वेदशास्त्रोंसे संपन्न थे ॥ ३७ ॥

इच्छतोपेक्षितो नाशः कुरूणां मधुसूदन ।
यस्मात्त्वया महाबाहो फलं तस्मादवाप्नुहि ॥ ३८ ॥

मधुसूदन ! तुमने समझकर भी कुरुकुलका नाश होने दिया । महाबाहो ! इस लिये उस कर्मका फल भोगो ॥ ३८ ॥

पतिशुश्रूषया यन्मे तपः किंचिदुपार्जितम् ।
तेन त्वां दुरवापात्मञ्शप्स्ये चक्रगदाधर ॥ ३९ ॥

हे चक्रगदाधारी ! मैंने जो अपने पतिकी सेवासे तप किया हो तो उस उत्तम तपसे तुम्हें शाप देती हूं ॥ ३९ ॥

यस्मात्परस्परं घ्नन्तो ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः ।
उपेक्षितास्ते गोविन्द तस्माज्ज्ञातीन्वधिष्यसि ॥ ४० ॥

गोविंद ! तुमने कौरव और पाण्डवोंको परस्पर युद्ध करनेसे नहीं रोका, इससे तुम भी अपनी जातिका नाश करोगे ॥ ४० ॥

त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन ।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः ।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण ! अबसे छत्तीसवें वर्ष तुम्हारे मंत्री, जातिपरिवार और पुत्र परस्पर लडकर मरेंगे। वनमें फिरते हुए तुम दुष्ट उपायसे मारे जावोगे ॥ ४१ ॥

तवाप्येवं हतसुता निहतज्ञातिबान्धवाः ।
स्त्रियः परिपतिष्यन्ति यथैता भरतस्त्रियः ॥ ४२ ॥

जैसे ये भरतकुलकी स्त्रियां रोती फिरती हैं, ऐसे ही तुम्हारे कुलकी स्त्रियां पुत्र और बान्धवोंके मारे जानेसे उनसे हीन होकर उनकी लाशोंपर गिरेंगी ॥ ४२ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं वासुदेवो महामनाः ।
उवाच देवीं गान्धारीमीषदभ्युत्स्मयन्निव ॥ ४३ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— राजन् ! ऐसे भयानक वचन सुनकर महात्मा वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण हंसकर देवी गान्धारीको बोले ॥ ४३ ॥

संहर्ता वृष्णिचक्रस्य नान्यो मद्विद्यते शुभे ।
जानेऽहमेतदप्येवं चीर्णं चरसि क्षत्रिये ॥ ४४ ॥

हे गान्धारी ! तुम जो कहती हो वह होनेवाला है, यह पहिले ही हमने जान लिया था। शुभे ! वृष्णिकुलका नाश मेरे सिवा दूसरा कोई भी नहीं कर सकता है ॥ ४४ ॥

अवध्यास्ते नरैरन्यैरपि वा देवदानवैः
परस्परकृतं नाशमतः प्राप्स्यन्ति यादवाः ॥ ४५ ॥

वे दूसरे मनुष्य, देव और दानवोंसे भी अवध्य हैं, इसलिये परस्पर लडके नष्ट हो जायेंगे ॥ ४५ ॥

इत्युक्तवति दाशार्हे पाण्डवास्त्रस्तचेतसः ।
बभूवुर्भृशसंविग्ना निराशाश्चापि जीविते ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ समाप्तं स्त्रीपर्व ॥ ६६२ ॥

श्रीकृष्णके ऐसे बचन सुन पाण्डव मनमें घबडा गये; वे अत्यंत अद्विग्न हुए; और अपने जीवनसे निराश हो गये ॥ ४६ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें पचीसवां अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ स्त्रीपर्व समाप्त ॥ ६६२ ॥

×

२६

वासुदेव उवाच—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि मा च शोके मनः कृथाः ।
तवैव ह्यपराधेन कुरवो निधनं गताः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले– हे गान्धारी ! अब तुम उठो, शोक मत करो; ये कुरुवंशका नाश तुम्हारे ही अपराधसे हुआ है ॥ १ ॥

या त्वं पुत्रं दुरात्मानमीर्षुमत्यन्तमानिनम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य दुष्कृतं साधु मन्यसे ॥ २ ॥

तुमने पहिले दुरात्मा, ईर्षालु और महाअभिमानी, दुष्कर्म करनेवाले दुर्योधनको आगे करके जो पाप किया है, उसे तुम अच्छा मानती हो ? ॥ २ ॥

निष्ठुरं वैरपरुषं वृद्धानां शासनातिगम् ।
कथमात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि ॥ ३ ॥

निष्ठुर, लडाईके प्यारे और बूढोंकी आज्ञा न माननेवाले दुर्योधनको न रोका; अब अपने किये हुए अपराधको यहां मुझपर क्यों डालती है ? ॥ ३ ॥

मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ४ ॥

जो मरे हुए मनुष्य, नष्ट हुई वस्तु अथवा बीती हुई बातका शोक करता है, वो सदा एक दुःखसे दूसरे दुःखका साथी होता है, इससे वह दो अनर्थोंको लेता है ॥ ४ ॥

तपोर्थीयं ब्राह्मणी धत्त गर्भं गौर्वोढारं धावितारं तुरंगी ।
शूद्रा दासं पशुपालं तु वैश्या वधार्थीयं त्वद्विधा राजपुत्री ॥ ५ ॥

ब्राह्मणी तपके लिये, गाय बोझ ले चलनेके लिये, घोडी दौडानेवालेके लिये, शूद्रा दासके लिये, वैश्य स्त्री पशुपालनके लिये और तुम जैसी राजपुत्री क्षत्रियाणी युद्धमें लडकर मरनेवाले पुत्रको उत्पन्न करती हैं ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच—

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य पुनरुक्तं वचोऽप्रियम् ।
तूष्णीं बभूव गान्धारी शोकव्याकुललोचना ॥ ६ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले– श्रीकृष्णके दूसरी बार ऐसे कठोर अप्रिय वचन सुनकर गान्धारी शोकसे व्याकुल नेत्र होकर चुप होगई ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिर्निगृह्याबुद्धिजं तमः ।
पर्यपृच्छत धर्मात्मा धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥

धर्म जाननेवाले राजा धृतराष्ट्र भी अज्ञानजन्य दुःखको दूर करके धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले ॥ ७ ॥

जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव ।
हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे ॥ ८ ॥

हे पाण्डव ! तुम युद्धसे बची हुई सेनाकी गिनती जानते हो । यदि मरे हुवोंकी गिनती जानते हो तो हमसे कहो ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः ।
कोटयः षष्टिश्च षट् चैव येऽस्मिन्राजमृधे हताः ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे राजन् ! इस राजाओंके युद्धमें एक अरब, छाछट करोड बीस हजार मनुष्य मारे गए ॥ ९ ॥

अलक्ष्याणां तु वीराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
दश चान्यानि राजेन्द्र शतं षष्टिश्च पञ्च च ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! इनके सिवाय चौवीस हजार एकसौ पैंसठ वीर खोये गये हैं ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

युधिष्ठिर गतिं कां ते गताः पुरुषसत्तमाः ।
आचक्ष्व मे महाबाहो सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ११ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले— हे महाबाहु युधिष्ठिर ! मेरी बुद्धिमें तुम सर्वज्ञ हो, इसलिये हमसे कहो वे पुरुषश्रेष्ठ वीर किस गतिको प्राप्त हो गये ? ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

यैर्हुतानि शरीराणि हृष्टैः परमसंयुगे ।
देवराजसमाँल्लोकान्गतास्ते सत्यविक्रमाः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले— जो इस महायुद्धमें प्रसन्न होकर मरे हैं वे सब सत्यपराक्रमी वीर देवराज इन्द्रके समान लोकमें गये हैं ॥ १२ ॥

ये त्वहृष्टेन मनसा मर्तव्यमिति भारत ।
युध्यमाना हताः संख्ये ते गन्धर्वैः समागताः ॥ १३ ॥

भारत ! जो युद्धमें अप्रसन्न होकर मनसे मरनेका निश्चय करके संग्राममें युद्ध करते करते मरे हैं वे गन्धर्व लोकको गए ॥ १३ ॥

ये तु संग्रामभूमिष्ठा याचमानाः पराङ्मुखाः ।
शस्त्रेण निधनं प्राप्ता गतास्ते गुह्यकान्प्रति ॥ १४ ॥

जो संग्राममें खडे हो प्राणदान मांगते हुये पराङ्मुख हो गये थे और युद्धमें शस्त्रसे मारे गये, वे गुह्यक लोकको गये ॥ १४ ॥

पीड्यमानाः परैर्ये तु हीयमाना निरायुधाः ।
ह्रीनिषेधा महात्मानः परानभिमुखा रणे ॥ १५ ॥

जो शत्रुओंसे पीडित, युद्ध साधनसे वंचित, शस्त्रहीन, लज्जासे भरे युद्धकी ओर मुख दिये महात्मा वीर ॥ १५ ॥

छिद्यमानाः शितैः शस्त्रैः क्षत्रधर्मपरायणाः ।
गतास्ते ब्रह्मसदनं हता वीराः सुवर्चसः ॥ १६ ॥

शत्रुओंके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे कट गये, वे क्षत्रियधर्मपरायण तेजस्वी वीर लोग निःसन्देह ब्रह्म-लोकको गए ॥ १६ ॥

ये तत्र निहता राजन्नन्तरायोधनं प्रति ।
यथाकथंचित्ते राजन्संप्राप्ता उत्तरान्कुरून् ॥ १७ ॥

राजन् ! जो वहां युद्धकी सीमामें रहकर किसी भी प्रकार मारे गए उनको उत्तर कुरुदेश प्राप्त होगा ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

केन ज्ञानबलेनैवं पुत्र पश्यसि सिद्धवत् ।
तन्मे वद महाबाहो श्रोतव्यं यदि वै मया ॥ १८ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले— हे पुत्र ! तुम कौनसे ज्ञानके बलसे सिद्धके समान सब देख रहे हो ? महाबाहो ! यदि मेरे सुनने योग्य हो तो कह ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

निदेशाद्भवतः पूर्वं वने विचरता मया ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन संप्राप्तोऽयमनुग्रहः ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर बोले— हे राजन् ! पहिले मैं जब आपकी आज्ञासे वनमें घूमता था, तब तीर्थयात्राके समय एक महात्माकी कृपा और योगसे यह शक्ति मुझे प्राप्त हो गई है ॥ १९ ॥

देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम् ।
दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा ॥ २० ॥

उस समय देवर्षि लोमशका दर्शन हुआ और उन्हींसे मैंने अनुस्मृति विद्या प्राप्त की । पूर्वकालमें ज्ञान योगके कारण दिव्य दृष्टि भी मुझे प्राप्त हो गयी ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

येऽत्रानाथा जनस्यास्य सनाथा ये च भारत।
कच्चित्तेषां शरीराणि धक्ष्यन्ति विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे भारत! अब तुम यहां जो अनाथ और सनाथ वीर पडे हैं, उन क्षत्रियोंके शरीरोंका विधिपूर्वक दहन कराओगे ना? ॥ २१ ॥

न येषां सन्ति कर्तारो न च येऽत्राहिताग्नयः।
वयं च कस्य कुर्यामो बहुत्वात्तात कर्मणः ॥ २२ ॥

जिनका संस्कार करनेवाला कोई नहीं है और जो आहिताग्नि नहीं हैं ऐसे ही बहुत हैं। हम किस किसका अन्त्येष्टि कर्म करेंगे? ॥ २२ ॥

यान्सुपर्णाश्च गृध्राश्च विकर्षन्ति ततस्ततः।
तेषां तु कर्मणा लोका भविष्यन्ति युधिष्ठिर ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर! जिन्हें गिद्ध और सियार इधर उधर खींच रहे हैं, उनकी गति श्राद्ध कर्मके अनुसार ही होगी ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्तो महाप्राज्ञः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतं च संजयम् ॥ २४ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले—हे महाराज! राजा धृतराष्ट्रकी ऐसी आज्ञा सुन परमज्ञानी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने दुर्योधनके पुरोहित सुधर्मा, अपने पुरोहित धौम्य, सूत सञ्जय ॥२४॥

विदुरं च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवम्।
इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान्सूतांश्च सर्वशः ॥ २५ ॥

महाबुद्धिमान् विदुर, कुरुकुलके युयुत्सु, इन्द्रसेन आदि सारथी और सब सेवकोंको आज्ञा दी ॥ २५ ॥

भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याणि सर्वशः।
यथा चानाथवत्किंचिच्छरीरं न विनश्यति ॥ २६ ॥

कि तुम लोग इन सबके प्रेतकर्म पूर्णतया करो। ऐसा न होवे कि कोई भी शरीर अनाथके समान नष्ट होवे ॥ २६ ॥

शासनाद्धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च संजयः।
सुधर्मा धौम्यसहित इन्द्रसेनादयस्तथा ॥ २७ ॥

महाराज धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे विदुर, सूत सञ्जय, सुधर्मा, धौम्य और इन्द्रसेन आदि सेवकोंने ॥ २७ ॥

चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत ।
घृतं तैलं च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च ॥ २८ ॥

चन्दन अगर तगर कालीयक आदि काठ, घी, तेल, सुगन्धी वस्तु और बहुत मूल्यवाले रेशमी कपडे ॥ २८ ॥

समाहृत्य महार्हाणि दारूणां चैव संचयान् ।
रथांश्च मृदितांस्तत्र नानाप्रहरणानि च ॥ २९ ॥

इकट्ठे करके, लकडियोंका संग्रह किया; टूटे रथ और अनेक प्रकारके शस्त्रोंको एकत्र किया ॥ २९ ॥

चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान्नराधिपान् ।
दाहयामासुरव्यग्रा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३० ॥

फिर प्रयत्नपूर्वक चिताएं बनाकर, सावधान होकर शास्त्रमें लिखी विधिके अनुसार सब राजाओंको ज्येष्ठता क्रमसे उन्होंने जलाया ॥ ३० ॥

दुर्योधनं च राजानं भ्रातॄंश्चास्य शताधिकान् ।
शल्यं शलं च राजानं भूरिश्रवसमेव च ॥ ३१ ॥

सौसे अधिक भाइयोंके सहित राजा दुर्योधन, राजा शल्य, शल, भूरिश्रवा ॥ ३१ ॥

जयद्रथं च राजानमभिमन्युं च भारत ।
दौःशासनिं लक्ष्मणं च धृष्टकेतुं च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥

राजा जयद्रथ, अभिमन्यु, दुःशासनपुत्र सुदर्शन, लक्ष्मण, राजा धृष्टकेतु ॥ ३२ ॥

बृहन्तं सोमदत्तं च सृञ्जयांश्च शताधिकान् ।
राजानं क्षेमधन्वानं विराटद्रुपदौ तथा ॥ ३३ ॥

बृहन्त, सोमदत्त, सौसे अधिक सृञ्जय, राजा क्षेमधन्वा, विराट, द्रुपद ॥ ३३ ॥

शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
युधामन्युं च विक्रान्तमुत्तमौजसमेव च ॥ ३४ ॥

शिखण्डी, पांञ्चाल देशके द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, पराक्रमी उत्तमौजा ॥ ३४ ॥

कौसल्यं द्रौपदेयांश्च शकुनिं चापि सौबलम् ।
अचलं वृषकं चैव भगदत्तं च पार्थिवम् ॥ ३५ ॥

कौसल्य, द्रौपदीके पुत्र, सुबल पुत्र शकुनि, अचल, वृषक, राजा भगदत्त ॥ ३५ ॥

कर्णं वैकर्तनं चैव सहपुत्रममर्षणम् ।
केकयांश्च महेष्वासांस्त्रिगर्तांश्च महारथान् । ॥ ३६ ॥

पुत्रोंके सहित अमर्षी वैकर्तन कर्ण, महाधनुषधारी केकय, महारथी त्रिगर्त ॥ ३६ ॥

घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं बकभ्रातरमेव च ।
अलम्बुसं च राजानं जलसंधं च पार्थिवम् ॥ ३७ ॥

राक्षसराज घटोत्कच, बकासुरका भाई राजा अलम्बुष और राजा जलसन्ध ॥ ३७ ॥

अन्यांश्च पार्थिवान्राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।
घृतधाराहुतैर्दीप्तैः पावकैः समदाहयन् ॥ ३८ ॥

आदि तथा दूसरे भी सैकड़ों सहस्रों राजाओंको घीकी धारासे जलती हुई अग्निमें जला दिया ॥ ३८ ॥

पितृमेधाश्च केषांचिदवर्तन्त महात्मनाम् ।
सामभिश्चाप्यगायन्त तेऽन्वशोच्यन्त चापरैः ॥ ३९ ॥

किसी महात्माओंके पितृमेध कर्म किये, कुछ लोगोंने सामगान किया और दूसरे कितने ही लोगोंने शोक किया ॥ ३९ ॥

साम्नामृचां च नादेन स्त्रीणां च रुदितस्वनैः ।
कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत ॥ ४० ॥

साममन्त्र और ऋचाओंकी ध्वनि, तथा स्त्रियोंके रोनेके शब्दसे उस रात्रीमें सब प्राणियोंको अत्यन्त दुःख हुआ ॥ ४० ॥

ते विधूमाः प्रदीप्ताश्च दीप्यमानाश्च पावकाः ।
नभसीवान्वदृश्यन्त ग्रहास्तन्वभ्रसंवृताः ॥ ४१ ॥

वे धूंआरहित जलती हुई और जलायी जाती हुई चिताकी अग्नि आकाशमें बादलोंसे ढंके हुए ग्रहोंके समान दिखाई देने लगी ॥ ४१ ॥

ये चाप्यनाथास्तत्रासन्नानादेशसमागताः ।
तांश्च सर्वान्समानाय्य राशीन्कृत्वा सहस्रशः ॥ ४२ ॥

जो अनेक देशोंसे आये हुए अनाथ क्षत्रिय वहां मारे हुए पडे थे, उन सबको इकट्ठा करके उनके सहस्रों ढेर लगाये ॥ ४२ ॥

चित्वा दारुभिरव्यग्रः प्रभूतैः स्नेहतापितैः ।
दाहयामास विदुरो धर्मराजस्य शासनात् ॥ ४३ ॥

फिर घी-तेलसे गिली की हुई अनेक लकडियोंसे चिता बनाकर धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे स्थिरचित्तवाले विदुरने उन सबको जलाया ॥ ४३ ॥

कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गामभिमुखोऽगमत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ७०६ ॥ श्राद्धपर्व समाप्तम् ॥

इस प्रकार कुरुराजा युधिष्ठिर उन सबका दाहकर्म कर राजा धृतराष्ट्रको आगे करके गङ्गाको चले ॥ ४४ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें छब्बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ ७०६ ॥

×

: २७ :

वैशंपायन उवाच—

ते समासाद्य गङ्गां तु शिवां पुण्यजनोचिताम् ।
ह्रदिनीं वप्रसंपन्नां महानूपां महावनाम् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले— हे राजन् जनमेजय ! वे सब लोग कल्याणमयी पुण्यवान् लोगोंके लिये योग्य जलसंचयोंसे युक्त, विशाल तटोंसे युक्त, पवित्र और महान् बनवाली गंगाके पास जाकर ॥ १ ॥

भूषणान्युत्तरीयाणि वेष्टनान्यवमुच्य च ।
ततः पितॄणां पौत्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च ॥ २ ॥

आभूषण, कपडे और पगडी उतारकर पिता, पौत्र, भाई और सम्बन्धी जन ॥ २ ॥

पुत्राणामार्यकाणां च पतीनां च कुरुस्त्रियः ।
उदकं चक्रिरे सर्वा रुदन्त्यो भृशदुःखिताः ।
सुहृदां चापि धर्मज्ञाः प्रचक्रुः सलिलक्रियाः ॥ ३ ॥

मित्र और पुत्रोंको जल देने लगे ! अत्यंत दुःखसे रोती हुई कुरुकुलकी स्त्रियां भी अपने पति और बान्धवोंको जल देने लगीं । धर्म जाननेवाले लोगोंने अपने मित्रोंके लिये भी जल प्रदान किया ॥ ३ ॥

उदके क्रियमाणे तु वीराणां वीरपत्निभिः ।
सूपतीर्थाभवद्गङ्गा भूयो विप्रससार च ॥ ४ ॥

जब वीरोंकी पत्नियां वीरोंके लिये जल अर्पण कर रही थीं, उस समय गङ्गाका जल अत्यन्त सुन्दर दीखने लगा और उसका विस्तार अधिक चौडा हो गया ॥ ४ ॥

तन्महोदधिसंकाशं निरानन्दमनुत्सवम् ।
वीरपत्नीभिराकीर्णं गंगातीरमशोभत ॥ ५ ॥

वीरोंकी स्त्रियोंसे भरा हुआ वह गङ्गाका महा समुद्रके समान तट आनन्द और उत्सव रहित होते हुए भी शोभित दीखने लगा ॥ ५ ॥

ततः कुन्ती महाराज सहसा शोककर्शिता ।
रुदती मन्दया वाचा पुत्रान्वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

हे महाराज ! उस समय सहसा शोकसे व्याकुल रोती हुई कुन्ती धीरे धीरे अपने पुत्रोंसे बोली ॥ ६ ॥

यः स शूरो महेष्वासो रथयूथपयूथपः ।
अर्जुनेन हतः संख्ये वीरलक्षणलक्षितः ॥ ७ ॥

हे पाण्डवों ! जिस शूर, महाधनुषधारी, महारथ, विरोचित लक्षणोंसे युक्त कर्णको अर्जुनने युद्धमें मार डाला ॥ ७ ॥

यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेयमिति पाण्डवाः ।
यो व्यराजच्चमूमध्ये दिवाकर इव प्रभुः ॥ ८ ॥

जिसको तुम लोग राधापुत्र और सूतपुत्र करके जानते थे, जो सेनाके बीचमें भगवान् सूर्यके समान चमकता था ॥ ८ ॥

प्रत्ययुध्यत यः सर्वान्पुरा वः सपदानुगान् ।
दुर्योधनबलं सर्वं यः प्रकर्षन्व्यरोचत ॥ ९ ॥

जो एक ही सब सेना सहित तुम सब लोगोंसे लडता था, जो दुर्योधनकी संपूर्ण सेनाको साथ लेकर शोभित होता था ॥ ९ ॥

यस्य नास्ति समो वीर्ये पृथिव्यामपि कश्चन ।
सत्यसंधस्य शूरस्य संग्रामेष्वपलायिनः ॥ १० ॥

जिसके समान जगत्में दूसरा कोई बलमें नहीं था, जो सत्यप्रतिज्ञ, पराक्रमी, शूर और कभी युद्धको छोडकर नहीं भागता था ॥ १० ॥

कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः ।
स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्यजायत ।
कुण्डली कवची शूरो दिवाकरसमप्रभः ॥ ११ ॥

वह कर्ण तुम्हारा बडा भाई था। इसलिये तुम लोग उसे भी जल दो। पहिले सूर्यके तेजसे, वही शूर वीर सूर्य समान तेजस्वी, कवच और कुण्डल धारण किये मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ था ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचनमप्रियम् ।
कर्णमेवानुशोचन्त भूयश्चार्ततराभवन् ॥ १२ ॥

अपनी माताके ऐसे अप्रिय वचन सुनकर सब पाण्डव कर्णके लियेही शोक करके अत्यंत व्याकुल हो गये ॥ १२ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच मातरं वीरो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ १३ ॥

तब पुरुषसिंह कुन्तिपुत्र वीर युधिष्ठिर सांपके समान लम्बा स्वांस लेकर अपनी मातासे बोले ॥ १३ ॥

यस्येषुपातमासाद्य नान्यस्तिष्ठेद्धनंजयात् ।
कथं पुत्रो भवत्यां स देवगर्भः पुराभवत् ॥ १४ ॥

जिसके बाणोंके गिरनेकी सीमामें आकर अर्जुनके सिवाय और कोई नहीं रह सकता था, वह पूर्वकालमें तुम्हारे देवरूपी गर्भसे कैसे उत्पन्न हुआ था ? ॥ १४ ॥

यस्य बाहुप्रतापेन तापिताः सर्वतो वयम् ।
तमग्निमिव वस्त्रेण कथं छादितवत्यसि ।
यस्य बाहुबलं घोरं धार्तराष्ट्रैरुपासितम् ॥ १५ ॥

जिसके बाहुबलके प्रतापसे हमलोग सदा पीडित रहते थे, धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा जिसके भीतिप्रद बाहुबलका आश्रय लिया था, कपडेमें ढकी हुई अग्निके समान उसे तुमने कैसे छिपाया था ? ॥ १५ ॥

नान्यः कुन्तीसुतात्कर्णादगृह्णाद्रथिनां रथी ।
स नः प्रथमजो भ्राता सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
असूत तं भवत्यग्रे कथमद्भुतविक्रमम् ॥ १६ ॥

दूसरा कोई रथियोंमें श्रेष्ठ रथी कुन्तीपुत्र कर्णके सिवाय नहीं हुआ । वह सब शस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हम लोगोंके बडे भाई थे, उस अद्भुत पराक्रमी वीरको तुमने पहिले कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ १६ ॥

अहो भवत्या मन्त्रस्य पिधानेन वयं हताः ।
निधनेन हि कर्णस्य पीडिताः स्म सबान्धवाः ॥ १७ ॥

तुमने यह कथा आज तक हम लोगोंसे छिपाकर रक्खी, इसलिये हमारा नाश हो गया; कर्णके निधनसे भाईयों सहित हमें बहुत दुःख हो रहा है ॥ १७ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन द्रौपदेयवधेन च ।
पाञ्चालानां च नाशेन कुरूणां पतनेन च ॥ १८ ॥

अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचों पुत्र और पाञ्चालोंके नाशसे और कुरुओंके पतनसे हमें महा दुःख हुआ है ॥ १८ ॥

ततः शतगुणं दुःखमिदं मामस्पृशद्भृशम् ।
कर्णमेवानुशोचन्हि दह्याम्यग्नाविवाहितः ॥ १९ ॥

और सब दुःखसे सौ गुना यह दुःख मुझे अत्यंत व्याकुल करता है । इस समय हम कर्णके शोकसे ऐसे दुःखित होगये हैं जैसे किसीने अग्निमें रख दिया है ॥ १९ ॥

न हि स्म किंचिदप्राप्यं भवेदपि दिवि स्थितम् ।
न च स्म वैशसं घोरं कौरवान्तकरं भवेत् ॥ २० ॥

यदि हम पहिले इस बातको जानते, तो हमारे लिये स्वर्गमें स्थित कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं होती और यह कुरुकुलका नाश करनेवाला घोर संग्राम भी न होता ॥ २० ॥

एवं विलप्य बहुलं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
विनदञ्शनकै राजंश्चकारास्योदकं प्रभुः ॥ २१ ॥

राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार बहुत विलाप करके धीरे धीरे रोते रोते कर्णको जलदान दिया ॥ २१ ॥

ततो विनेदुः सहसा स्त्रीपुंसास्तत्र सर्वशः ।
अभितो ये स्थितास्तत्र तस्मिन्नुदककर्मणि ॥ २२ ॥

फिर वहां एकत्र हुए सब स्त्री–पुरुष– जो जलदान करनेके लिये चारों ओर खडे थे, सहसा रोने लगे ॥ २२ ॥

तत आनाययामास कर्णस्य सपरिच्छदम् ।
स्त्रियः कुरुपतिर्धीमान्भ्रातुः प्रेम्णा युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥

फिर बुद्धिमान् कुरुराजा युधिष्ठिरने भाईके प्रेमसे कर्णकी सब स्त्रियोंको परिवारसहित बुलवाया ॥ २३ ॥

स ताभिः सह धर्मात्मा प्रेतकृत्यमनन्तरम् ।
कृत्वोत्ततार गङ्गायाः सलिलादाकुलेन्द्रियः ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ समाप्तं जलप्रदानिकपर्व ॥ ७३० ॥

और अनन्तर उन सबके साथ उन धर्मात्माने कर्णका प्रेतकृत्य करके, व्याकुल इन्द्रियोंवाले राजा युधिष्ठिर गंगाके जलसे निकले ॥ २४ ॥

महाभारतके स्त्रीपर्वमें सताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ७३० ॥

श्राद्धपर्व समाप्त ।

स्त्रीपर्व समाप्त ।







पारडी [जि. वलसाड]

